प्रस्तावना

इतिहास—संस्कृत के प्राचीन विद्वान् कुट्टनीमतम् से भली प्रकार परिचित थे, उन्होंने इसको बहुत स्थानों पर उद्धृत किया है।[1] बाद में यह बहुत समय तक एक प्रकार से लुप्त रहा। सन् १८८३ में डा० पीटर्सन को संस्कृत पुस्तकों की खोज करते समय ताड़पत्र पर लिखी इसकी प्रति मिली। इस हस्तलिखित प्रति में पुस्तक का नाम "शम्भलीमतम्" दिया था। यह प्रति अधूरी थी। अपनी रिपोर्ट में डा० पीटर्सन ने इसका उल्लेख किया है।[2]

महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसाद, जयपुर निवासी ने १८८६ में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त कीं। इन हस्तलिखित प्रतियों में पुस्तक का नाम 'कुट्टनीमतम्' था। ये दोनों प्रतियाँ अधूरी और अशुद्ध थीं। फिर भी सन् १८८७ में काव्यमाला गुच्छ तीन में इसका प्रकाशन किया गया, क्योंकि यह रचना प्राचीन और सुन्दर थी।

सन् १८९७–९८ महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने अपनी नेपाल-यात्रा में संस्कृत पुस्तकों की खोज करते समय इसकी एक प्रति प्राप्त की। यह प्रति सबसे पुरानी प्रतीत होती है[3]।'

श्री तनसुखराम त्रिपाठी ने सामान्य विद्यार्थियों के उपयोग के लिए इस ग्रंथ को टिप्पणी के साथ प्रकाशित करने का विचार किया। इसीलिए उनके मित्र काशीवासी श्री बाबू गोविन्ददास ने इसकी टिप्पणी तैयार करवाई। परन्तु

---

१ कुट्टनीमतम् के आर्याङ्क	प्रतीक	उद्धृत स्थल
६६७	अतिकोमल (पल्लव)	का प्र ७।२०२
१०३	असारत्व	का. प्र ८।६७, ६।८०
६६५	एकामाव	सुभा १०७१
८३३	कुलपतन	पञ्चतन्त्र ४२०
८१७	कर्मक प्रवृत्ति	पञ्चतन्त्र १।१३५
८२०	सविवादे परलोक	पञ्चतन्त्र १।१३६

२ संस्कृत की पुस्तकों की खोज की डा० पिटर्सन का रिपोर्ट—बम्बई विभाग—१८८३-८४, पृष्ठ २३।

३ रायल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित कुट्टनीमतम् काव्य की भूमिका के अनुसार।

श्री त्रिपाठीजी को इस टिप्पणी से सन्तोष नहीं हुआ उन्होंने स्वयं विस्तृत व्याख्या संस्कृत में लिखकर इसे बड़े परिश्रम और सुंदरता से प्रकाशित किया।

काव्य का नाम—कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में इस काव्य का नाम कुट्टनीमतम् लिखा है इसीलिए कुट्टनीमतम नाम से यह काव्य ख्यात हुआ। कुट्टनी और शम्भली दोनों ही शब्द समानार्थक हैं[1]। एक कुट्टनी द्वारा दिया हुआ परामर्श—इस काव्य का सार है।

ग्रन्थकर्ता का समय—कुट्टनीमत काव्य के निर्माण के समय की परिस्थिति का ज्ञान हमको कल्हण की राजतरंगिणी से मिलता है। इसके अनुसार जयापीड राजा से पूर्व जिन दो-तीन राजाओं ने राज्य किया था वे बहुत अन्यायी अत्याचारी लम्पट और कामुक थे। जयापीड ने अपने पास विद्वानों तथा कवियों को आश्रय दिया। उसने ही इस काव्य के कर्त्ता दामोदर गुप्त को अपना प्रधान मन्त्री भी बनाया। जयापीड प्रारम्भ में बहुत ही पवित्र एवं धर्मात्मा थे। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम काल में वे लम्पट बन गये थे तथा इन्द्रिय सुख में ही रत रहने लगे थे। जयापीड के पीछे ललितादित्य गद्दी पर बैठा था। इसके विषय में कल्हण ने लिखा है कि वह कुट्टनियों से घिरा रहता था। उसकी मित्रता उन लोगों से थी जो वेश्याओं की कथाएं कहने में दक्ष थे। वह थोड़ी स्त्रियों से सन्तुष्ट नहीं होता था।

राजा का ही अनुकरण अन्य राजकुमारों ने किया युवा राजकुमारों ने तथा धनी पुरुषों ने भी राजा का अनुकरण किया। कुट्टनीमतम में जहाँ उच्च समाज का चित्रण मिलता है वहाँ पर छोटे समाज का चित्रण भी मिलता है। जयापीड के समय बहुत से कवि हुए और बहुत से काव्य बने। परन्तु कुट्टनीमतम के सिवाय उनके समय का कोई काव्य अभी तक नहीं मिला। इसलिए इस ग्रन्थ के सिवाय अन्य किसी भी प्रकार से हम उस समय की स्थिति का ठीक पता नहीं लगा सकते।

ग्रन्थकर्त्ता का उद्देश्य—दामोदर गुप्त इस अनैतिक गिरावट से बहुत दुःखी थे इसीलिए उन्होंने कुट्टनीमतम में लम्पट मनुष्यों का चित्रण किया है। कुट्टनी विकराला के मुख से कवि ने चतुरता कपट छल मनुष्यों की निर्बलता आदि की सब बातें कहलवाई हैं। कवि ने इस काव्य को लिखने का स्पष्ट उद्देश्य अन्त में लिखा है कि—

---

१ कुट्टनी शम्भली समे—अमरकोश शम्भली गणिकानामुपदेशदायिनी कुट्टनी इति केचित् वासवदत्ता की व्याख्या में श्रीकृष्णसूरि।

काव्यमिदं यः शृणुते सम्यक् काव्यार्थपालनेनासौ ।
नो वञ्च्यते कदाचिद् वेश्याधूर्त्तकुट्टनीभिरिति ॥ १०५९ ॥

जो मनुष्य इस काव्य को सुनता है और ठीक प्रकार से इस पर चलता है वह कभी भी वेश्या, धूर्त्त और कुट्टनियों से ठगा नहीं जाता ।

कवि—राजतरंगिणी के अनुसार दामोदर गुप्त जयापीड राजा का मंत्री था । इसके समकालीन धातुपाठ के कर्त्ता भट्ट, उद्भट भी इसी समय हुए । तीसरे पण्डित मनोरथ थे, जिनके कुछ पद्य क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत किये हैं । चौथे पण्डित वामन थे, जिन्होंने अलंकार सूत्र बनाया और पाणिनि की अष्टाध्यायी पर काशिकावृत्ति सम्मिलित रूप में लिखी[1] ।

कल्हण की दी हुई वंशावली के अनुसार जयापीड ने ७५१ से ७८२ ईस्वी पश्चात तक राज्य किया । परन्तु कुछ लोग इस वंशावली को ठीक नहीं मानते, उनके मत से जयापीड ने ७७९ से ८१३ ईस्वी पश्चात तक राज्य किया (स्टेइन लिखित राजतरंगिणी की भूमिका) । यही काल दामोदर गुप्त का है ।

कवि ने अपने सम्बन्ध में कोई भी परिचय नहीं दिया । राजतरंगिणी में कवि के सम्बन्ध में एक ही श्लोक है, जिससे इतना ही पता चलता है कि वे जयापीड के मंत्री थे । पुस्तक के अन्त में दी हुई पुष्पिका भी इसी को पुष्ट करती है ।[2]

कवि दामोदर गुप्त की बनाई दूसरी कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं । वल्लभदेव ने अपनी सुभाषितावली में कवि के चार श्लोक उद्धृत किये हैं । इससे अनुमान होता है कि सम्भवतः इनकी अन्य भी रचनाएँ रही हों[3] ।

काव्यरचना—सामान्यतः भाषा सरल है, लम्बे एवं कठिन समासों से रहित है । थोड़े से स्थानों पर अप्रसिद्ध शब्दों का उल्लेख है (खुम्गिका–६४, उच्चण्ड–६६,) । शब्दरचना सुगम एवं मनोहर है । कुट्टनीमतम् में शृंगार रस

---

१ क्षीराभिधाच्छब्दविद्योपाध्यायात्संभृतश्रुतः ।
बुधैः सह ययौ वृद्धिं स जयापीडपण्डितः ॥ राजतरंगिणी ४८९,
विद्वान्दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः ।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः ॥
स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम् ।
कविं कविं बलिरिव धुर्यं धीसचिवं व्यधात् ॥
मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा ।
बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः ॥ रा त ४९५, ४९६, ४९७

इति श्रीकाश्मीरमहामण्डलमहीमण्डनराजजयापीडमन्त्रिप्रवरदामोदरगुप्तकविविरचितं कुट्टनीमतं समाप्तम् ।

श्री मंगेशराव रामकृष्ण तैलंग की भूमिका के आधार पर

की प्रधानता है कवि बहुत सूक्ष्मदर्शी तथा अनुभवी है, उसने अपनी रचना को अन्त तक बहुत ही सुन्दरता से पूर्ण किया है।

प्रोफेसर कीथ ने कुट्टनीमतम् को उपदेशक प्रबोधक काव्य की श्रेणी में रक्खा है, उसने कहा है—

काश्मीर के राजा जयापीड (७७९-८१२) के मन्त्री दामोदर गुप्त का कुट्टनीमत अपेक्षाकृत अधिक रोचक कृति है। उसका समय भी निश्चित है। भारतीय वेश्या-साहित्य का यह एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें एक युवती वेश्या को शिक्षा दी गई है कि उसे बराबर केवल सम्पत्ति की इच्छा रखते हुए ही किस प्रकार चाटुकारिता की समस्त कलाओं के प्रयोग और कृत्रिम प्रेम द्वारा अपने लिये धन कमाना चाहिये। कल्हण ने एक कवि के रूप में दामोदर गुप्त का उल्लेख किया है और मम्मट रुय्यक तथा सुभाषित संग्रहों में उनके उद्धरण दिये हैं। इससे स्पष्ट है कि इनकी कृति ने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से उक्त काव्य का महत्त्व यह है कि उसमें हर्ष की रत्नावली के प्रदर्शन को एक प्रभावक और वास्तविक ढंग से चित्रित किया गया है। कवि की शैली सरल पर अरमणीय नहीं है। उसके कुछ पद्यों में अपरिष्कृतता या ग्राम्यदोष के रहने पर भी वृद्धि और नर्मोक्ति दोनों विद्यमान है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग २ पृष्ठ २८२-२८३

कामशास्त्र सम्बन्धी साहित्य संस्कृत में पर्याप्त है। पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म के लिये मनु, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, पाराशर के नाम से स्मृतियाँ बनी, उसी प्रकार काम के क्षेत्र में वात्स्यायन, बाभ्रव्य, धनुक, दत्तक आदि ने इसके भिन्न भिन्न अंगो को लेकर ग्रन्थ बनाये। इनमें दत्तक ने पाटलीपुत्र की वेश्याओं की प्रार्थना पर पृथग् ग्रन्थ रचना की थी। वेश्याओं की शिक्षा के लिये क्षमेन्द्र ने समयमातृका लिखी। इसी कवि ने नर्ममाला में वेश्याओं का चित्र भी चित्रित किया है। इन सबका उद्देश्य एक ही था, मनुष्य इनको पढ़कर इनकी बुराइयों से परिचित हो जाय और इस रास्ते पर पैर न बढ़ाय[1]। इसी श्रेणी में शृंगारदीपिका, रतिमंजरी, अनंगरंग, रतिरहस्य, रतिशास्त्र, नचसायक आदि रचनायें हैं।

प्राचीन काल में संस्कृति के दो ही स्थान थे, एक वाराणसी और दूसरा पाटलीपुत्र या कुसुमपुर। कुसुमपुर का नाम मुद्राराक्षस में भी आता है। इन्ही दो स्थानों का केन्द्र रखकर कुट्टनीमतम् की रचना की गई है। इसमें प्राचीन काल

---

१ अयुर्वेद में कुत्ते के मांस के भी गुण बताये हैं, इससे वह खाने योग्य नहीं माना जाता।

था। इसी से स्थान स्थान पर संस्कृत के अन्य ग्रन्थों से प्रसगानुकूल उद्धरण टिप्पणी के रूप में दिये हैं। इससे इतना लाभ जरूर मिला कि संस्कृत के कुछ नये ग्रन्थ देखने में आ गये। उनसे यह स्पष्ट हो गया कि यह विषय महत्त्व का है और इस विषय में बहुत अधिक सामग्री संस्कृत साहित्य में सुरक्षित है, जिनका कि उपयोग इस जमाने में हमको करना चाहिये[1]।

अनुवाद के विषय में मुझे स्वयं कुछ नहीं कहना—मैंने अभी तक आयुर्वेद साहित्य में कार्य किया है यह अनुवाद इस विषय में मेरा पहला है। सम्भवतः इसमें भाषा या अन्य प्रकार की कुछ त्रुटियाँ या स्खलन रह गया हो, जो कि पाठकों के सुझाव पर अगले संस्करण में सुधार दिया जायेगा। मुझे यही सन्तोष है कि हिन्दी साहित्य में यह अनुवाद प्रकाशित हो रहा है।

मेरी नम्र प्रार्थना को स्वीकार करके, समय न होते हुए भी डाक्टर श्री सूर्यकान्त जी, डि लिट प्रिन्सिपल भारती महाविद्यालय ने (काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय) इसकी जो प्रस्तावना लिखी, उसके लिए मैं बहुत आभारी हूँ। इसके साथ ही प्रकाशक श्री रामेश्वर सिंह (इन्डोलाजीकल बुक हाउस वाराणसी) का भी उपकार मानता हूँ कि उन्होंने पुस्तक को उत्तमता से समय पर प्रकाशित किया।

अत्रिदेव विद्यालंकार

---

१ वात्स्यायन कामसूत्र, श्रृंगारदीपिका का अनुवाद भी शीघ्र प्रकाशित होगा

विषयानुक्रमणिका



[हारलता-आख्यान]



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

कुट्टनीमतं काव्यम् ।



स जयति संकल्पभवो रतिमुखशतपत्रचुम्बनभ्रमरः ।
यस्यानुरक्तललनानयनान्तविलोकितं वसति ॥ १ ॥

मंगलाचरण—

संकल्प [मनोविकार] से उत्पन्न, रति के कमल रूपी मुख का चुम्बन करने में भ्रमर, अनुरक्त ललनाओं के चंचल कटाक्ष निक्षेपों में रहने वाले [कटाक्षों से उत्पन्न होने वाले] प्रसिद्ध कामदेव[1] की जय हो ॥ १ ॥

अवधीर्य दोषनिचयं गुणलेशे संनिवेश्य मतिमार्याः
कुट्टन्या मतमेतद्दामोदरगुप्तविरचितं शृणुत ॥ २ ॥

दोषों की ओर ध्यान न देकर, गुणों में बुद्धि को लगाकर बुद्धिमान् मनुष्य दामोदर गुप्त के बनाए कुट्टनी[2] मत को सुनें ॥ २ ॥

---

१. गीता में कहा भी है काम-संकल्प से उत्पन्न होता है [संकल्पप्रभवान् कामान्—६ ।२४] कामनायें सब संकल्प से होती हैं, संकल्प करना मनका विषय है—"चिन्त्यं विचार्यमूह्यं च ध्येयं संकल्प्यमेव च ।
यत्किञ्चिन्मनसो ज्ञानं तत्सर्वं ह्यर्थसंज्ञकम् ॥ चरक. शा १।२०

२. कुट्टनी—कुट्टनी, स्त्रियों के शील को नाश करनेवाली [कुट्टयति-छिनत्ति-नाशयति स्त्रीणां शीलमिति कुट्टनी] वेश्या के लिये कुट्टनी आवश्यक है, जैसा कि क्षेमेन्द्र ने बताया है—

(क) व्याघ्रीव कुट्टनी यत्र रक्तपानामिषैषिणी ।
नास्ते तत्र प्रगल्भन्ते जम्बूका इव कामुकाः ॥
यत्र तत्र निमग्नानां वेश्यानां जननीं विना ।
सन्ध्ययोर्दिवसस्यापि मुहूर्त्तार्धस्य न क्षणः ॥
न भवत्येव धूर्त्तस्य वेश्यावेश्मन्यमातृके ।
मुक्तौ मुमुक्षस्य हेमन्ते मार्जारस्येव निर्गमः ॥

अस्ति खलु निखिलभूतलभूषणभूता विभूतिगुणयुक्ता ।
मुक्ताभियुक्तजनता नगरी वाराणसी नाम ॥ ३ ॥
अनुभवतामपि यस्यामुपभोगान्कामत शरीरवताम् ।
शशधरखण्डविभूषितदेहलय किल न दुष्प्राप ॥ ४ ॥
चन्द्रविभूषितदेहा भूतिरता सद्भुजङ्गपरिवारा ।
वारस्त्रियोऽपि यस्या पशुपतितनुतुल्यता याता ॥ ५ ॥

वाराणसी का वर्णन—

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूषण ऐश्वर्य गुणो से सम्पन्न मुक्त [जीवन्मुक्त] और विद्वानों से भरी वाराणसी नगरी है। जिस नगरी में शरीरधारी मनुष्य स्वेच्छापूर्वक माला चन्दन आदि उपभोगो का अनुभव करते हुए भी शिव महादेव में लय होने पर इनके लिए सब कुछ प्राप्य रहता है। अर्थात् कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। यहाँ की वारवनितायें भी महादेव के शरीर की तुल्यता (समानता) प्राप्त करती है इनका शरीर चन्द्र [कपूर] से सुन्दर बना रहता है। [शिव के शरीर पर चन्द्रमा शोभित है], वश्याय ऐश्वर्य म मग्न हैं [शिवजी भस्म में रत हैं], वारवनितायें भुजग (विटो) से घिरी हैं, [शिवजी साँपों से घिरे हैं], इस प्रकार से वाराणसी की वारवधू महादेव की समानता करती हैं ॥ ३-५ ॥

अतितुङ्गसुरनिकेतनशिखरसमुत्क्षिप्तपवनचलिताभि ।
मञ्जरितमिव विराजति यत्र नभो वैजयन्तीभि ॥ ६ ॥

वाराणसी के ऊंचे ऊँचे मन्दिरो मे भी लगी पताकायें ध्वजाय वायु से हिलने र मञ्जरी के समान शोभित होती हैं—(मञ्जरी के समान शब्द करता है) ॥ ६ ॥

प्रविष्टा कुट्टनीहीनगृह क्षीणपदा विटा ।
गाथा पठन्ति गायन्ति व्ययद्रविणमर्थित ॥
उत्कण्टका पुष्पमही वेश्यापिदमातृका ।
मन्त्रिहीना च राज्यश्रीर्भुज्यते विटचेटकै ॥

(ख) जयरयजञ्च जनवृक्षपाकिनी, मकृष्टमायावटिनी च कुट्टनी ।
देशोपदेश १ । २ समयमातृका-१ । ४१-४५

(ग) कुट्टनी—आयु में पकी स्त्री ही होती है—
पूर्वं चेटी ततो वेटी पश्चाद् भवति कुट्टनी ।
सर्वोपायपरिक्षीणा वृद्धा वेश्या तपस्विनी ॥ गणिकावृत्तसग्रह-१०१

अविरतसंचरदबलाचरणतलालक्तकद्रवारुणितम् ।
स्थलकमलवतीलक्ष्मीं विभर्ति वसुधातलं यत्र ॥ ७ ॥

यहाँ की पृथ्वी भी निरन्तर फिरती हुई स्त्रियों के पैरों में लगे महावर से लाल बनकर स्थलकमलिनी[1] की शोभा को धारण करती है ॥ ७ ॥

यत्र च रमणीभूषणरवबधिरितसकलदिङ्नभोभागे ।
शिष्याणामाचार्यैर्नावद्यमवधार्यते पठताम् ॥ ८ ॥

जिस वाराणसी में स्त्रियों के आभूषणों की आवाज से सब दिशाओं के बधिर हो जाने पर, शिष्यों के अशुद्ध पाठ को पढ़ते हुए भी, आचार्य शुद्ध नहीं कर पाते ॥ ८ ॥

विन्ध्यधराधरभूरिव या राजति मत्तवारणोपेता ।
बहुलनिशीथवतीव प्रोज्ज्वलधिष्ण्योपशोभिता या च ॥ ९ ॥

विन्ध्याचल भूमि के समान वाराणसी बड़े-बड़े वारणों से युक्त है (वाराणसी में मकानों के चारों ओर बड़े-बड़े बरामदे हैं, विन्ध्याचल में बड़े मस्त हाथी हैं)। कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान वाराणसी उज्ज्वल धिष्ण्यों से शोभित है। (वाराणसी के पक्ष में–धिष्ण्य-प्रासाद मकान से शोभित है। रात्रि के पक्ष में–धिष्ण्य का अर्थ नक्षत्र, से शोभित है) ॥ ९ ॥

यतिगणगुणसमुपेता या नित्यं छन्दसामिव प्रचितिः ।
वनपंक्तिरिव सशाला तुरुष्कसेनेव बहुलगन्धर्वा ॥ १० ॥

जिस प्रकार छन्दःशास्त्र यति (पाठविच्छेद स्थल), गण (मगणादि) के गुणों से (ठीक स्थान पर रखने के गुणों से) शोभित होता है, उसी प्रकार से वाराणसी भी यतिगणों (सन्यासी समूहों) के गुण से शोभित है। जिस प्रकार से जंगल में शाल-वृक्ष होते हैं, उसी प्रकार यहां पर शालाओं की पंक्ति है; जिस प्रकार से तुरुष्क देश की राजसेना में बहुत से गायक (या घोड़े) होते हैं, उसी प्रकार यहाँ पर उत्तम घोड़े और गायक हैं। (तुरुष्क-तुर्किस्तान देश) ॥ १० ॥

1—स्थलकमलिनी—कई प्रकार की होती है। सब में प्रायः दो रंग होते हैं, किनारोंपर एक रङ्ग और बीच में दूसरा रङ्ग, किनारों पर लाल गुलाबी–बीच में पीला या श्वेत। परन्तु लाल रंगका विशेष अधिकतः मिलता है, इसीसे यहाँ पर महावर के साथ स्थलकमलिनी की उपमा दी है। मराठी में इसको 'लाल येगाना' कहते हैं।

तारागणोऽकुलीन प्रियदोषा यत्र कौशिका सततम् ।
गद्ये वृत्तच्यवनं परगृहरोधस्तथाऽक्षेषु ॥ ११ ॥

जिस प्रकार तारा समूह अकुलीन हैं (पृथ्वी में लीन नहीं होते) उसी प्रकार से वाराणसी में भी कोई अकुलीन (असत्कुल में उत्पन्न) नहीं है। उल्लू को दोषा (रात्रि) प्रिय है, यहाँ पर किसी को दोष (दुर्गुण) प्रिय नहीं। गद्य में वृत्तच्यवन (छन्द का नियम न होना) होता है, परन्तु वाराणसी में वृत्तच्यवन (सदाचार का भंग) नहीं होता। जुये में पाशा खेलने में दूसरे घर का रोकना होता है, यहाँ पर विरोध आदि से दूसरे घर का प्रतिबन्ध नहीं होता ॥ ११ ॥

शूलभृतो व्यालस्था पदवेदिषु यत्र धातुवादित्वम् ।
सुरतेष्वनलाक्रमणं दानच्छेदो मदच्युतौ करिणाम् ॥ १२ ॥

व्यालस्थ (क्षपणक आदि), शूल त्रिशूल को धारण करते हैं, परन्तु कोई शूल रोग से पीड़ित नहीं है। पदवेदियों में—वैयाकरणों में ही भू आदि धातु का विचार है कोई किमियागिरी से झूठे धातु बनाकर यहाँ ठगता नहीं। सम्भोग में ही स्त्रियों पर आक्रमण-वशीकरण होता है, वैसे कोई स्त्रियों पर आक्रमण नहीं करता। हाथियों में मदच्युति होने पर ही मदजल बहता है, यहाँ पर ब्राह्मणादि को दिये दान का कोई भंग नहीं करता—उनकी वृत्ति का उच्छेद कोई नहीं करता है ॥ १२ ॥

तीव्रकरत्वं भानोरविवेको यत्र मित्रहृदयानाम् ।
योगिषु दण्डग्रहणं सन्धिच्छेदः प्रगृह्येषु ॥ १३ ॥

सूर्य की किरणों में ही तीव्रता रहती है, राज्यकर में राज्यभाग में तीव्रता नहीं, मित्रों में परस्पर व्यवहार में ही भेद शून्यता रहती है, परन्तु किसी दूसरे में अविवेक प्रमाद नहीं मिलता। योगी लोग ही दण्ड ग्रहण करते हैं किसी अपराधी को दण्ड नहीं दिया जाता, व्याकरण प्रसिद्ध प्रगृह्य संज्ञा में ही सन्धि तोड़ी जाती है, किसी के घर आदि में चोर सन्धि सेंध नहीं तोड़ते। (न किसी की मैत्री का भंग किया जाता है) ॥ १३ ॥

छन्दःप्रस्तारविधौ गुरवो यस्यामनार्जवस्थितयः ।
वीणायां परिवादो द्विजनिलयेष्वप्रसन्नत्वम् ॥ १४ ॥

छन्दों में गुरु-लघु वर्ण के ज्ञापन के लिए गुरु वर्ण के लिए ही वक्र रेखा की स्थिति है, परन्तु वाराणसी में गुरु लोग अध्यापक कभी भी वक्र नहीं होते।

वीणा में परिवाद (बजाना) होता है, आप्त में परिवाद (निन्दा-अपमान) नहीं है। ब्राह्मणों के घरों में अप्रसन्नत्व मिलता है (प्रसन्ना-सुरा नहीं मिलती) ॥ १४ ॥

अनुरूपवृत्तघटना सत्कविरचितप्रबन्धेषु लोके च ।
रमणीवचने यस्यां माधुर्यं काव्यबन्धे च ॥ १५ ॥

सत्कवियों के बनाये नाटकों में और लोक में वृत्त-चरित्र और वर्त्तन के अनुरूप ही चित्रण और वर्त्तन मिलता है। काव्य-रचना में और स्त्रियों के वचनों में माधुर्य (आह्लाद चित्त को द्रवीभूत बनाने वाला भाव) है ॥ १५ ॥

यस्यामुपवनवीथ्यां तमालपत्राणि युवतिवदने च ।
नखप्रहाररणितं तन्त्रीवाद्येषु सुरतकलहेषु ॥ १६ ॥

जिस वाराणसी के उपवन में (कृत्रिम बगीचों में) तमाल के वृक्ष हैं, तथा युवतियों के कपोलों पर मकरिका आदि चित्रण हैं। नखों के प्रहार से कूजन या तो तन्त्री वीणा में होता है, अथवा फिर सुरत कलह में होता है ॥१६॥

नन्दनवनाभिरामा विबुधवती नाकवाहिनीजुष्टा ।
अमरावतीव यान्या विधिसृष्टा निर्मिता जगति ॥ १७ ॥

वाराणसी ब्रह्मा से बनाई दूसरी अमरावती है, इसमें नन्दनवन है (सुन्दर बाग-बगीचे हैं, अमरावती में नन्दनवन है) यहाँ पर बड़े-बड़े विबुध विद्वान हैं, (स्वर्ग में देवता हैं), वाराणसी में नाकवाहिनी गंगा है (अमरावती में देव-सेना है), इस प्रकार से यह दूसरी अमरावती बनी हुई है ॥ १७ ॥

तस्यां खगपतितनुरिव विलासिना हृदयशोकसंजननी ।
आकृष्टेश्वरहृदया प्रालेयनगाधिराजतनयेव ॥ १८ ॥

मालती का वर्णन—

इस वाराणसी में भगवान्-गरुड़ के शरीर की भाँति विलासियों के (भोगी-पक्ष में सर्पों के) लिये हृदय शोक को उत्पन्न करने वाला (जिसके देखने मात्र से चिन्तन करने पर उद्वेग उत्पन्न होने लगता है, अन्यत्र भय उत्पन्न करने वाला), ईश्वर (धनिकों के—पक्ष में महादेव के) के हृदय को खींचने वाली प्रालेयनगाधिराज-तनया की भाँति (हिमाचलसुता—पार्वती) मालती रहती है ॥ १८ ॥

समसक्तभोगिनेत्रा मन्दरधरणीभृतो यथा मूर्तिः ।
उपरि गता शूलानामन्धासुरगात्रमेदेव ॥ १९ ॥

जिस मालती में भोगियों ने (कामियों ने) नेत्र लगे हुए हैं (पक्ष में समुद्र मन्थन के समय वासुकिसर्प रूप नेत्र-नेता मन्थन-रस्सी लगी है), जिस प्रकार से महादेव जी के त्रिशूल के ऊपर अन्धासुर का शरीर पहुँचा है, उसी प्रकार यह सबके ऊपर पहुँची है—सबसे बड़ी है ॥ १६ ॥

समुवास वाररामा मानसवसते शरीरिणी शक्ति ।
निःशेषवेशयोषिद्विभूषणं मालती नाम ॥ २० ॥ (विशेषकम्)

काम की शारीरिक शक्ति के रूप में सम्पूर्ण वेश्याओं की नाक बनी उत्तम स्त्री-वेश्या मालती वहाँ रहती थी ॥ २० ॥

पेशलवचसा वसतिर्लीलानामालय स्थिति प्रेम्ण ।
भूमि परिहासानामायसथो वक्रकथितानाम् ॥ २१ ॥

मालतीपेशल-कोमल सुन्दर वचनों के बोलने में प्रवीण, लीलाओं का निवास स्थान, प्रेम की स्थिति रहने का स्थान, हास्य विनोद की भूमि, वक्रोक्ति का आवास निवास है ॥ २१ ॥

सा शुश्राव कदाचिद्धवलालयपृष्ठदेशमधिरूढाम् ।
केनापि गीयमाना प्रसङ्गपतितामिमामार्याम् ॥ २२ ॥

कथा का प्रारम्भ—

कभी उसने धवल मन्दल[1] के ऊपर के भाग पर चढ़े हुए—किसी से प्रसङ्गवश गाई हुई नीचे की आर्या को सुना ॥ २२ ॥

'यौवनसौन्दर्यमदं दूरेणापास्य वारवनिताभि ।
यत्नेन वेदितव्या कामुकन्दयार्जनोपाया' ॥ २३ ॥

वेश्याओं को चाहिये कि अपने यौवन के सौन्दर्य का अहंकार भुला कर कामी जनों के हृदय को जीतने का उपाय किसी से सीखें—किसी को गुरु बनायें [वेश्याओं का गुरु कुट्टनी है] ॥ २३ ॥

श्रुत्वाथ विपुलजघना मनसीदं मालती चकार चिरम् ।
अतिसाम्प्रतमुपदिष्टं सुहृदेवानेन साधुना पठता ॥ २४ ॥

इसको सुनकर विपुलजघनों वाली मालती ने देर तक मन में सोचा कि इस ने मित्र की भाँति बहुत ही उचित सामयिक बात कही है ॥ २४ ॥

१—धवलगृह—[धौराहर-धराहरा]—राजकुल के भीतर राजा और महादेवी के निवास का मुख्य महल धवलगृह कहलाता था। हर्ष चरित का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ–२१ पर डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने इसकी विस्तृत जानकारी दी है।

तद्गत्वा पृच्छामो विकरालां कलितसकलसंसाराम्।
यस्याः कामिजनौघो दिवानिशं द्वारमध्यास्ते ॥ २५ ॥

इसलिये सम्पूर्ण संसार को निगले हुए—विकराला कुट्टनी के पास जाकर पूछती हूँ—गुरु बनाती हूँ। जिस विकराला के दरवाजे पर रात दिन कामिजनों का झुण्ड बैठा रहता है ॥ २५ ॥

इति मनसि सा निवेश्य द्रुततरमवतीर्य वेश्मन शिखरात्।
विकरालाभवनवरं परिजनपरिवारिता प्रययौ ॥ २६ ॥

मन में यह सोच कर, जल्दी से मकान से उतरकर, सम्बन्धी जनों के साथ विकराला के घर की ओर चली ॥ २६ ॥

अथ विरलोन्नतदशना निम्नहनुं स्थूलचिपिटनासाग्राम्।
उल्बणचूचुकलम्बितशुष्कचुचस्थानशिथिलकृत्तितनुम् ॥ २७ ॥

विकराला का वर्णन—

विरल-दूर दूर आगे निकले उठे दान्तों वाली, नीचे ठुड्डी चिबुक, नासा का अगला भाग मोटा और चपटा, उल्बण [अतिशय अधिक काले या सामने निकले] चूचुक ढीले-सूखे स्तनों, शरीर की त्वचा शिथिल होने से लटक गई है ॥ २७ ॥

अवलोक्य सा विधाय क्षितिमण्डललीनमौलिना प्रणतिम् ।
परिपृष्टकुशलवार्ता समनुज्ञातासन भेजे ॥ ३१ ॥

विकराला को देखकर मालती ने भूमि पर सिर रखकर प्रणाम किया, कुशल मगल पूछने पर आज्ञा मिलने पर आसन पर बैठ गई ॥ ३१ ॥

अथ विरचितहस्तपुटा सप्रश्रयमासन समुत्सृज्य ।
इदमूचे विकरालामवसरमासाद्य मालती वचनम् ॥ ३२ ॥

इसके पीछे आसन को छोडकर खडी होकर विनय पूर्वक हाथ जोड कर समय पाकर मालती ने विकराला से कहा ॥ ३२ ॥

विदधासि हरिमकौस्तुभमहरि हरिमगजनाथममरेन्द्रम् ।
अद्रविण द्रविणपति नियत मतिगोचरे पतितम् ॥ ३३ ॥

विकराला के पराक्रम का वर्णन—

आप अपनी बुद्धि वैभव—चतुराई से विष्णु को कौस्तुभ मणि रहित कर सकती हैं, सूर्य को उसके घोडा से अलग कर सकती हैं, इ द्र से ऐरावत को छीन सकती हैं, कुबेर को निर्धन बना सकती हैं, यह सब निश्चित है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥

अयमेव बुद्धिविभव हतविभवास्ते पटच्चरावरण ।
कामुकलोक कथयति सत्रागारेषु भुञ्जान ॥ ३४ ॥

निर्धन बने, फटे चीथडे पहने, सत्रागारों में भोजन करते हुए कामी जन आपके इसी बुद्धि वैभव का चर्चा करते हैं ।

उपसहृतान्यकर्मा धनवर्मा नर्मदाङ्घ्रियुगलस्य ।
सकलसमर्पितसम्पद्युपेत पादपीठत्वम् ॥ ३५ ॥

धनवर्मा नामक कोई नौजवान दूसरे सब कामों को छोडकर नर्मदा नामक वेश्या के चरणों म अपना सब धन समर्पित करके अब उसके पैरों की सेवा करता है ॥ ३५ ॥

यदुपनवो नयदत्त सागरदत्तस्य मध्यम पुत्र ।
प्रीणाति मदनसेना विधाय पितृमन्दिर रिक्तम् ॥ ३६ ॥

सागरदत्त का मध्यम पुत्र नयदत्त नम्र बनकर घर को खाली करके मदन सेना को प्रसन्न करता है—सब धन उसको दे रहा है ॥ ३६ ॥

यल्लीलार्पितचरणौ मञ्जर्या भट्टपुत्रतर्रसिह ।
परितोष नर्तति पर मृदु मृदुनन् पाणियुगलेन ॥ ३७ ॥

इदमेव समुल्लपितं लीलावति विजितपरभृतध्वनितम् ।
तव निःशेषभुजगव्याकर्षणसिद्धमन्त्र उच्चरितं ॥ ४८ ॥

हे लीलावति—तेरा वाग्विलास कोयल की कुहक को भी नीचा कर देता है। तेरा बोलना सम्पूर्ण विट को खींचने के लिए सिद्ध मन्त्र है। [पक्ष मे—भुजङ्ग सर्पों को खींचने के लिए सिद्ध मन्त्र है] ॥ ४८ ॥

इदमेव मन्मथकेतननिकेतनं स्तनयुगं तवाभोगि ।
भोगवति भोगसाधनमपरोपायग्रहो व्यर्थः ॥ ४९ ॥

हे भोगवति ! तेरे ये विशाल स्तन कामदेव का घर है, इनके होते हुए दूसरे भोग साधन के उपायों को ढूँढना व्यर्थ है ॥ ४९ ॥[1]

इदमेव बाहुयुगलं मृणालपरिकोमलं तव वरोरु ।
कस्य न जनयति मदनं वरकटकभूषितं सुतनु ॥ ५० ॥

हे उत्तम ऊरुवाली ! मृणाल के समान कोमल सुन्दर कड़े से शोभित तेरे ये बाहु युगल किस में चाह उत्पन्न नहीं कर देते ? (सबमें ही चाह उत्पन्न कर देते हैं) ॥ ५० ॥

अयमेव मध्यदेशः कन्दर्पादेशकरणचतुरस्ते ।
प्रकृशोऽपि शरीरवतो दशमीं प्रापयति मन्मथावस्थाम् ॥ ५१ ॥

कामदेव की आज्ञा मानने में चतुर यह तेरा मध्य भाग अतिकृश होने पर भी मनुष्यों को कामदेव की दसवीं[2] अवस्था (मृत्यु) में पहुँचा देता है—मार देता है ॥ ५१ ॥

इयमेव रोमराजिः सकलपजचापयष्टिगुणशोभाम् ।
दधती विदधाति तव स्मरसायकशल्यविह्वलान् यूनः ॥ ५२ ॥

तेरी यह रोमराजी कामदेव के धनुष की डोरी के समान सुन्दर है, जो कि युवकों को कामदेव के बाणों के अधीन बना देती है ॥ ५२ ॥

---

[1]—कुचक्रीडासौधं स्मरवसतिहेतोः विरचितं ।
कृताशा रोहार्थं वलिकपटनिःश्रेणिसरणिः ॥
ऋजुर्बद्धा रज्जुस्तदुपरि करालम्बनकृते ।
किमेषेत्या शङ्काममकुरुत तदा रोमलतिका ॥
कामिनीस्तनकान्तारे वसति स्मरतस्करः ।
मनो मा या विवस्त्र स दिवाऽपि कुरुते जगत् ॥

[2]—काम की दस दशायें—
अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः ॥ साहित्यदर्पण

इदमेव च पृथुलजघन कलधौतशिलातलाभिरमणीयम् ।
तव तरुणवशीकरणं यतिसयत्तिनाशकारि करभोरु ॥ ५३ ॥

हे करभोरु—स्वर्णपट के समान चिकना सुन्दर तेरा यह पृथुल जघन[1] तरुणों को वश में करने वाला एवं संयासियों की समाधि को तोड़ने वाला है ॥ ५३ ॥

इदमेव तवोरयुगं रम्भास्तम्भोपमं मनोहारि ।
यद् सुन्दरि नाभिमतं मदनज्वरतापशान्तये कस्य ॥ ५४ ॥

हे सुन्दरी ! केले के तने के समान सुन्दर तेरे ये दोनों ऊरु किसके काम जन्य ज्वर को शान्त करने के लिए पर्याप्त नहीं—सब के ही काम ज्वर को शान्त कर सकते हैं ॥ ५४ ॥

यौवनकल्पतरोस्ते कनकलताविभ्रमं सुवृत्तमिदम् ।
जंघायुगलं नेच्छति कामफलप्राप्तये क इह ॥ ५५ ॥

तेरे ये सुन्दर गोल जंघा युगल कल्पवृक्ष पर चढ़ी स्वर्णलता का भ्रम किसमें उत्पन्न नहीं कर देते—[सब में ही भ्रम हो जाता है]। इच्छित फल की चाह के लिए कौन इनको नहीं चाहता, सब चाहते हैं ॥ ५५ ॥

निर्जितदाडिमरागं विजितस्थलकमलिनीविलासमिदम् ।
तव तरुणि चरणयुगलं कस्य न मानसमलङ्कुरुते ॥ ५६ ॥

अनार की लाली को भी जिन्होंने तिरस्कृत कर दिया जिन्होंने स्थल कमलिनी की शोभा को जीत लिया है ऐसे तेरे चरण युगल किसके मन को शोभित नहीं करते—सबको ही पसन्द हैं ॥ ५६ ॥

ह्रेपयति वारणेन्द्रं हंसं हसति प्रयातमिदमेव ।
तव लीलावति ललितं यूनां हृदयानि मथ्नाति ॥ ५७ ॥

तेरा चलना हाथी को भी नीचा दिखाता है हंस की चाल पर हंसता है हे लीलावति ! तेरा विलास युवकों के हृदय को बेचैन कर देता है ॥ ५७ ॥[2]

१—जघन—जहाँ पर तगड़ी बाँधी जाती है, ऊरु जानु से ऊपर का भाग, जंघा जानु से निचला भाग, चरण गुल्फ से निचला भाग पैर। काव्यों में स्त्री शरीर के वर्णन में—नाभि वलित्रय, रोमावलि, जघन मदनमंदिर, ऊरु, जानु, जंघा, गुल्फ चरण, पादांगुली, और नख इस क्रम से वर्णन किया जाता है।

२—विलास—यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् ।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना ॥ साहित्यदर्पण ३।९९

तदपि यदि ते कुतूहलमस्त्यवधानं सविधाय तनुमध्ये ।
आकर्णय कथयामि स्वबुद्धिविभवानुसारेण ॥ ५८ ॥

हे सुन्दरि ! यदि इस पर भी तुझे सुनने का शौक है, तो अपनी बुद्धि के अनुसार जो कहती हूँ—उसको ध्यान से सुनो ॥ ५८ ॥

स्वीकुरु तावत्प्रथमं नृपसेवकभट्टसुनुमतियत्नात् ।
स्वाधीनामतिविपुलां यदि संपदमीहसे सुतनु ॥ ५९ ॥

यदि तुम अति विपुल धन को अपना बनाना चाहती हो, तो सबसे प्रथम बहुत प्रयत्न करके राजसेवक भट्ट के पुत्र को अपना बनाओ ॥ ५९ ॥

प्रत्यासन्नग्रामे स्वयं प्रभुः पितरि नित्यकटकस्थे ।
भट्टसुतश्चिन्तामणिराकृष्टो भवति पुत्रि नियमेन ॥ ६० ॥

पिता उसका सदा सेना के साथ रहता है इसलिये, स्वयं स्वामी बना भट्टपुत्र चिन्तामणि यहां नगर के पास रहता है हे पुत्रि ! वह जरूर तुम्हारी ओर खिंचेगा ॥ ६० ॥

शृणु तस्य चारुहासिनि वेषग्रहणं च चेष्टितं चैव ।
निपतति तथा च तूर्णं प्रियसुरभिशरासनप्रसरे ॥ ६१ ॥

हे चारुहासिनि ! भट्टपुत्र के वेष और चेष्टाओं को सुनो—[इनको जानकर उसी प्रकार बरतना]। जिससे कि काम के वश में होकर जल्दी ही गिर पड़ेगा, तुम्हारे वश में हो जायेगा ॥ ६१ ॥[1]

स्थूलस्थापितचूडः पञ्चाङ्गुलमात्रकेशविन्यासः ।
लम्बश्रवणनिवेशितकरपत्रकघटितदन्तपङ्क्तिश्च ॥ ६२ ॥
करशाखार्पितमुद्रिकचामीकरकण्ठसूत्रिकाभरणः ।
परिमृष्टगात्रकुङ्कुमकिंचित्पिञ्जरितवसनसंवीतः ॥ ६३ ॥
प्रविलम्बिकुसुमदामकगलमण्डनजातरूपकृतशोभः ।
अन्तर्निविष्टसिक्थकतौरुष्किस्तुम्भिकादिचरणत्रः ॥ ६४ ॥
नानावर्णनिवेष्टितबहलन्शपाशबद्धततकेशः ।
एकस्मिन्लवीटकमपरस्मिन्सीसपत्रकं कर्णे ॥ ६५ ॥
उत्खण्डकनकर्णाभिः कुङ्कुमपिञ्जरितवसनपरिधानः ।
स्थूलतरकाचवर्त्तकमालां च गले दधानेन ॥ ६६ ॥
सूरिचपरजितस्वरहस्वमूलनिबद्धशासचक्रेण ।
प्रथमवयस्त्वं भजता ताम्बूलकरङ्कवाहिनानुगतः ॥ ६७ ॥

---

[1]—प्रियसुरभि—प्रियवसन्त—काम, तस्य शरासनप्रसरे शरपातविषये इत्यर्थः ।

भट्टपुत्र के वेष का वर्णन—

लम्बी-मोटी चोटी रक्खे; शिर के बाल पाँच अंगुल छोड़े; कानों में करपत्र के आकार का हाथी दाँत से बना विशेष आभूषण पहिने; हाथ की अँगुली में सोने की अंगूठी, गले में सूत में गूँथा आभूषण धारण किये; शरीर पर केसर का लेप लगाये; कुंकु विकुसित [पीला-लाल] वस्त्र पहने हुए; गले में सोने के बनी सुन्दर लम्बी लटकती माला धारण किए; मोम एवं शिल्हक[1] से चिकना और सुगन्धित बना, नाल लगा, जूता पहने; किनारों पर से उज्ज्वल; नाना प्रकार के सूत्रों से लम्बे बालों को बाँधे; एक कान में दलवीटक और दूसरे कान में आभूषण धारण[2] किए; साफ दिखानेवाले सोने के धागों से निकला —केशर के रंग से रंगा वस्त्र पहने; गले में बड़े बड़े काचमनकों को धारण किये; लाल पुनर्नवा के रस से नाखूनों को रँगे; कलाई में शंख और चक्र को बाँधे हुए; यौवनावस्था में पहुँचे; साथ में ताम्बूलकरंकवाहिनी को लिये भट्टपुत्र को तुम देखोगी ॥ ६२-६७ ॥[3]

१—तुरुक-शिल्हक-शिलारस-सुगन्धित द्रव्य, जिससे धूप बनती है। सिक्थ मोम जूते के अन्दर पतावे पर तथा अन्दर की ओर मोम और शिलारस लगाने से पैरों में बिवाई तथा धूल-रेत से कष्ट आदि रोग नहीं होते-पैर नरम रहते हैं।

२—दलवीटक—पत्तेमें लिपटा पान या इस प्रकार का कोई आभूषण, सीसपत्रक भूषण विशेष, अथवा कान बींधने पर तुरन्त सीसक या रांग का छल्ला बनाकर डाल देते हैं, ये दोनों धातुयें नरम होती हैं, इसीसे बींधने के पीछे कष्ट नहीं होता—साथ ही छेद भी बंद नहीं होता। जब कान इनका अभ्यस्त हो जाता है, तब चांदी या सोना का आभूषण पहनाते हैं।

३—सोने के तारों से निकले वस्त्रों का उल्लेख अन्यत्र भी है—
'सतलविविघलेखा चौमवस्त्रावृताङ्गैः ॥" हृदय ७। ७८,

वृश्चिक—पुनर्नवा एवं कुरवक-झिण्टी दोनों अर्थ हैं, सम्भवतः इनमें लाल पुनर्नवा और लाल फूलकी झिण्टी नखोंके रंगने के काम आती हो। देखिये प्राचीन भारत के प्रसाधन— अत्रिदेव विद्यालंकार। कलाई में आज भी गेंडे के चर्म का बना कड़ा हीन दृष्टि आदि को दूर करने के लिये पहनते हैं, ताम्बूल करंकवाहिनी का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः मिलता है, यथा कादम्बरी में पत्रलेखा का वर्णन।

श्रेष्ठिवणिग्विटकितवप्रधानरंगस्य सुमहतो मध्ये ।
शूलापालस्थापितकतिपयमद्धोरुपीठिकासीन || ६८ ||
उत्सगार्पितखड्गैरयथार्थमपिविभिर्मदोद्धूत्यम् ।
विभ्राणैरनुजीविभिरधिष्ठित पञ्चष पुष्पैः || ६९ ||
चतुरतरसेवकार्पितपृष्ठपरिचिह्नपूर्वदेहार्ध ।
अन्तर्धृतताम्बूलप्रोन्नद्धकपोलललितस्पर्शं || ७० ||
अनपेक्षितप्रसङ्ग पुन पुन पठति सोन्नतभ्रू ।
गाथाश्लोकप्राय भावितचेता यथार्थयाऽयातम् || ७१ ||
निस्सयलोलितमौलि पाणिगतास्ताडयन् रसावेगात्।
हा न्तु साध्विति वादैरन्तर्यति परसुभाषितश्रवणम् || ७२ ||
इदमुक्तो रहसि न्पा तातेन नृपो, नृपेण तातोऽपि ।
इति पितुरपिपुरुतते महीभृत प्रणयविश्वासौ || ७३ ||
पत्रच्छेदमजानन् जानन् वा कौशल कलाविषये ।
प्रकटयति जनसमाने विभ्राण पत्रकर्तरीं सततम् || ७४ ||

भट्टपुत्रकी चेष्टाओं का वर्णन—

धनिक, वणिक्, विट, कितव, प्रधान रंगशाला नृत्यशाला के मध्य में यष्टि-रक्षक द्वारा लाये हुए गोल-लाल वस्त्रों से बने ऊँची सिंहासन आसन चौकी पर बैठा हुआ, शराब के नशे में पागल होने के कारण अमर्गत बोलते हुए, गोद में तलवार रक्खे, पाँच छः सेवकों के साथ, चतुर सेवक द्वारा दिये हुए तकिये का सहारा लेकर आधा लेटे हुए, मुख के अन्दर पान का बीड़ा रखने से फूले हुए गालों को हाथ से छूते हुए, बिना प्रसंग के ही भुना को ऊँचा उठा करके, श्लोकमयी गाथा को अशुद्ध रूप में पढ़कर प्रसन्न होते हुए, आश्चर्य से शिर को हिलाते हुए, रस आनन्द के अतिरेक में पास में बैठे हुआ को थपथपाते हुए, दूसरे से सुनाये सुभाषितों को अच्छा-बुरा कहकर रोकते हुए, पुत्र ने पिता को और पिता ने पुत्र को भाव से एकान्त में यह कहा था' यह कहकर पिता पुत्र के ऊपर राजा के अतिशय प्रीति और विश्वास को बताते हुए, पत्रच्छेद परमम को न जानते हुए, या थोड़ा बहुत जानते हुए—जन समाज में कला सम्बन्धी अपना कौशल दिखाने के लिए सदा पत्रकर्तरी साथ में लिये भट्टपुत्र को तुम देखोगी || ६८–७४ ||[1]

1—विट्—कामक कला कोविद, अथवा नायक और नायिका का सन्देश एक-दूसरे को पहुँचाने वाला, कितव—धूर्त या जुआरी, रंग (रज्यते जनो स्मिन्) रंगशाला-नृत्यशाला-शूलपाला-अध्यक्ष ।

"ब्रह्मोक्तनाट्यशास्त्रे गीते मुरजादिवादने चैव।
अभिभवति नारदादीन् प्रावीण्यं भट्टपुत्रस्य ॥ ७५ ॥

भट्टपुत्र की मिथ्या स्तुति—

ब्रह्मा से कहे नाट्यशास्त्र में, गायन में, मुरज आदि [मृदग आदि] बजाने में भट्टपुत्र की प्रवीणता नारद आदि को भी नीचा दिखाती है ॥ ७५ ॥

वसुनन्दचित्रदण्डकमुक्तायुधखड्गधेनुकन्धेषु।
त्यजति पुरतोऽस्य नियतं भार्गवतां परशुरामोऽपि ॥ ७६ ॥

वसु, नन्द, चित्र, दण्ड[1], मुक्तायुध [चक्र आदि अस्त्र], तलवार, धेनु [छुरी] आदि शास्त्रों के प्रयोग में इसके आगे परशुराम भी अपनी चतुराई को निश्चित भूल जाता है ॥ ७६ ॥

वात्स्यायनमयमबुध वाह्यान्दूरेण दत्तकाचार्यान्।
गणयति मन्मथतन्त्रे पशुतुल्यं राजपुत्रं च ॥ ७७ ॥

इसने वात्स्यायन को भी नहीं पढ़ा, यह दत्तकाचार्य से बनाये वैशिक सशक छठे अधिकरण के पास भी नहीं गया, मन्मथ तन्त्र में राजपुत्र को पशु तुल्य समझता है ॥ ७७ ॥[2]

य प्रार्थितोऽपि यत्नात् कवचं राधासुतो ददातिस्म।
अविचिन्तितवसुवर्षस्त्यागगुणं हसति तस्यायम् ॥ ७८ ॥

जिस कर्ण ने बहुत बार प्रयत्न पूर्वक मागने पर अपना कवच दिया था, उसके इस त्याग पर, बिना सोचे समझे अपना धन लुटाने वाला यह भट्टपुत्र, हँसता है ॥ ७८ ॥

प्रपलायनैकहृदये यो विक्रममातनोति हरिणेऽपि।
सिंहस्य तस्य शौर्यं त्रपाकरं भवति भट्टपुत्रस्य ॥ ७९ ॥

भागने में मन लगाये हरिण के शिकार म जो पराक्रम करता है, ऐसे भट्टपुत्र के शौर्य के आगे सिंह का पराक्रम भी पानी भरता है ॥ ७९ ॥

आखेटकेऽपि कौतुकमस्त्येव जयश्च चचले लक्ष्ये।
भट्टभयेन न खेलति भट्टसुत किंत्वतिप्रकटम् ॥ ८० ॥

१—वसु, नन्द, चित्र—ये गति भेद हैं, दण्ड से दण्डक व्यूह विशेष, मुक्तायुधो जो अस्त्र हाथ से फेंक कर चलाये जाते हैं।

२—दत्तकाचार्य—पाटली पुत्र की वेश्याओं के कहने से इसने कामशास्त्र के अगभूत वैशिक अधिकरण को पृथक् बनाया था।

राजपुत्र—कोई पुराना कामशास्त्र का आचार्य, पालकाप्यय हस्त्यायुर्वेद में (३ । ८ । ००) इसका नाम है।

भट्टपुत्र को शिकार का शौक है, अस्थिर लक्ष्य के जीतने में निपुण है, भट्ट पुत्र पिता के डर से खुलकर अपना शौक पूरा नहीं करता ॥ ८० ॥

इति निजसेवकनिगदितरामणिक्यवचनजनितपरितुष्टया ।
अन्तर्मुदितो ब्रूते मामेष खलीकरोतीति ॥८१॥

इस प्रकार अपने नौकर चाकरों से की हुई अपनी प्रशंसा को सुन कर— आनन्द से अन्दर ही अन्दर प्रसन्न होकर उनसे कहता है कि ये सब तो मुझे बनाते है, झूटी प्रशंसा करता है ॥ ८१ ॥

"कतमत् कतमल्लग्न प्रस्थानं, का च नर्तकी भद्रा ।
विटरसटके का नृत्यति कोहलभरतोदितक्रियया ॥८२॥

नाट्यादि शास्त्र का दुर्गम विषय कौन-कौन सा जाना हुआ है, कौन सी श्रेष्ठ नर्तकी है, कोहल और भरत के कहे हुए अनुसार विटों के समूहों में कौन नाचती है[1] ॥ ८२ ॥

कीदृक्त्वं न (ल ?) यमार्गे घेनुकरचिते च तालके कीदृक् ।
प्रेङ्खणकादावेवं पृच्छति नृत्योपदेशकं यत्नात् ॥८३॥

तुम्हारा लय ज्ञान कैसा है, घेनुक से बनाये ताल को कितना जानते हो,

---

१—नर्तकी लक्षण—यौवनादिगुणोन्मत्ता नृत्तगीतविचक्षणा ।
सदा मगरमा च तथा स्वच्छावस्या जितश्रमा ॥
समागतासु नारीषु रूपयौवनकान्तिषु ।
न दृश्यते गुणैस्तुल्या नर्तकी सा प्रकीर्तिता ॥

विटलक्षण—वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः ।
ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत् ॥ २४ । १०४

विटसेटक—विटों के आकांक्षा चाह विट सेटक के स्थानपर— शृंगार के का नृत्यति भी पाठ है, शृंगाटक चौराहा सुबा स्थान । त्रिपाठी जीने पिंगट के पाठ ठीक माना है—मराठी में होली के लिये पिंगा शब्द आता है—

पिंग का लक्षण—सख्याः समक्षं पायुर्यद्दुदृषवं कृष्णमुच्यते ।
मसृणं च क्वचिद् धूर्तं चरित पिंगट कस्तु सः ॥

कोहल—भरत पुत्र, भरत—ये दोनों नाट्याचार्य हैं ।

प्रेंखणक-उपरूपक में तुम्हारा कितना प्रवेश है, इस प्रकार नृत्य उपदेशक-नृत्य के आचार्य से पहले पूछता है[1] ॥ ८३ ॥

सुमनोमाला कण्ठात् सादरचेता ददाति नर्तक्यै ।
अपनीय सताम्बूलामनवसरे साधुवादं च ॥ ८४ ॥

भट्टपुत्र बड़े सम्मान के साथ अपने गले की फूलों की माला को उतार कर (पिता की आँख बचाकर) ताम्बूल के साथ नर्तकी को देता है, बिना समझे ही बीच-बीच में वाह-वाह करता है ॥ ८४ ॥

भुजचलनगात्रसंस्थितिलालित्योद्वहनपार्श्ववलितानि ।
अनयैव निर्मितानि स्थानकशुद्धिश्च चातुरस्य च ॥ ८५ ॥

ऐसा भास होता है कि हाथों भुजाओं का चलाना, मोड़ना, शरीर को स्थिर करना, लालित्य पार्श्वों में झुकना, कौशल प्रदर्शन, चातुरस्य-आदि भाव विशेष इसी ने बनाये है, इनको अच्छी प्रकार जानता है ॥ ८५ ॥

प्रविभक्तैर्भावरसैरभिनवभङ्ग्या परिक्रमैश्चित्रैः ।
रम्भामप्यतिशेते किमुतेतरनर्तकीलोकम् ॥ ८६ ॥

रति आदि भावों[2] की पृथक् पृथक् अभिव्यक्ति, शृंगार आदि रसों की नई नई रचना से, नाना प्रकार की परिक्रमाओं से, नृत्य में घूमने से रम्भा को भी लजाता है, मनुष्य लोक की दूसरी नर्तकियों की बात ही क्या ? उनको तो अवश्य ही झेंपा देगा ॥ ८६ ॥

इत्यपसारकविरतावविरतमुच्चालितकण्ठमत्युच्चैः ।
वर्णयति भावितात्मा लक्षितपदमात्रया पात्रम् ॥ ८७ ॥

नृत्य बन्द करते हुए नर्तकी के निर्गमन सूचक गीत वादन की समाप्ति पर नृत्य में प्रसन्न हुआ वह ऊँचे स्वर में कुछ चुने हुए थोड़े ही शब्दों में नर्तकी की प्रशंसा करता है ॥ ८७ ॥

१—लय—नृत्य, गीत और वाद्य की समता का नाम लय है, अथवा तालों के बीच का समय लय कहलाता है ।

तालक्रियान्तरस्थायी द्रुतमध्यविलम्बितः ।
त्रिधा लय इति प्रोक्तो बद्धामस्त्रिविरवत् ॥

धेनुक—वन्यादि विशेषकी धेनुक संज्ञा है, अथवा धेनुक नाम के किसी गायक से बनाये गीत की संज्ञा है ।

प्रेङ्खणक—उपरूपक, गमसन्धि और अवमर्श सन्धि रहित ।

२—भाव-'निर्विकारात्मके चित्ते भाव प्रथमविक्रिया-साहित्यदर्पण ।।३७ ।

प्रायेण भट्टतनयो भवतीदृशवेषचेष्टितो भद्रे ।
तं मदनवागुरान्तः पातयसि यथा तथा ब्रूमः ॥ ८८ ॥

हे भद्रे ! अधिकतर इस प्रकार के वेश और चेष्टावाले भट्टतनय को कामदेव के जाल में जिस प्रकार से फँसा सकोगी उसी को कहती हूँ ॥ ८८ ॥

दूती का चुनाव—सबसे पहले दूती को भेजना चाहिए—

चतुरा प्रागल्भ्यवती परचित्तज्ञानकौशलोपेता ।
योज्या तस्मिन्दूती वक्रोक्तिविभूषिता प्रयत्नेन ॥ ८९ ॥

चतुर; खूब बात-चीत करने वाली, दूसरे के मन को समझने में कुशल, श्लेषात्मक बात करने में निपुण दूती को कोशिश से उसके पास पहुँचाना चाहिये[1] ॥ ८९ ॥

समुपेत्य तयाऽवसरे ताम्बूलं सुमनसश्च दत्त्वेत्थम् ।
अभिधातव्यं सुन्दरि मकरध्वजदीपकैर्वचनैः ॥ ९० ॥

हे सुन्दरि ! दूती भट्टतनय के पास जाकर समय को देखकर उसको ताम्बूल और फूल भेंट करके, मौका देखकर काम को बढाने वाले वचनों से बात करना प्रारम्भ करे ॥ ९० ॥

जन्मसहस्रोपचितैः पुण्यवयैरद्य फलितमस्माकम् ।
यत्त्वं नयनानन्दन नयनावसरं समेतोऽसि ॥ ९१ ॥

हजारों हजारों जन्म-जन्मान्तरों के पुण्यों का फल आज सामने आया है, जो आँखों को सुख देने वाला आपका दर्शन आज मिला ॥ ९१ ॥

---

१. दूती—"दूत्याः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी ।
बाला प्रव्रजिता कारुः शिल्पिन्याद्याः स्वयं तथा ॥
दूती के गुण—कलाकौशलमुत्साहो भक्तिश्चित्तज्ञता स्मृतिः ।
माधुर्यं नर्मविज्ञानं वाग्मिता चेति तद्गुणाः ॥
साहित्यदर्पण ३-१२८।१२९.
अनंगरंग में—"मालाकारवधूः सखी च विधवा धात्री नटी शिल्पिनी
सैरन्ध्री प्रतिगेहिकाऽथ रजकी दासी च सम्बन्धिनी ।
बाला प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता तक्रस्य विक्रेयिका
मान्या कारुवधूर्विदग्धपुरुषैः प्रेष्या इमाः दूतिकाः ॥ ८।११.
पत्रच्छेद—अपना अभिप्राय बताने के लिये भूर्जपत्र आदि पत्तों पर चतुराई से कटाव करना, पत्रकर्त्तरी-पत्तों को काटने के लिये कैंची, या पत्तों के साथ कैंची लिये ।

चाटुभ्रममनुरागं प्रणयरुपं विरहजनितशोकार्तिम् ।
प्रकटयति वाररमणी नटीव शिक्षाभियोगेन ॥ ६२ ॥

सिखाने से वेश्या भी नटी के समान मिथ्या प्रशंसा; स्नेह, प्रणय मिला क्रोध, विरह जनित शोक को दिखाने लगती है ॥ ६२ ॥

प्रवयसि यौवनशालिनि हीनकुले सत्कुलप्रसूते च ।
रोगवति दृढशरीरे समचित्ता योगिनश्च गणिकाश्च ॥ ६३ ॥

बड़ी आयुवाले वृद्ध और युवक में, हीन कुल में उत्पन्न और उत्तम कुल में उत्पन्न, रोगी एवं स्वस्थ शरीरवाले में, योगी और वेश्याओं का एक समान भाव रहता है ॥ ६६ ॥

उपचरिताप्यतिमात्रं पण्यवधू क्षीणसम्पद' पुंस ।
पातयति दृशं भ्रजत स्पृहया परिधानमात्रेऽपि ॥ ६४ ॥

बड़े परिश्रम के साथ सेवा की हुई भी वेश्या निर्धन व्यक्ति के पहने हुए वस्त्रों पर भी अपनी लालच भरी दृष्टि गड़ाये रहती है ॥ ६४ ॥

इत्थं दृढतरवासितमनसा पुंसामसाम्प्रतं पुरत ।
वेशविलासवतीनामशरीरशरव्यथाकथनम् ॥६५॥ (कुलकम्)

ऊपर के तीन श्लोकों में कहे हुए विचारों से युक्त चित्त वाले पुरुषों के सामने वेश्याओ के कामनाओं की बात करना व्यर्थ है ॥ ६५ ॥

केवलमगणितलाघवदूरपरित्यक्तधीरताभरणा ।
मुखरयति मा दुराशादग्धसखी तेन, कथयामि ॥ ६६ ॥

तुच्छता हीनता का विचार न करके, धीरता को दूर छोड़कर, यह जलमुही-दुराशा ही मुझे कहने के लिये प्रेरित कर रही है, इसीसे कहती हूँ ॥ ६६ ॥

हृदयमधिष्ठितमादौ मालत्या कुसुमचापबाणेन ।
चरमं रमणीवल्लभ लोचनविषयं त्वया भजता ॥ ६७ ॥

हे रमणीवल्लभ ! तुमको देखकर ही मालती का हृदय कामदेव के बाण से पूरे रूप में बिंध गया है—वह तुम्हारी हो उन गई है ॥६७॥

नीचे आठ श्लोकों में मालती की विपुल अवस्था का वर्णन—

क्षणमुत्पुलकिताङ्गी क्षणमुल्बणदाहवेदनावस्था ।
क्षणमुपजातोत्कम्पा स्वेदार्द्रवपु क्षणं भवति ॥ ६८ ॥

क्षण भर में मालती को रोमाच हो जाता है, थोड़ी देर में तीव्र दाह होने लगता है; तुरन्त ही कँपकँपी आ जाती है, और थोड़ी देर बाद ही सारा शरीर पसीने में नहा जाता है ॥६८॥

मुहुरविभावितहास्या मुहुरुज्झितधीरभावमत्युच्चैः ।
रोदिति गायति च पुनः पुनश्च मौनावलम्बिनी भवति ॥९९॥

क्षण भर में अपने आप हँसने लगती है, फिर तुरन्त ही घबराकर जोर-जोर से रोती है, कभी गाती है और तुरन्त ही मौन धारण कर लेती है ॥९९॥

पतति मुहुः पर्यङ्के मुहुरङ्के परिजनस्य मुहुरवनौ ।
किसलयकल्पिततल्पे मुहुरम्भसि मुहुरनङ्गसंतप्ता ॥ १०० ॥

कामाग्नि से सन्तप्त मालती–कभी बिस्तर पर लेटती है, कभी सम्बन्धी जन की गोद में पड जाती है और कभी भूमि पर; कभी पत्तों की बनी शय्या पर और कभी जल में लेटती है ॥१००॥

महिषीव पङ्कदिग्धा हंसीव मृणालवलयपरिवारा ।
सुभग मयूरीवासौ भुजंगविद्वेषिणी जाता ॥ १०१ ॥

सताप को दूर करने के लिये मालती ने शरीर पर कर्पूर चन्दन आदि का लेप किया है; जिससे वह कीचड से लिपटी भैंस के समान दीखती है; सताप को दूर करने के लिये उसने कमल नाल के कडा (आभूषण) पहने हुए हैं; इससे वह मृणाल समूह से घिरी हँसी के समान दीखती है। हे सुभग! इस समय वह मयूरी की भाँति भुजगों से द्वेष करने लग गई है (भुजग-साँपो से, तथा-भुजग-विटों से) मयूरी जैसे साँपों से द्वेष करती है, उसी प्रकार मालती भी अन्य विटों से द्वेष करने लगी है ॥१०१॥

कदलीचन्दनपंकपंकेरुहनीरहारघनसारम् ।
सुन्दरशशधरकान्तं नो शान्त्यै मदनहुतभुजस्तस्याः ॥ १०२ ॥

कामाग्नि में जलती मालती को केले की शीतलता, चन्दन का लेप, कमल, पानी, फूलों का हार, कर्पूर और चन्द्रकान्त मणि भी शान्ति नहीं दे पाते ॥१०२॥

अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला ॥ १०३ ॥

हे सखि! 'कर्पूर को दूर ले जा, हार को हटा दे, कमलों से क्या लाभ, कमल नालों की कोई जरूरत नहीं', इस प्रकार से बाला रात दिन कहती रहती है ॥१०३॥

संकल्पैरुपनीतं त्वामन्तिकमुल्लसन्मनोवृत्तिः ।
दृढमालिंगति पश्चात्स्वभुजापीडेन याति, वैलक्ष्यम् ॥ १०४ ॥

संकल्प-ध्यानावस्था से तुमको समीप में लाकर-प्रसन्न होकर दृढ आलिंगन

करती है—और पीछे अपनी ही भुजाओं को दबाने पर आश्चर्य करने लगती है[1] ॥१०४॥

कुसुमामोदी पवनः पिककूजितभृङ्गसार्थरसितानि ।
इयमियती सामग्री घटिता विधिनैव तद्विनाशाय ॥ १०५ ॥

सुगन्ध से भरी वायु, कोयल का कुहकना, अभिप्राय भरा भ्रमरों का गुंजन, यह सब सामग्री विधि ने उसके नाश के लिये ही बनाई है ॥१०५॥

अबला बलिना नीता दशामिमां मकरकेतुना रक्ष ।
आपत्पतितोद्धृतये भवति हि शुभजन्मनां जन्म ॥ १०६ ॥

बलवान् कामदेवने उस बेचारीको इस दशा तक पहुंचा दिया है, अब उसकी रक्षा करो। भले मनुष्यों का जन्म आपत्ति में फँसे व्यक्तियों के उद्धार के लिये ही होता है ('आपन्नार्तिप्रशमनफला सम्पदो ह्युत्तमानाम्'—मेघदूत) ॥१०६॥

नो गृह्णन्ति यथार्था अर्थिजनैर्निगदिता गिरः प्रायः ।
मालत्याः गुणलेशं शृणु धृष्टतया तथापि कथयामि ॥ १०७ ॥

अर्थियों द्वारा की गई गुणों की प्रशंसा को प्रायः लोग यथार्थ होने पर भी नहीं मानते। तथापि मालती के थोड़े से गुणों को धृष्टतावश कहती हूँ ॥ १०७ ॥

आस्फालयतो नूनं धनुरतनोः कौसुमं रजः पतितम् ।
संगृह्य सा सुगात्री विश्वसृजा निर्मिता तेन ॥ १०८ ॥

कामदेव ने धनुष तानते समय जो पुष्पमय धूल गिर पड़ी थी, उसी धूल को इकट्ठा करके ब्रह्मा ने उसके शरीर का निर्माण किया है ॥ १०८ ॥

उपहसति गिरिसुतायाः लावण्यं येन सततलग्नेन ।
न द्रवतामुपनीतं भोगीन्द्रविभूषणस्य देहार्धम् ॥ १०९ ॥

निरन्तर लगी हुई उस धूल के कारण वह पार्वती के लावण्य को भी हँसती है। क्योंकि पार्वती के लावण्य[2] से महादेव का आधा शरीर भी द्रव नहीं बन सका ॥ १०९ ॥

शशधरबिम्बार्धगतां छायामिव सैंहिकेयवदनस्य ।
अलिपटलनीलकुटिलामलकावलिमलिकसंनिधौ वहति ॥ ११० ॥

---

१. मेघदूत में इससे मिलता जुलता वचन आया है—
गाढाकाशप्रविहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु । मेघदूत उत्तर ४९ ।

२. मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥ दशरूपक ।

राहु के मुख में पहुँचे चन्द्रमा की काली छाया के समान भ्रमरों के समूह जैसी काली कुटिल केशराशि उसके ललाट के पास में है ॥ ११० ॥

सरसिजमस्थिरशोभं विभ्रमरहितं च मण्डलं शशिनः ।
केन समेतु समत्वं हृदयप्रियं मालतीवदनम् ॥ १११ ॥

मन को लुभाने वाले मालती के मुख की तुलना किससे करें, क्योंकि कमल की कान्ति अस्थिर है, चन्द्रमा का मण्डल विभ्रम (विलास) रहित है, इसलिये इनसे तो तुलना हो नहीं सकती ॥ १११ ॥

अलिरुपरि तदीक्षणयोर्भ्रान्त्वा सौगन्ध्यसूचितविशेषः ।
निपतति कर्णाम्बुरुहे निर्गुणताप्यवसरे साध्वी ॥ ११२ ॥

विशेष सुगन्ध से खिंचा भ्रमर भी में उसकी आँखों पर आकृष्ट होकर कानों में गिर पड़ता है, मौके पर निर्गुणता भी भली होती है (भ्रमर गुणहीन न होता तो उसकी आँख की दुर्गति कर डालता) ॥११२॥

बिम्बाद्येऽरुणिमानं सहजं जितबन्धुजीवरुचिमधरे ।
यदलक्तकविन्यसनं तत्तस्या मण्डनक्रीडा ॥ ११३ ॥

स्वाभाविक लाली लिये हुए-दुपहरिया पुष्प की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले होठों पर जो लाल रंग लगाया है, वह तो केवल अलंकार करने का खिलवाड़ ही है[1] ॥ ११३ ॥

चित्रमिदं यत् कृशता तस्या वलिपरिगृहीतमध्यस्य ।
अथवा नो विधिविहिता महताप्यपनीयते तनुता ॥ ११४ ॥

त्रिवली वाले उसके या बलवान मध्यभाग में जो कृशता ब्रह्मा ने बनाई है, वह पतलापन बहुत कोशिश करने पर भी दूर नहीं किया जा सकता, यह आश्चर्य है (वली का अर्थ वली और बलवान है ।) ॥ ११४ ॥

आस्तामपरस्तावत्तस्याः स्मरवसतिपृथुतरनितम्बः ।
श्लथयति कपिलमुनेरपि दृक्पथपतितः समाधानम् ॥ ११५ ॥

और सब बातों को छोड़ो, काम का वास स्थान-उसका जो विशाल नितम्ब है, उसको देखकर कपिल मुनि भी समाधि लगाना भूल जाते हैं ॥ ११५ ॥

तस्या रम्भावपुषो रम्भोपममूरुयुगलमवलोक्य ।
मकरध्वजोऽपि सहसा निजसायकलक्ष्यतां याति ॥ ११६ ॥

---

1. ऐसा भाव कालिदास ने भी वर्णन किया है—

तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्तेः प्रसाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य ।
न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या कालाञ्जनं मङ्गलमित्युपात्तम् ॥

कुमार ७।२० ।

कामदेव को चाहिये कि वह फूलों के धनुष को रख दें और बाणों को तरकस में फेंक दे। क्योंकि उसका काम करने के लिये अकेली मालती पर्याप्त है ॥ १२२ ॥

वात्स्यायनमदनोदयदत्तकविटपुत्रराजपुत्राद्यैः ।
उल्लपितं यत्किंचित्तस्या हृदयदेशमध्यास्ते ॥ १२३ ॥

वात्स्यायन [कामशास्त्र का कर्त्ता]; मदनोदय; दत्तक [वेश्याधिकरण का कर्त्ता]; विटपुत्र, राजपुत्र आदि ने जो कुछ भी कहा है; वह सब उसके हृदय में स्थित है—यह सब अच्छी प्रकार जानती है ॥ १२३ ॥

भरतविशाखिलदंतिलवृक्षायुर्वेदचित्रसूत्रेषु ।
पत्रच्छेदविधाने भ्रमकर्मणि पुस्तसूदशास्त्रेषु ॥ १२४ ॥
आतोद्यवादनविधौ नृत्ते गीते च कौशलं तस्याः ।
अभिधातुं यदि शक्तो वदनसहस्रेण भोगिनामीशः ॥ १२५ ॥

भरत [नाट्यशास्त्र कर्त्ता]; विशाखिल [कलाशास्त्र कर्त्ता]; दन्तिल [कोहल का शिष्य - संगीताचार्य] के बनाये शास्त्रों में; आयुर्वेद, चित्रकर्म [आलेख्यकर्म]; सूत्रकर्म (सीवन-कर्म या अगुंली में धागा डालकर नाना प्रकार के रूप बनाने में); पत्रच्छेदन; भ्रमकर्म (ऐन्द्र जालिक), पुस्त (मिट्टी आदि के मॉडल); सूदशास्त्र (रसोई); आतोद्य (वीणा, मुरज, वंसी, कांस्यक) के बजाने में; नृत्त (ताल और लय के साथ नाचने) में; गाने में मालती के कौशल को शेषनाग ही अपने हजारों मुखों से कहने में समर्थ हो सकेगा[1] ॥१२४-१२५ ॥

परिगलदालोलांशुकमपयंत्रणमुरसि मालती रभसात् ।
निपतति नाऽपुण्यवतां रतिलालसमानसा रहसि ॥ १२६ ॥

प्रेम से बेचैन होकर स्तनों से खिसकते हुए वस्त्र को एकान्त में छाती पर सहसा ठीक करती हुई मालती को पुण्यशाली मनुष्य ही देख सकते हैं ॥१२६॥

रतिरसरभसास्फालनचलवलयनिनादमिश्रितं तस्याः ।
तत्कालोचितमणितं श्रुतिपथमुपयाति नाऽल्पपुण्यस्य ॥ १२७ ॥

---

1. वेश्या को कामशास्त्र के साथ कलाओं में भी निपुण होना चाहिये—
आभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता ।
लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥ कामसूत्र
विशाखिलः—कलाशास्त्रकर्त्ता—विशाखिलादिप्रणीतानिकलाशास्त्राणि-काव्यालंकारवृत्ति [१।३।७]; पत्रच्छेद—पत्रभंग-मकरिका आदि; कपोल आदि पर चित्रकर्म-प्रसाधन; पुस्त—मृदा वा दारुणा वाऽथ वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा । लोहरत्नैः कृतं वाऽपि पुस्तमित्यभिधीयते ॥

रतिरस के वेग से परस्पर सम्भोग में हिलते हुए वलयों से मिश्रित उस समय का उसका रतिकूजन (रतिसमय का शब्दविशेष) थोडे पुण्यशालियों के सुनने में नहीं आ सकता, इसे तो बडे पुण्यशाली ही सुनते हैं ॥१२७॥

इत्थमभिधीयमानः शुभमध्ये यदि भवेदुदासीनः ।
एवं ततोऽभिधेयः संदर्शितकोपया दूत्या ॥ १२८ ॥

हे शुभमध्ये ! इतना सुनने के पीछे भी यदि भद्रनायक उपेक्षा ही दिखाये, तब दूती को चाहिये कि क्रोध दिखाकर इस प्रकार से कहना प्रारम्भ करे ॥१२८॥

किं सौभाग्यमदोऽयं यौवनलीलाभिरूपतादर्पः ।
सहजप्रेमोपनता मालतिका न बहु मन्यसे येन ॥ १२९ ॥

तुमको क्या अपने सौभाग्य का गर्व है, अथवा जवानी की सुन्दरता का अभिमान है, जिससे तुम स्वाभाविक प्रेम से आई मालती को कुछ नहीं समझते हो ॥१२९॥

न गणयति या कुलीनान्द्रविणवतः शास्त्रवेदिनः प्रणतान् ।
सा भवदर्थे शुष्यति कुस्थाननिवेशितं धिगनुरागम् ॥ १३० ॥

मालती तुम्हारे लिये कुलीन पुरुषों को, धनिकों, विद्वानों, नम्र बने पुरुषों को भी नहीं पूछती, तुम्हारे लिये सूखकर काँटा बन रही है, (अयोग्य स्थान में) किये प्रेम को धिक्कार है ॥१३०॥

कमलवनी तीव्ररुचौ बहुभस्मनि शम्भुशिरसि शशिलेखा ।
सा च त्वयि पशुकल्पे यदभिरता तेन मे कृशता ॥ १३१ ॥

जिस प्रकार से कोमल कमलिनी-तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य पर और शरीर पर भस्म लपेटे महादेव के शिर पर चन्द्रमा की चाँदनी आसक्त है, उसी प्रकार पशु समान तुम पर वह जान देती है, इसी की मुझे चिन्ता है—दुःख है ॥१३१॥

असरलमरसं कठिनं दुर्ग्रहमस्निग्धमाश्रिता खदिरम् ।
यदुपैति वाच्यपदवीं मालतिका तत्किमाश्चर्यम् ॥ १३२ ॥

जिस प्रकार टेढे, सूखे, कठोर, पकडने में कठिन, स्नेह रहित-रूखे खैर के वृक्ष पर मालती चमेली चढ जाये—उससे लिपट जाये, उसी प्रकार टेढे, सूखे, कठोर, पकडने में कठिन, स्नेहरहित, रूखे तुमसे मालती ने जो प्रेम किया—यह यदि निन्दा का विषय बन गया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥१३२॥

अथवा कः खलु दोषो यदतुल्यतयोपजनितवैलक्ष्यः ।
स्वाधीनामपि सरसां परिहरति मृणालिकां ध्वाङ्क्षः ॥ १३३ ॥

अथवा इसमें दोष ही क्या ? दोनों में किसी भी प्रकार की समानता न

होने पर भी वश में आई हुई रसवाली कमलिनी को कौआ एकदम से छोड देता है (इसी प्रकार स्वतन्त्र-स्नेह शील मालती को तुम छोड रहे हो) ॥१३३।

माऽत्र करिष्यसि खेदं निष्ठुरमुक्तोऽसि यन्मया सुभग ।
यूना हि रक्ततरुणीसुहृदभिहितपरुषमाभरणम् ॥ १३४ ॥

हे सुभग ! मैने जो भी कडवा बात कही हो उसके लिये दुःख न करना । अनुरक्त तरुणी की सखी का कठोर वचन युवाओं के लिये आभूषण ही होता है ॥१३४॥

चन्द्रमसेव ज्योत्स्ना, कंसासुरवैरिणेव वनमाला ।
कुसुमशरासनलतिका कुसुमाकरवल्लभेनेव ॥ १३५ ॥
मदलीला हलिनेव, स्तनयुगलेनेव हारलता ।
रम्यापि सा सुगात्री रम्यतरा भवतु संगता भवता ॥ १३६ ॥
(युगलकम्)

जिस प्रकार चन्द्रमा से चाँदनी श्रीकृष्ण के गले से वनमाला, कामदेव से फूलों के धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) बलराम से मदलीला स्तनयुगल से हारलता अधिक सुन्दर बनती हैं उसी प्रकार यह सुगात्री सुन्दर होनेपर भी आपके साथ मिलकर और भी अधिक सुन्दर बने[1] ॥ १३५,१३६ ॥

किं बहुना, यदि यूनामुपरि विधातुं समीहसे चरणम् ।
तत्कुरु रमणीरत्न प्रेमोज्ज्वलमङ्कतस्तूर्णम् ॥ १३७ ॥

अधिक कहने से क्या लाभ यदि सब युवाओं के सिर पर पैर रखना चाहते हो तो जल्दी ही प्रेम से उज्ज्वल (स्नेह करनेवाली) रमणी रत्न मालती को स्वीकार करो[2] ॥ १३७ ॥

---

१ वनमाला—आपादपद्मं या माला वनमालेति सा मता अथवा पुष्पमयी माला वनमाला प्रकाशिता ।

२ रमणीरत्न—रत्न का लक्षण—"जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद् रत्नमभिधीयते" अथवा रमणीयतर यस्माद् रमन्तेऽस्मन्नतीव वा । तस्माद् रत्नमिदं ख्यातं शब्दशास्त्र विशारदैः ॥ स्त्रीरत्न—स्त्रीणां गुणा यौवनरूपवेशदाक्षिण्यविज्ञानविलासपूर्वाः । स्त्रीरत्नसंज्ञा च गुणान्वितासु स्त्रीष्वव्ययाऽन्यारचतुरस्य पुंसः ॥ बृहत्संहिता [७३।१३]

अत्रिपुत्र ने भी कहा है—

दृष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्थाः परं प्रीतिकराः स्मृताः ।
किं पुनः स्त्रीशरीरे ये संघातेन प्रतिष्ठिताः ॥
संघातो हीन्द्रियार्थानां स्त्रीषु नान्यत्र विद्यते ॥
चरक० चि० अ० २।१।५

अथ तद्वचनश्रवणप्रविजृम्भितमदनभट्टदायादः ।
उपचरणीय सुन्दरि निजवसतिमुपागतस्त्वयाऽप्येवम् ॥ १३८ ॥

दूती के वचन को सुनकर भट्टपुत्र में जब काम उद्दीप्त हो जाये, और वह तुम्हारे घर में आये, तब तुमको भी उसकी इस प्रकार सेवा करनी चाहिये[1]॥१३८॥

दूरादभ्युत्थानं, प्रणमनमात्मासनप्रदानं च ।
प्रविधेयमंचलेन प्रस्फोटनमङ्घ्रियुगलस्य ॥ १३९ ॥

उसे दूर से आता देखकर तुमको खड़ा हो जाना चाहिये, नमस्कार करना चाहिये, अपना आसन उसको देना चाहिये, अपने आँचल से उसके पैरों को पोंछना साफ करना चाहिये ॥ १३९ ॥

ईषदलक्ष्यप्रकटितकक्षोदरबाहुमूलकुचयुगलम् ।
सदयं झटिति यास्यसि नायकदृग्गोचरात्तूर्णम् ॥ १४० ॥

अनजाने ही कक्षा, उदर, बाहुमूल, स्तनों को थोड़ा सा दिखाकर तुरन्त जल्दी से उसकी आँखों के सामने से हट जाना[2] ॥ १४० ॥

अथ पर्यंकसनाथं दीपोज्ज्वलकुसुमधूपगन्धाढ्यम् ।
विततवितानकरम्यं प्रवेशितो वासकागारम् ॥ १४१ ॥

दीप से प्रकाशमान, कुसुम और धूप से महकने वाले, पलंग बिछे, चौड़े चँदोवे से सुन्दर रतिगृह में उसे ले जाना चाहिये[3] ॥ १४१ ॥

मात्रा ते गुरुजघने सादरमवतारणादिकं कृत्वा ।
अभिनन्दनीय एभिर्वचनविशेषै प्रयत्नेन ॥ १४२ ॥ (युगलकम्)

हे विशाल जघनों वाली ! तेरी माता (समयमातृका) को चाहिये, वह

---

१. दायाद--'दाय पैतृक धन आदत्ते इति दायादः ।'

२. साहित्यदर्पण तथा अन्य ग्रन्थों में नायिका के अनुराग के लक्षण दिये हैं; यथा--

कापि कुन्तलसंव्यानसंयमव्यपदेशतः ।
बाहुमूलं स्तनौ नाभिपङ्कजं दर्शयेत्स्फुटम् ॥ साहित्यदर्पण ३।११२

३. रतिगृह--"स्फूर्जद्दीपशिखोज्ज्वले सुललिते रम्योन्नते विस्तरे
धूपोद्गारमनोहरे कुसुमस्रग्दामोपशोभान्विते ।
कोलाहलरवाकुले मनसिजप्रस्तावनानन्दिते
सम्भोगः कुशलैः स्वकीयभवने कार्यो यथा काङ्क्षया ॥
पञ्चसायक ४।१८.

आदर के साथ दृष्टि-दोष को दूर करने के लिए अवतारणक आदि क्रियाएँ करे[1])
फिर इन सुन्दर वचनों से उसका स्वागत करना चाहिये ॥ १४२ ॥

अद्याशिषः समृद्धाः, परितुष्टा इष्टदेवता अद्य।
कल्याणालंकारो यदलंकृतवानिदं वेश्म ॥ १४३ ॥

आज हमारा भाग्य खुल गया; देवता आज प्रसन्न हो गये, आप भाग्यवान जो हमारे घर पधारे—घर की शोभा बढ़ाई ॥ १४३ ॥

अनुरूपपात्रघटनं कुर्वाणस्याद्य कुसुमबाणस्य।
सुचिराद् यत् संजातः शरासनाकर्षणश्रमः सफलः ॥ १४४ ॥

आज कामदेव का भी देर तक धनुष खींचने का फल सफल हो गया, जो उसने आप की यह सुन्दर मूर्त्ति बनाई ॥ १४४ ॥

विन्यस्य शिरसि चरणं सुभगा गणिकाजनस्य सकलस्य।
सौभाग्यवैजयन्तीं सम्प्रति वत्सा समुत्क्षिपतु ॥ १४५ ॥

सौभाग्यवती यह मालती; सम्पूर्ण वेश्याओं को तिरस्कृत करके अब सबसे अधिक सौभाग्यवती बने ॥ १४५ ॥

दुहितर एव श्लाघ्या, धिग्लोकं पुत्रजन्मसंतुष्टम्।
जामातर आप्यन्ते भवादृशा यदभिसम्बन्धात् ॥ १४६ ॥

कन्याओं का उत्पन्न होना ही उत्तम है, पुत्रोत्पत्ति से प्रसन्न होना निन्दनीय है, क्योंकि कन्या के जन्म के कारण आप जैसे योग्य जामाता मिल जाते हैं ॥१४६॥

दृढपरिचया गुणज्ञा भवद्विधा मानदा यदपि।
तदपि हृदयाभिनन्दन दुहितृस्नेहादहं वच्मि ॥ १४७ ॥

आप जैसों का परिचय स्थायी है, आप स्वयं गुणों को जानने वाले, गुणों का सम्मान करने वाले हैं, हे हृदय को प्रसन्न करने वाले! तथापि कन्या के स्नेह से कुछ कहती हूँ ॥ १४७ ॥

---

१. अवतारणक—उतारना; दूषित दृष्टि आदि को दूर करना; जैसा कादम्बरी में—'स्वयमेव कृतावतरणका'—[चन्द्रापीडका माता-पिता का दर्शन]; विलासवती ने चन्द्रापीड के ऊपर अवतरण किया; इसका स्पष्टीकरण डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने कादम्बरी एक अध्ययन अनुच्छेद-६१; पृष्ठ ७४) में दिया है। स्त्रियों की धार्मिक क्रियाओं में उतारा का बहुत महत्त्व है। उतारे कई प्रकार के होते हैं, भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उतारे बरते जाते हैं। कुछ उतारे मांगलिक और कुछ अशुभ फल वाले आभिचारिक होते हैं। कादम्बरी में—'सलिलाञ्जलिभिरचाचारकुशलेनान्तःपुरजरतीजनेन क्रियमाणावतरणकमंगलम्।' (गर्भवती विलासवती)।

सहजप्रेमोपनता न्यस्ता त्वयि मालती, तथा कार्यम्।
न यथा भवति वराकी त्वद्विप्रियजन्मनां शुचां वसतिः ॥१४८॥

नैसर्गिक स्नेह से पाली यह मालती तुमको सौंप दी गई; अब ऐसा करना कि इस बेचारी का कुछ बुरा न हो—भूल होने पर दया ही दिखाना, जिससे इसको दुःख न हो ॥ १४८ ॥

मृदुधौतधूपिताम्बरमग्राम्यं मण्डनं च बिभ्राणा।
परिपीतधूपवर्तिः स्यास्यति रमणान्तिके सुतनुः ॥ १४६ ॥

महीन-धुला-धूपित (सुगंधित) वस्त्र एवं बारीक चतुराई से बनाया प्रसाधन धारण किये; धूपवर्ति को पीकर यह कोमलांगी आप के पास आयेगी[1] ॥१४९॥

सस्नेहं सव्रीडं ससाध्वसं सस्पृहं च पश्यन्ती।
किंचिद्दृश्यशरीरा प्रविरलपरिहासपेशलालापा॥१५०॥ (युग्मम्)

अनुराग-लज्जा-भय और प्यासी आँखों से आपको देखती हुई, शरीर का थोड़ा सा भाग सामने पड़ने पर थोड़ी-सुन्दर, कोमल बातचीत करती हुई आप के पास आयेगी—हँसी मजाक करती आयेगी[2] ॥ १५० ॥

मातरि निर्यातायां, परिजनमुक्ते च वासकस्थाने।
अभियुंजाने रमणे, वामाचरणं त्वया कार्यम् ॥ १५१ ॥

माता के चले जाने पर; सम्बन्धियों के घर खाली कर देने पर; विलास का प्रारम्भ करने पर थोड़ी देर के लिये विरुद्ध आचरण करना चाहिये—रोकना चाहिये [देर तक इन्कार नहीं करना चाहिये] ॥ १५१ ॥

रतिसंगरनिहितमतावाकर्षति रभसतः पुरस्तस्मिन्।
कुट्टमितमाचरन्ती जनयिष्यसि किंचिदंगसंकोचम् ॥ १५२ ॥

(अब नायिका को उपदेश है) सम्भोग में दत्तचित्त होने पर इसको और भी आगे बढ़ावा देते हुए, कुट्टमितशृंगारचेष्टा को करके अंगों को थोड़ा सा सिकोड़ना चाहिये[3] ॥ १५२ ॥

---

1. धूपवर्त्ति—कर्पूरागुरुचन्दनमुस्तकपूतिप्रियंगुवालं च।
मांसी चेति धूपार्थो योग्या रतिनाथधूपवर्त्तिरियम् ॥
नागरसर्वस्व ४।१६

२. 'साथ बैठकर हँसी-मजाक करना बुद्धिमान पसन्द करते हैं ('सहास्यवचनप्रायं नर्मेच्छन्ति मनीषिणः ॥')

३. कुट्टमित—"केशस्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि संभ्रमात्।
आहुः कुट्टमितं नाम शिरःकराविधूननम् ॥"
सा० द० ३।१०२

प्रारब्धे सुरतविधौ क्रमदर्शितचित्तयोनिसवेगा।
अपशङ्कमर्पयिष्यसि निर्व्याज पुत्रि गात्राणि ॥ १५३ ॥

हे पुत्रि! सम्भोग प्रारम्भ करने पर क्रमशः काम का उद्वेग प्रकट होने पर बिना शोक और छल के अपने अंगों को दिखाओ। [चित्तयोने -कामदेव, अथवा चित्त और योनि द्वन्द्व समास-क्रमशः चित्त और योनि में उद्वेग डालने पर] ॥ १५३ ॥

यद्यद्वाञ्छति हन्तु यद्द्रष्टुं यच्च विलिखितुं गात्रम्।
तत्तदुपसारणीयं सावेगं ढौकनीयं च ॥ १५४ ॥

नायक जिस जिस अंग को पीड़ित करना चाहे देखना चाहे नखों से जिन पर क्षत करना चाहे उन उन अंगों को जल्दी से वर्तना के साथ हटा लेना चाहिये और ढाँपना चाहिये ॥ १५४ ॥

दशने सत्यथहुङ्कृतिमामर्दे विविधकण्ठरसितानि।
नखविलिखने च सीत्कृतिमाघातेनूपुरक्वणितम् ॥ १५५ ॥

नायक के काटने पर पीड़ा के साथ हुंकार करना, स्तन आदि के जोर से दबाने पर गले से नाना प्रकार के शब्द करना, नखक्षत करने पर सीत्कार स्कन्ध, जघन आदि पर आघात करने पर नूपुरों की ध्वनि की भाँति शब्द करना चाहिये[1] ॥ १५५ ॥

---

1 दंश स्थान — कक्षाद्वयस्तनयुग च कपोलभागौ
कण्ठं च दन्तपरिपीडनसम्पदाहि ॥ शृङ्गारदीपिका २।७३ ॥
हिंकारलोकारविशेष वक्रो दन्तार्पणे कामकलाविदग्धे।
रागाश्च स्निग्धता समाना घनाश्च सूक्ष्मा सविलासमानं ॥
दन्ता प्रशस्ता अथ सर्वरूपा कराञ्चिता मविनाशच निम्ना ॥
॥ अनङ्गरङ्ग ९।६१ ॥

दन्तसम्पद्—काश्यपसंहिता एवं चरकसंहिता में भी वर्णित है।
नैषध में—भाडोव परय प्रतिपेधतीय कपोतहुंकारगिरा वनाली ॥ १।१४ ॥
सीत्कार—यूनो प्रहरणाघातपीडाव्यपकृते भवेत्।
गलान्निर्गतो यः शब्दविशेषस्ताद् सीत्कृतम् ॥
इति रत्नप्रदीपिका ॥
नखक्षत स्थान—ग्रीवाकरोरुजघनस्तनपृष्ठकक्षाहृत्पार्श्वगण्डविषये नखरा
स्त्रा स्यु। माने नवीनसुरते विरहे प्रवासे द्रव्यक्षयेऽथ
विरतौ च मदे प्रयोज्य ॥ अनङ्गरङ्ग ९।२२ ॥
आघात स्थान—स्कन्धौ शिरः स्तनान्तरं पृष्ठं जघनं पार्श्वे

असमंजसमश्लीलं दूरोज्झितधैर्यमविनयप्रसरम् ।
व्यवहारमाचरिष्यसि वृद्धिमुपेते रतावेगे ॥ १६० ॥

नायक में रति वेग के बढ़ने पर असंगत; अश्लील, धैर्य का परित्याग और अविनय-धृष्टता आदि का व्यवहार करना चाहिये[१] ॥ १६० ॥

अविचेतितनरपरक्षतिरामीलितलोचना निरुत्साहा ।
नायककार्यसमाप्तौ स्थास्यसि शिथिलीकृतावयवा ॥ १६१ ॥

सम्भोग की समाप्ति पर शरीर को ढीला करके, नखक्षतों के कष्ट का कुछ भी विचार न करते हुए, आँखें बन्द किये, उत्साहहीन बन जाना चाहिये[२]॥१६१॥

झटिति नितम्बावरणं, निःसहतनुतां, स्मितं सवैलक्ष्यम्,।
खेदालसां च दृष्टिं, जनयिष्यसि मोहनच्छेदे ॥ १६२ ॥

सम्भोग की समाप्ति पर जल्दी से नितम्ब-गुह्य भाग को ढाँप लेना; अंगों

---

१. रतिवेग बढ़ने पर शास्त्र या कर्म-कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार नहीं रहता—
शास्त्राणां विषयस्तावद् यावन्मन्दरसा नराः ।
रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रमः ॥ कामसूत्र ॥
अश्लीलता भी कहीं गुण होती है—
अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ॥ माघ २।४४ ॥
(ख) प्रदितम एव विभूषणमश्लीलाचरणमेव बहुमानः ।
निःशंकवैव सौष्ठवमनवस्थितिरेव गौरवाधानम् ॥ कुट्टनीमतं २७६॥
(ग) 'सुरतं पदैः पिशुनमेव रहस्यवस्तु ॥'
२. सम्भोग के पीछे की अवस्था—
नारी विसृष्टकुसुमेषुमखा रतान्ते
नृत्यं करोति पटुवचनम रोदने च ।
वैक्लव्यमेति मुकुलीकृतचारुनेत्रा
शक्नोति नो किमपि सोढुमतिप्रयासान् ॥ अनंगरंग ३।११ ॥
(ख) समाश्लिष्ट शिष्टैरसममिह यस्मिन्नुविपदं;
पुनर्दग्धोऽप्याशु प्रभवति यतो मन्मथतरुः ।
मृते यस्मिन्कामी भवति कृतकृत्यो रतिसुखे,
स सीत्कारः पायादमृतविजयी सुन्दरदृशाम् ॥
(ग) स्रस्तता वपुषि मीलने दृशोः,
मूर्च्छना च रतिमावसानकम् ॥ रतिरहस्य १०।४४ ॥

मे खिन्नता-ग्लानि; लज्जा युक्त मुसकान; मुकुलित दृष्टि (अर्ध विकसित दृष्टि) उत्पन्न करेगी[1] ॥ १६२ ॥

धृत्ते रताभियोगे, स्पृष्ट्वा सलिलं विविक्तभूभागे ।
प्रक्षाल्य पाणिपादं, स्थित्वा क्षणमासने, समूह्य कचान् ॥ १६३ ॥
उपयुक्तवदनवासा शय्यामारुह्य दर्शितप्रणया ।
इति वदयसि तं रमणं दृढतरमालिंग्य रभसतः कण्ठम्॥१६४॥(युग्मम्)

सम्भोग समाप्त होने पर एकान्त स्थान में जाकर पानी से अंगों को तथा हाथ-पैर को धोकर, बालों को बाँध ले। फिर आसन पर थोड़ी देर बैठ कर, पान आदि से मुख को सुवासित करके, शय्या पर बैठे, प्रेम का प्रदर्शन करते हुए, नायक के गले में बलपूर्वक एव हर्ष से आलिंगन करके इस प्रकार से कहे[2] ॥ १६३–१६४ ॥

भट्टसुत नूनमिष्टा तव जाया यदनुरक्तहृदयस्य ।
जनयति परितुष्टिमलं, नापररामापरिष्वंगः ॥ १६५ ॥
सफलं तस्या जन्म, स्पृहणीया सैव सकलललनानाम् ।
गौरी तयैव महिता, सुभगंकरणं तपस्तया चरितम् ॥ १६६ ॥
सैवैका गुणवसतिस्तस्या एवान्वयः सदा श्लाघ्यः ।
यस्याः शुभशतभाजः पाणिग्रहणं त्वया विहितम्॥१६७॥(युग्मम्)

हे भट्टपुत्र ! स्नेहशील हृदय के लिये, आप की पत्नी ही सन्तोष के लिये पर्याप्त है; दूसरी स्त्रियों में आसक्ति अच्छी नहीं। उसका जन्म सफल है, सब स्त्रियों के लिये वह ईर्षा की वस्तु है, गौरी की महिमा उसी से है, उसका आचरण सौभाग्यजनक है, वही अकेली गुणों का वास स्थान है, उसी का वंश पूजनीय है, जिस बहुत पुण्यशालिनी का विवाह तुमसे हुआ है ॥ १६५–१६७ ॥

तिष्ठतु सा पुण्यवती वंशद्वयभूषणं वरारोहा ।
या नापयाति भवतो लक्ष्मीरिव नरकवैरिणो हृदयात् ॥ १६८ ॥

---

१. "रतान्ते च श्रमे चैव सुखसंभोगभावने ।
गन्धे स्पर्शे च हर्षे च मुकुला दृष्टिरिष्यते ॥" भरत नाट्यशास्त्र ।

२. चरक में अग्निपुत्र ने भी कहा है—
"पर्याप्ते चैनां शीतोदकेन परिषिञ्चेत् ।" शा० अ० ८।६
विस्तार के लिये आचार्यदेव विद्यालंकार की संस्कारविधिविमर्श में पृ० ५२;
संग्रह में भी पानी से प्रक्षालन तुरन्त करने को कहा है—
'न कुर्यात् मिथुनीभूय शौचं प्रति विलम्बनम् ॥'

दोनों कुलों को शोभित करनेवाली श्रेष्ठ पुण्यशाली वह बनी रहे, लक्ष्मी जैसे विष्णु के हृदय से पृथक् नहीं होती, उसी प्रकार यह भी आप के हृदय से कभी अलग नहीं हो ॥ १६८ ॥

पातयसि कुवलयनिभे कौतुकमात्रेण लोचने यासु।
ता अपि सत्यं सुन्दर हर्षोच्छलिता न मान्ति गात्रेषु ॥ १६९ ॥
(संदानितकम्)

कमल के समान उसकी आँखों की कौतूहल भरी निगाह जिन पर पड़ जाती है, उनमें भी प्रसन्नता फूटकर शरीर से बाहर आने लगती है, हे सुन्दर! यह सत्य है ॥ १६९ ॥

तनुरपि नाथप्रणयः प्रायो मुखरीकरोति लघुमनसः।
स्वार्थनिवेशितचित्ता करोमि तेऽभ्यर्थना तेन ॥ १७० ॥

प्रेमी का थोड़ा सा भी प्रेम छोटे मनवालों को मुखर-ढीट बना देता है, इसीसे स्वार्थवश कुछ प्रार्थना करती हूँ ॥ १७० ॥

तीव्रस्मरतारुण्याच्चापलतः कौतुकेन घृणया वा।
मद्भाग्यसंपदा वा दूत्या वा कौशलात् स्वभावाद्वा ॥ १७१ ॥
योऽयं प्रेमलवांशः प्रदर्शितोऽस्मासु जीवनोपायः।
बाधा नात्र विधेया गणिकाजनभावमन्यथाबुद्ध्वा ॥१७२॥ (युग्मम्)

प्रबल कामवाली जवानी की चपलता से, कुतूहल से या दया से, अथवा मेरे सौभाग्य से, या दूती की चतुराई से, अथवा स्वभाव से, जीवन का साधन रूप जो प्रेमकण आपने मुझे दिया है, वेश्याओं के स्वभाव को विपरीत समझ कर इसमें किसी प्रकार की कमी या बाधा नहीं लाना ॥ १७१-१७२ ॥

येन स्नेहः क्रोधः शाठ्यं दाक्षिण्यमार्जवं व्रीडा।
एतानि सन्ति तास्वपि जीवद्धर्मोपनीतानि ॥ १७३ ॥

प्राणियों के नैसर्गिक धर्म से, स्वभाव से वेश्याओं में भी स्नेह प्रीति, क्रोध, शठता धूर्तता, दाक्षिण्य चतुराई, आर्जव नम्रता, व्रीडा लज्जा, ये सब रहते हैं ॥१७३॥

निर्व्याजसमुत्पन्नप्रबलप्रेमाभिभूतहृदयानाम्।
दयितविरहाक्षमाणां गणिकानां तृणसमाः प्राणाः ॥ १७४ ॥

बिना कपट के उत्पन्न प्रबल प्रेम से भरी हृदय वालों, प्रेमी के विरह को न सहन करने वाली वेश्यायें प्राणों को तृण के समान मानती हैं ॥१७४॥

अत्रान्तरेऽथ साद्भुतमाख्यानं वर्णयामि यद्वृत्तम्।
अद्यापि बिभर्ति वटीविशेषणं यदभिसम्बन्धात् ॥ १७५ ॥

इस विषय में एक आश्चर्य वृत्तान्त कहती हूँ जिसके कारण आज भी वह वट वेश्यावट के नाम से प्रसिद्ध है ॥१७५॥

पाटलिपुत्र का वर्णन—

अस्ति महीतलतिलकं सरस्वतीकुलगृहं महानगरम् ।
नाम्ना पाटलिपुत्रं परिभूतपुरन्दरस्थानम् ॥ १७६ ॥

पृथ्वी का तिलक बना, विद्या का नित्य स्थान, अमरावती को तिरस्कृत करने वाला, पाटलिपुत्र नामक बड़ा नगर है ॥१७६॥

त्रिभुवनपुरनिष्पादनकौशलमिव पृच्छतो विरिञ्चस्य ।
दर्शयितुं निजशिल्पं वर्णकमिव विश्वकर्मणा विहितम् ॥ १७७ ॥

ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्मा के तीनों भुवनों के नगरों के निर्माण में कौशल पूछने पर विश्वकर्मा ने अपना शिल्प दिखाने के लिए पाटलिपुत्र को नमूने के रूप में बनाया है ॥१७७॥

अभयोभिरनाश्रितमभिभूतं नाभिभूतिदोषेण ।
न स्वीकृतमुपसर्गैः कलिकालमलैरनालीढम् ॥ १७८ ॥

अमंगलों से अनाश्रित, पराभव के दोष से बचा, उपद्रवों से अलग, कलि काल के दोषों से रहित, पाटलिपुत्र है ॥१७८॥

पातालतलं भोगिभिरम्भोधिर्विविधरत्नसंघातैः ।
सुरसदनं विबुधगणैर्द्रविणोपचयैः पुरं कुबेरस्य ॥ १७९ ॥

जिस प्रकार भोगी (साँप) पाताल में रहते हैं, उसी प्रकार भोगी (ऐश्वर्य शाली) यहाँ पर रहते हैं। जिस प्रकार समुद्र में रत्न हैं, उसी प्रकार पाटलि पुत्र में बहुत रत्न हैं। जिस प्रकार अमरावती में विबुध देवता समूह हैं, उसी प्रकार यहाँ पण्डित समूह है, जिस प्रकार कुबेर के पास धन राशि है, उसी प्रकार यहाँ भी धन राशि है ॥१७९॥

महिलाभिरसुरविवरं कटकं हि हिमाचलस्य गन्धर्वैः ।
हरिनगरं क्रतुयूपैः, शमनिभवैर्मुनिजनस्थानम् ॥ १८० ॥

जिस प्रकार से असुरविवर[1] महिलाओं से व्याप्त है, उसी प्रकार पाटलि

१—असुरविवर का वर्णन हर्षचरित में कई स्थलों में है, यथा—बाण की मित्रमण्डली के विषय में—असुरविवरव्यसनी लोहिताक्ष, चौथे उच्छ्वास में—असुरविवराणीव अपावृतानि, छठे उच्छ्वास में—असुरविवरव्यसनिन्; तीसरे उच्छ्वास में—असुरविवरमिति वार्तिके—डाक्टर अग्रवाल ने हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन [पृष्ठ ४८] में इस सम्बन्ध में लिखा है कि यह

पुर भी स्त्रियों से भरा है। जिस प्रकार हिमालय का मध्य भाग गन्धर्वों से भरा है, उसी प्रकार यहाँ भी गन्धर्व-गायक हैं। जिस प्रकार हरिगिर (हरिद्वार) यज्ञयूपों से पूर्ण है उसी प्रकार पाटलिपुत्र भी। मुनि का स्थान बदरिकाश्रम जैसे शान्ति धनवाले मुनियों से पूर्ण है, यहाँ भी शान्तिवाले मनुष्य हैं ॥१८०॥

तिष्ठन्तु सकलशास्त्रव्यालोकनविमलबुद्धयो विप्राः ।
सदसद्गुणनिर्णीतौ ललना अपि निकषभूमयो यत्र ॥ १८१ ॥

पाटलिपुत्र में सम्पूर्ण शास्त्रों के पढ़ने से विमल बुद्धि वाले ब्राह्मण रहे तो रहें, स्त्रियाँ भी सत् और असत् को पहचानने में कसौटी रूप हैं ॥१८१॥

कलिकालोदितभीत्या क्रतुहुतवहधूमकम्बलावरणः ।
तिष्ठन्तिभृतोऽपि वृषश्चरितैरनुमीयते यत्र ॥ १८२ ॥

कलियुग के आने के भय से यज्ञीय वह्नि धूम का काला आवरण ओढ़कर एकान्त में बैठी है, बहुत यज्ञ होते हैं इसका अनुमान धर्माचरण से होता है, (यहाँ पर धर्मात्मा ही रहते हैं) ॥१८२॥

अपहर्तुं पिधातुमिव स्वकलंकं शशधरः प्रसार्य करान् ।
रात्रौ यत्र वधूनां लावण्यं वदनकोशेभ्यः ॥ १८३ ॥

जहाँ पर चन्द्रमा अपने कलंक को दूर करने के लिए अपनी किरणों को फैलाकर स्त्रियों के मुखों से लावण्य का हरण करना चाहता है[1] ॥१८३॥

तिमिरपटलासितांम्बरमपहरदभिसारिकाजनौघस्य ।
निजतनुकान्तिवितानं वल्लभसंभोगविहितये यत्र ॥ १८४ ॥

जहाँ पर अपने प्रेमी से मिलने के लिए अभिसारिकायें अपने शरीर की कान्ति द्वारा काले वस्त्र को दूर करती हैं[2] ॥१८४॥

तांत्रिक प्रयोग है—जिसमें आदमी को गहरे गड्ढे में उतारा जाता था। यह कोई तांत्रिक प्रयोग था।

असुरविवरम् अतलं—अतल आदि सात पातालों में असुरगणवसति भूगर्भ भाग है, वहाँ पर महिलाओं की अधिकता है। महिला [महन्ते पूज्यन्ते कामिजनेन इति महेला—यह अर्थ भी श्री त्रिपाठी जी ने टीका में दिया है।] भागवत में कहा है कि अतल में मयपुत्र बल असुर रहता है, उसके मुख से स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली तीन स्त्रीगण उत्पन्न हुए।

१—लावण्य—मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते ॥

२—अभिसारिका—अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा। स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका ॥ सा० द० ३।७१

[ख] उद्दाममन्मथमहाज्वरवेपमाना, रोमाञ्चकण्टकितगात्रलतां वहन्ती।
निःशङ्किनी व्रजति या प्रियसङ्गमाय सा नायिका निगदिता त्वभिसारिकेति॥

यत्र नितम्बवतीनां विचलन्नयनान्तनिशितशरैर्वृणितः ।
शिथिलयति पथिकलोकः स्वकलत्रसमागमोत्कण्ठाम् ॥ १८५ ॥
जहाँ पर स्त्रियों के नयनों के तीक्ष्ण बाणों की चोट खाया पथिक-अपनी स्त्री के समागम की उत्कण्ठा को भूल जाता है (अर्थात् उन्हा से फँस जाता है) ॥१८५॥

यत्र च कुलमहिलानामल्पत्वं वचसि पाणिपादे च ।
स्वच्छत्वमाशयेषु व्यालोलविशालनेत्रे च ॥ १८६ ॥
जहाँ पर कुलीन ललनाओं के वचनों में, हाथ पैरों में अल्पता, हृदयों में निर्मलता और विशाल नेत्रों में चञ्चलता है ॥१८६॥

स्तनजघनचिकुरभारे घनता जीवेशसहचरागे च ।
कुलदेवतार्चनविधौ वलिशोभा मध्यभागे च ॥ १८७ ॥
स्तन-जघन और केशों में भारीपन, जीवेश प्रमी के नैसर्गिक प्रीति में घनता स्थिरता, कुलदेवता की पूजाविधि में तथा मध्यभाग में बलि-नैवेद्य भोग की शोभा है (मध्यभाग में—त्रिवलियाँ हैं) ॥१८७॥

गम्भीरता स्वभावे चेतोभववाणतूणनाभौ च ।
विस्तीर्णता नितम्बे गुरुजनपूजानुरक्तचित्ते च ॥ १८८ ॥
स्वभाव में और कामदेव के धनुष के मध्य भाग में गम्भीरता है। नितम्बों में तथा गुरुजनों की पूजा में अनुरक्त मन में विस्तार है ॥१८८॥

हरिणायतेक्षणानां विच्छित्तिः, कोशहरणमस्त्रेषु ।
कुटिलत्वमलकपङ्क्तौ, बालानां कामचेष्टितं यत्र ॥ १८९ ॥
हरिण के समान आँखों वाली स्त्रियों की आँखों में ही शोभा है, कोश का हरण (खोल का निकालना) अस्त्रों में है (कोई किसी का कोश धन नहीं लेता)। बालों में ही कुटिलता मिलती है (मनुष्यों में कुटिलता नहीं), बच्चों में ही कामचेष्टा (इच्छित चेष्टा) है, (दूसरों में कामचेष्टा नहीं है।) ॥१८९॥

संयमनमिन्द्रियाणामिनोपघातमहस्तमिमस्य ।
स्तब्धत्व तालतरो, हारलतास्तरलसंगता यस्मिन् ॥ १९० ॥
इन्द्रियों का ही नियमन किया जाता है (किसी अपराधी का नहीं), राहु ही सूर्य को अदृश्य करता है, (कोई अपराधी पकड़ा नहीं जाता—अपराधी हैं ही नहीं)। ताड़ के वृक्ष में ही स्तब्धता-जड़ता है, (भय विषाद से किसी व्यक्ति में जड़ता नहीं) तरल (मध्यमणि) हारलता में ही रहती है (किसी मनुष्य के स्वभाव में चञ्चलता नहीं) ॥१९०॥

1 'तरलो हारमध्यगः' इत्यमरः। मेघदूत में—हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः—पूर्व मेघ।

भुजगाः पररन्ध्रदृशः, खण्ड्यन्ते प्रियतमाधरा यत्र।
सूची व्यथानुभूतिर्नृत्याभ्यास-प्रवृत्तानाम् ॥ १६१ ॥

जहाँ पर साँप ही दूसरे के छिद्रों को ढूँढते हैं (पाटलिपुत्र में कोई किसी के दोषों का नहीं देखता है), प्रियतमाओं के अधर ही काटे जाते हैं (किसी का अपमान नहीं होता), नृत्य के सीखने के आरम्भ में ही आङ्गिक अभिनय में पीड़ा होती है (सूई चुभाकर किसी को व्यथा नहीं पहुँचाई जाती[1]) ॥१६१॥

नतवपुरप्यतिसरला, मन्थरगमनाऽपि नर्मदा यस्मिन्।
गुरुजनशास्त्ररताऽपि स्वभावमुग्धाऽङ्गनाजनता ॥ १६२ ॥

शरीर के झुके होने पर भी जहाँ पर स्त्रियाँ अतिशय सरल (सीधी) हैं, नर्मदा (परिहास में-प्रवीण) होने पर भी मन्थरगामी हैं, जहाँ पर स्त्रियाँ गुरुजन (श्वशुर आदि) एवं शास्त्र (शासन आज्ञा) में रत होने पर भी स्वभाव से मुग्धा (भोली और मोहग्रस्त) हैं[2] ॥१६२॥

तस्मिन्मखशतपूतः पुरुहूत इव द्विजन्मनां प्रवरः।
गुरुरिव विद्यावसतिर्वसति स्म पुरन्दरो नाम्ना ॥ १६३ ॥

ऐसे पाटलिपुत्र में इन्द्र के समान सैकड़ों यज्ञों से पवित्र, बृहस्पति की भाँति विद्या का स्थान ब्राह्मणों में श्रेष्ठ पुरन्दर नाम का ब्राह्मण रहता था ॥१६३॥

धर्मात्मजस्य सत्यं, त्रिपुरारिपोर्विजितकुसुमचापत्वम्।
हरिनाभिपङ्कजभुवो नियतेन्द्रियतां जहास य सततम् ॥ १६४ ॥

युधिष्ठिर की सत्यता को, महादेव की काम विजय को, ब्रह्मा की जितेन्द्रियता को भी जो हँसता था—इनसे भी अधिक सत्यवादी, काम विजयी, जितेन्द्रिय था ॥१६४॥

न्यक्कृतवृष इति शर्वे, याचक इति कौस्तुभाभरणे।
पीडितवसुधासुत इति कपिले, न बभूव यस्य बहुमानः ॥ १६५ ॥

महादेव वृष [नन्दी] पर चढ़ने के लिये उसे नीचे बिठाते हैं, परन्तु इसने वृष [धर्म] को नीचा नहीं किया, विष्णु ने बलि से याचना करके अपने को याचक बनाया—इसने किसी के आगे हाथ नहीं पसारा, कपिल ऋषि ने

---

1 —'स्यात् सूची नृत्यभेदे च व्यधनीशिखयोरपि'-मेदिनी, 'वर्त्तना सा भवेत्सूची भाविवाक्योपजीवनात्'—सङ्गीतरत्नाकर।

2—मुग्धा—प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा ॥ सा द ३।१८०

पृथ्वी और सगर के पुत्रों को पीडित किया था, इसने पृथ्वी और पुत्रों को कभी पीडित नहीं किया इससे भी उसको कभी अहंकार नहीं हुआ ॥१९५॥

मार्गानुगतो लुब्धो य प्राणिवपुर्विनाशविमुखोऽपि ।
परिहृतपरदारोऽपि स्वाकांक्षितगुरुजनप्रमद ॥ १९६ ॥

मृगों के पीछा करने में शिकारी (पक्ष में मार्ग सदाचार के पालन में सदा लगा) प्राणियों की हिंसा से विमुख पराई स्त्रियों का त्याग करने पर जिसने गुरुजनों की प्रसन्नता प्राप्त कर ली है (यहां मार्ग, लुब्ध, प्रमद शब्द दो अर्थ रखते हैं । अत विरोधाभासालंकार है) ॥१९६॥

यस्यास्मिन्ने महीयसि सरसीव समस्तसत्त्वनिजवसतौ ।
सच्चरितजन्मभूमौ, विनिवारितकलिमलप्रसरे ॥ १९७ ॥

जिस प्रकार बडे भारी तालाब में जलचर प्राणी बसते हैं उसी प्रकार इसके विपुल वंश में समस्त सत्त्व गुणों का वास है, सदाचरण का जन्मस्थान है कलियुग का मल इस वंश को छुआ भी नहीं है ॥१९७॥

पितृतर्पणप्रसंगे खड्गग्रहण न शौर्यदर्पेण ।
त्रुटन मेखलिकाना बटुकजने, नो रताभिसमर्दे ॥ १९८ ॥

पितरों के तर्पण करने में गैंडे के सींग का बना पात्र हाथ में लिया जाता है (हत्या के लिये नहीं) । शौर्य के अभिमान से कोई तलवार नहीं पकडता । बटुकों की मेखलायें टूटती हैं, सम्भोग में मेखला (रशना) नहीं टूटती ॥१९८॥

श्रुतिभेदेषु विवादो, नो रिक्थविभागमन्युना कलित ।
तेजस्विता हविर्भुजि, न शमैकरतेषु भूमिदेवेषु ॥ १९९ ॥

श्रुतिभेद शास्त्र विचार में ही भेद (शास्त्रार्थ) होता है, धन के बंटवार में कोई झगडा नहीं करता । अग्नि में ही तेजस्विता है, विनय प्रधान ब्राह्मणों में तेजस्विता क्रोध नहीं है ॥१९९॥

जरतामेव स्खलन, जपतामेवाधरस्फुरणम् ।
यजतामेव समिद्रुचिरेणाजिन एव कृष्णसंपर्क ॥२००॥

बुढापे के कारण ही लडखडाना होता है, (शास्त्र या धर्म में च्युति नहीं होती), जप करने में ही अधर ओठ हिलते हैं (क्रोध से होठ नहीं हिलते) हवन करने में ही समिधाओं की इच्छा होती है (समित्-युद्ध में किसी की रुचि नहीं), मृग चर्म में ही कालापन रहता है (मनुष्यों के मन में कालापन नहीं है)॥२००॥

तस्याभूत् सकलकलोद्भासितपक्षद्वयस्य सुत एक ।
नाम्ना सुन्दरसेन कच इव वचसामधीशस्य ॥२०१॥

उस पुरंदर को अपनी सम्पूर्ण कलाओं से (विद्याओं से ६४कलाओं से) माता

एव पिता के दोनों कुलों को प्रकाशित करने वाला, सुन्दरसेन नाम का एक लड़का था, जिस प्रकार कि बृहस्पति का अकेला कच था ॥२०१॥

पशुपतिनयनहुताशनभस्मितमवधार्य यं वपुष्मन्तम् ।
अपरमिव कुसुमचापं रतिरतये निर्ममे धाता ॥ २०२ ॥

महादेव की आँख की ज्वाला से भस्मीभूत कामदेव को जानकर विधाता ने कामदेव की पत्नी-रति के विलास के लिये मानों दूसरा देहधारी कामदेव ही बनाया था ॥२०२॥

तिष्ठन्तु तावदन्याः कुलललना यस्य रूपमवलोक्य ।
साऽपि महामुनिदयिता कृच्छ्रेण ररक्ष चारित्रम् ॥ २०३ ॥

जिसके रूप को देखकर वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती, अत्रि की पत्नी अनुसूया भी कठिनाई से अपने चरित्र की रक्षा कर पाती है, दूसरी कुल ललनाओं की तो बात ही क्या है ॥२०३॥

कलधौतफलकशोभां बिभ्राणं यस्य पृथुतरं वक्षः ।
दृष्ट्वा, चिराय लक्ष्मीर्हरिहृदये दुःस्थितिं मेने ॥ २०४ ॥

जिसके स्वर्ण पट के समान सुन्दर वक्षःस्थल को देखकर लक्ष्मी भी विष्णु के हृदय में अपना रहना दुर्गति ही मानती है ॥२०४॥

कथमीदृग्यदि न कृतः शशिशकलैरथ कृतः कथं व्यथकः ।
इत्थं यमीक्षमाणो निर्णयमगमन्न कामिनीसार्थः ॥ २०५ ॥

ब्रह्मा ने इसका शरीर चन्द्रमा के टुकड़ों से बनाया है, यदि उनसे बनाया है, तो यह कैसे पीड़ा जनक है (मदन पीडाजनक है), उसको देखकर स्त्रियाँ इस विषय में कोई निर्णय नहीं कर पातीं ॥२०५॥

यो जग्राह हिमांशोः प्रसन्नमूर्तित्वमचलतः स्थैर्यम् ।
जलधरत उन्नतत्वं, गाम्भीर्यं यादसां पत्युः ॥ २०६ ॥

उसने[1] चन्द्रमा से माधुर्य, पर्वत से स्थिरता, मेघ से उन्नतत्व, समुद्र से गम्भीरता प्राप्त की थी ॥२०६॥

यो विनयस्य निवासो, वेदाध्ययस्याश्रयः स्थितेः स्थानम् ।
प्रियवाचामायतनं, निकेतनं साधुचरितस्य ॥ २०७ ॥

१—स्थिरता—जो दुःख-सुख में, शोक-हर्ष में समान बुद्धि रहना, जैसा कि गीता में कहा है—दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ गीता २।५६
धर्मार्थकामसंयुक्ताच्छुभाशुभसमुत्थितात् ।
व्यवसायादचलनं स्थैर्यमित्यभिसंज्ञितम् ॥ भरतनाट्य० २२।३५

आकर्ण्याथ तमूचे वचनमिदं सुन्दरः सुहृन्मुख्यम् ।
शोभनमेतद्गीतं गुणपालित साधुनानेन ॥ २१३ ॥

इस आर्या को सुनकर सुन्दर ने अपने प्रधान मित्र को कहा—"हे गुणपालित! इस भले आदमी ने अच्छा ही कहा" ॥२१३॥

साधूनामाचरितं खलचेष्टां विविधलोकहेवाकान् ।
नर्मविदग्धैर्विहित कुलटाजनवक्त्रकथितानि ॥ २१४ ॥
गुरुगूढशास्त्रतत्त्वं विटवृत्तं धूर्तवंचनोपायान् ।
वारिधिपरिसां पृथ्वीं जानाति परिभ्रमन् पुरुष ॥ २१५ ॥
(युगलकम्)

सज्जनों का आचरण, दुष्टों का व्यवहार, मनुष्यों की भिन्न भिन्न रुचि, चतुर पुरुषों से किया परिहास, कुलटाओं के मुख से निकले व्यंग, गुरु गम्भीर शास्त्र विषय, कामशास्त्र के जानने वालों का चरित, धूर्तों के ठगने के उपाय, ये सब बातें समुद्र से घिरी सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूम कर ही मनुष्य जान सकता है ॥२१४–२१५॥

अत उज्झित्य गृहस्थितिसुखलेशं विविधलाभपरिणामे ।
स्थापय गमनारम्भे वयस्य हृदयं मया सहितः ॥ २१६ ॥

इसलिये हे मित्र! घर के सुख को छोड़कर नाना प्रकार के लाभ को देने वाली यात्रा पर मेरे साथ चलने के लिये तैय्यार हो जाओ ॥२१६॥

इत्थं निगदितवन्तं सुहृदुत्तरलाभलालसात्मानम् ।
ऊचे सुन्दरसेनं लज्जित इव सहचरो वचनम् ॥ २१७ ॥

ऐसा कहने पर मित्र के उत्तर की प्रतीक्षा करनेवाले सुन्दरसेन को मानो लज्जित होते हुए गुणपालित ने कहा ॥२१७॥

अभ्यर्थनानुबन्धो लज्जाकर एव मादृशां किन्तु ।
आकर्णय कथयामः पथिकानां यानि दुःखानि ॥ २१८ ॥

तुम मेरे जैसे लोगों से प्रार्थना कर रहे हो यह मेरे लिये शर्म की वस्तु है। फिर भी यात्रियों को जो कष्ट होते हैं, उनको तुम्हें सुनाता हूँ ॥२१८॥

कर्पटकावृतमूर्तिर्दूराध्वपरिश्रमावसितशक्तिः ।
पांसूत्करधूसरितो दिनावसाने प्रतिश्रयाकांक्षी ॥ २१९ ॥
मातर्भगिनि दयां कुरु, मामैवं निष्ठुरा भव, तथापि ।
कार्यवशेन गृहेभ्यो निर्यान्ति भ्रातरश्च पुत्राश्च ॥ २२० ॥
किं वयमुत्पाट्य गृहं प्रातर्गन्तार ईदृगेव सताम् ।
भवति निवासो यस्मिन्निज इव पथिकाः प्रयान्ति विश्रामम् ॥२२१॥

चिथडों में लिपटा, मुसाफरी के कारण सारी शक्ति नष्ट होने से थका, धूल के ढेर से भरा, सायकाल में आश्रय की चाह से (घर के द्वार पर जा कर कहता है), हे माता, या हे बहिन ! इस प्रकार से कठोर न बनो । तुम्हारे भी भाई लडके कार्य के कारण घर से बाहर जाते हैं । क्या हम घर उठाकर सवेरे भाग जायँगे ? सज्जनों के घर तो ऐसे होते हैं, जिनको यात्री अपना ही घर मानकर विश्राम करते हैं ॥२१६–२२१॥

अत्र रजनीं नयामो यथाकथचित् तवाश्रमे मात ।
अस्त गतो विवस्वान्, वद सम्प्रति कुत्र गच्छाम ॥ २२२ ॥

हे माता ! तुम्हारे घर मे जैसे तैसे एक रात काट लेंगें, सूर्य छिप गया है, बोल, अब कहाँ जायें ? ॥२२२॥

इति बहुविधदीनवचा प्रतिगेहद्वारदेशमधितिष्ठन् ।
निर्भर्त्स्यते वराको गृहिणीभिरिदं वदन्तीभि ॥ २२३ ॥
(कुलकम्)

इस प्रकार नाना प्रकार की दीनता के साथ प्रत्येक दरवाजे पर भीख माँगते हुए बिचारे को गृहणियाँ यह कहते हुए अपमानित करती हैं ॥२२३॥

"न स्थित इह गेहपति', किं रटसि वृथा, प्रयाहि देवकुलम् ।
कथितेऽपि नापगच्छति, पश्य मनुष्यस्य निर्बन्धम्" ॥ २२४ ॥

"घर का स्वामी यहाँ नहीं है, व्यर्थ में क्यों चिल्ला रहे हो, मन्दिर में जाओ । कहने पर भी नहीं जाता, देखो तो कितना जिद्दी है" ॥२२४॥

अथ यदि कथचिदपर' पुन पुनर्याचितो गृहस्वामी ।
निर्दिशति सावधीरणमत्र स्वपिहीति जीर्णगृहकोणे ॥ २२५ ॥
तत्र कलहायमाना तिष्ठति गृहिणी विभावरीं सकलाम् ।
अज्ञाताय किमर्थं वासो दत्तस्त्वयेति सह भर्त्रा ॥ २२६ ॥

यदि किसी प्रकार बार-बार प्रार्थना करने पर दूसरा गृहस्वामी अपमान के साथ कह देता है कि इस पुराने छप्पर के एक कोने में पड़े रहो, तब उनकी स्त्री सारी रात उनसे झगडा करती रहती है, कहती है कि बिना जाने हुए को तुमने क्यों टिका लिया ॥२२५–२२६॥

ईदृगय सरलात्मा किं कुरुषे भगिनि तावको भर्ता ।
स्थास्यसि गेहेऽवहिता, भ्रमन्ति खलु वचका एवम् ॥ २२७ ॥
इति भाजनादियाच्ञा बुद्धौ विनिधाय निकटवर्तिनो गेहात् ।
नारीजन समेत्य ब्रूते तामाप्तभावेन ॥ २२८ ॥ (युग्मम्)

पास वाले घरों से बर्तन आदि माँगने के विचार से जब वह जाती है, तब

स्त्रियाँ इकट्ठी होकर बड़े विश्वास के साथ उससे कहती हैं, हे बहिन ! तुम्हारा पति बहुत सीधा आदमी है, तू क्या करेगी—घर में सावधान होकर रहना, इसी रूप में ठग घूमते हैं ॥२२७–२२८॥

गृहशतमधिकमटित्वा कलमकुलत्थाणुचणमसूरादि ।
एकीभूतं भोक्ता क्षुधोपतप्तोऽध्वगो भैक्षम् ॥ २२९ ॥

भूख से बेचैन बना यात्री बहुत से घरों से माँगकर कलम (शाली धान्य), कुलथी, कगनी, चना, मसूर इकट्ठा करके खाता है ॥२२९॥

परवशमशनं, वसुधा शयनीयं, सुरनिकेतनं सद्म ।
पथिकस्य विधिः कृतवालुपधानकमिष्टकाखण्डम् ॥ २३० ॥

यात्री का भोजन दूसरे के अधीन रहता है, सोने के लिये पृथ्वी, मन्दिर घर होता है, सिरहाने का काम ईंट से चलता है ॥२३०॥

इति निगदितवति तस्मिन्सुन्दरसेनस्य चोत्तरावसरे ।
इयमुपगीता गीतिः केनापि कथाप्रसङ्गेन ॥ २३१ ॥

गुणपालक के इतना कहने पर सुन्दरसेन के उत्तर देने के समय किसी ने इस प्रसग में यह गीति गाई[1] ॥२३१॥

"निजवरभवनं सुरगृहमुर्वीतलमतिमनोहरं शयनम् ।
कदशनममृतमभीप्सितकार्यकनिविष्टचेतसा पुंसाम्" ॥ २३२ ॥

"अभिलषित कार्यों में चित्त लगाये हुए पुरुषों के लिये देवालय में रहना अपने घर से अच्छा है, पृथ्वी पर सोना उत्तम है, कुत्सित भोजन भी अमृत होता है" ॥२३२॥

तां च श्रुत्वा सुहृदं पौरन्दरिरिदमुवाच परितुष्टः ।
मम हृदयगतं प्रकटितमेतेन, सहैव भवतु गच्छामः ॥ २३३ ॥

इसको सुनकर प्रसन्न होकर सुन्दरसेन ने मित्र से कहा—इसने मेरे हृदय की बात कही है, साथ ही चलेंगे ॥२३३॥

अथ सहचरद्वितीयः क्लेशसमुद्रावतरणकृतचित्तः ।
निरगात्सुन्दरसेनः कुसुमपुरादविदितः पित्रा ॥ २३४ ॥

सब प्रकार के दुःखों के उठाने का निश्चय करके, पिता को बिना बताये सुन्दरसेन मित्र के साथ अकेला कुसुमपुर से निकल गया ॥२३४॥

1— गीति का लक्षण—यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीयान्तिमयोर्गीतिर्हि गायकप्रीत्यै ॥

पश्यन् विदग्धगोष्ठीरभ्यस्यन्नायुधानि विविधानि ।
शास्त्रार्थानधिगच्छन् विलोकयन् कौतुकान्यनेकानि ॥ २३५ ॥
जानन् पत्रच्छेदनमालेख्य सिक्थपुस्तकर्माणि ।
नृत्य गीतोपचित तन्त्रीमुरजादिवाद्यभेदांश्च ॥ २३६ ॥
बुध्यन् वचकभगीर्विटकुलटानर्मवक्रकथितानि ।
बभ्राम सुहृत्सहित सुन्दरसेनो महीमखिलाम् ॥ २३७ ॥
(विशेषकम्)

विद्वानों की गोष्ठी को देखते हुए, नाना प्रकार के शास्त्रों का अभ्यास करते हुए शास्त्रों के अभिप्राय को जानते हुए, बहुत से कौतुक आश्चर्यों को देखते हुए, पत्रच्छेद कला, आलेख्य चित्रकर्म, मोम के मोडल बनाना, नृत्य, गाना, तन्त्री मुरज आदि वाद्यों को बजाना, ठगों के इशारे, विट कुलटा के हास्य-परिहास व्यंग आदि को सीखते हुए सुन्दरसेन मित्र के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी घूमा [1] ॥ २३५–२३७ ॥

अथ विदितसकलशास्त्रो विज्ञाताशेषजनसमाचार ।
निजगृहगमनाकाङ्क्षी स शिलोच्चयमर्बुदं प्राप ॥ २३८ ॥

सम्पूर्ण शास्त्र जानकर सम्पूर्ण मनुष्यों के आचार-व्यवहार को समझ कर घर लौटने की इच्छा होने पर अर्बुदाचल (आबू पर्वत) पर पहुँचा ॥२३८॥

तत्पृष्ठदेशदर्शनलोलमति सुन्दर परिज्ञाय ।
गुणपालितो बभाषे विलोक्यतामद्रिराज इति ॥ २३९ ॥

अपने मित्र सुन्दरसेन की इच्छा आबू पर्वत को देखने की जान कर गुणपालित ने कहा—कि इस पर्वतराज को देखिये ॥ २३९ ॥

'एष सुत सानुमत स्यन्दच्छीताच्छसलिलसपन्न ।
लोकानुकम्पयेव प्रालेयमहीभृता मरौ न्यस्त ॥ २४० ॥

इस अर्बुदाचल को मनुष्यों पर दया करके हिमालय ने मरुभूमि में अपने पुत्र रूप में बनाया है इसमें से निर्मल शीतल जल के स्रोत बह रहे हैं ॥ २४० ॥

शिशिरकरकान्तमौलि कटकस्थितपवनभोजन सगुह ।
विद्याधरोपसेव्यो बिभर्ति लक्ष्मीमय शम्भो ॥ २४१ ॥

यह अर्बुदाचल शम्भु की कान्ति का धारण करता है जिस प्रकार महादेव जी का मस्तक चन्द्रमा से शोभित है, उसी प्रकार इसके शिखर भी चन्द्रकान्त मणियों से शोभित है। जिस प्रकार से महादेव जी सांपों का कड़ा धारण

1 पत्रच्छेद, आलेख्य, सिक्थ कर्म आदि कलायें वात्स्यायन में गिनी हैं।

किये हुए हैं, उसी प्रकार इस पर्वत के मध्य भाग (कटक) में वायु का सेवन करने वाले तपस्वी रहते हैं। जिस प्रकार शिव के साथ गुहकार्त्तिकेय हैं, उसी प्रकार इसमें गुहायें हैं, जिस प्रकार शिव विद्याधरों से घिरे हैं, उसी प्रकार इसमें भी विद्याधर-देवयोनि विशेष (अथवा गुटिका अँजन आदि से सिद्ध बने मनुष्य) रहते हैं॥ २४१॥

अत्र तरुशिखरसगतसुमनस इति जातविस्मयो मन्ये।
अभिलषति समुच्चेतुं तारा निशि मुग्धकामिनीलोक ॥ २४२॥

इस पर्वत के ऊँचे ऊँचे वृक्षों के शिखर भाग पर चमकते तारा को समूह देखकर मुग्ध स्त्रियाँ आश्चर्ययुक्त होकर रात में उनको फूल समझ कर एकत्रित करना चाहती हैं॥ २४२॥

आश्चर्यं यदुपान्ते तिष्ठन्त्येतस्य सप्त मुनयोऽपि।
अथवा कस्यानर्पं न करोति समुन्नतिर्महताम्॥ २४३॥

यह आश्चर्य ही है कि इस पर्वत के पार्श्वभाग में सप्तर्षि भी रहते हैं अथवा ठीक ही है, बड़ों की उन्नति किसको अपनी ओर नहीं खींचती? सबको खींचती है। (अर्बुदाचल के पास में ध्रुव तारे के पास रहने वाला सप्तर्षि मण्डल है)॥ २४३॥

अवगम्य निरवलम्बनमम्बरमार्गं पतगतुरगाणाम्।
अयमवनिधरो मन्ये विश्रान्त्यै वेधसा विहितः॥ २४४॥

सूर्य के घोड़ों के लिये आकाशमार्ग में कोई भी आश्रय स्थान न होने से ब्रह्मा ने उनकी विश्रान्ति के लिये यह पर्वत बनाया है, ऐसा मैं मानता हूँ॥ २४४॥

इममाश्रित्य हिमांशोरोषधयः सन्निकर्षमुपयाता।
प्रत्यासत्तिः प्रभुणा प्रायोऽनुग्राहकवशेन॥ २४५॥

इस पर्वत का आश्रय करके ओषधियाँ चन्द्रमा के समीप में आ गईं, प्रभु की अनुकम्पा होने से ही सान्निध्य मिलता है[1]॥ २४५॥

सेक्तुमिवाशाकरिणो विसृजत्ययमवनिधरणपरिखिन्नान्।
निर्झरसलिलकणौघान्, भवति हि सौहार्दमेककार्याणाम्॥ २४६॥

पृथ्वी उठाने के भार से थके दिग्गजों को तर करने के जल समूहों को इस पर्वत पर बरसा रहे हैं। एक समान काम करने वालों में मित्रता हो ही जाती है।

---

1 गीता में—पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥ गीता १५।१३॥
ओषधयः सवदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि॥

(यह पर्वत और दिग्गज पृथ्वी-के धारण करने के लिये बनाये गये हैं —दोनों में कार्य की समानता होने से मित्रता हो गई) पर्वतमर-चारों ओर झरते हैं ॥२४६॥

हारीताहितशोभो मुदितशुको व्यासरमणीय ।
विश्रान्तभरद्वाज समतामयमेति मुनिनिवासस्य ॥ २४७ ॥

यह अर्बुदाचल मुनियों के आश्रम के समान है, जिस प्रकार मुनि आश्रम में हारीत, शुकदेव, व्यास और भरद्वाज रहते हैं, उसी प्रकार यह पर्वत भी हारीत [हरियाल हारील], पक्षी से शोभित हैं तोते प्रसन्न हैं, व्यास [फ्रौश्रों ?] से सुन्दर बना है, भरद्वाज पक्षी इस पर विश्राम करते हैं ॥ २४७ ॥

अस्मिन्नि सगा अपि परलोकमाप्त्युपायकृतयत्ना ।
गन्धवहभोजना अपि न हिंसका , फलभुजोऽपि न प्लवगा ॥२४८॥

वायु का भोजन करने वाले [मुनि] साप की भांति हिंसक नहीं फल का भोजन करने पर भी [मुनि] बन्दरों की भांति नहीं हैं । इस पर्वत पर मुनि लाग आसक्ति रहित बन कर परलोक की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं ॥ २४८ ॥

शुभकर्मकरता अपि पट्कर्मण्या यता अपि स्ववशा ।
अनभिमतरौद्रचरिता शिवप्रिया अपि, वसन्ति शमनिरता ॥२४९॥

अदृष्ट जनक अकेले शुभकर्म में ही निरत, अध्ययन-अध्यापन यजन याजन दान प्रतिग्रह रूपी छ कर्मों में लगे, जितेन्द्रिय-सयमी, रौद्र भयानक आचरण को पसन्द न करने वाले शिव के प्रिय शम प्रधान-मुनि जहा रहते हैं ॥२४९॥

मूर्तिरिव शिशिररश्मेर्हरिणवती, सप्तपत्रकृतशोभा ।
सरणिरिव चण्डभास , पलाशिनी यातुधानजायेव ॥ २५० ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा हरिण वाला है, उसी प्रकार यहा पर भी हरिण समूह है, जिस प्रकार सूर्य की शोभा सात घोडों से है, उसी प्रकार आबू पर सतवन के वृक्ष हैं । जिस प्रकार सूर्य का मार्ग है, उसी प्रकार यहा पर भी मार्ग बने हुए हैं, जिस प्रकार राक्षसों की पत्नी मास खाती है, उसी प्रकार से यहा पर पलाश-ढाक के वृक्ष और मासपर्णा हैं ॥ २५० ॥

सोत्कण्ठेव समदना, वासकसज्जेव कृततिलकशोभा ।
बहुहरिपीलुसनाथा नरनाथद्वारभूमिरिव ॥ २५१ ॥

उत्कण्ठा नायिका की भांति यहा पर मदन है [उत्कण्ठा नायिका में काम और यहा पर मदूर हैं], जिस प्रकार से वासकसज्जा नायिका माथे पर तिलक रचती है, उसी प्रकार तिलक वृक्षों से आबू शोभित है । जिस प्रकार राजा की द्वार भूमि बहुत से हरि (घोडों) से सनाथ-रहती है, उसी प्रकार यहा भी

बहुत से हरि (सिंह या बन्दर) और पीलु (मकोय) के वृक्ष हैं। जिस प्रकार राजद्वार में हाथी रहते हैं, वैसे यहां पर भी हाथी हैं¹ ॥ २५१ ॥

> अर्जुनबाणव्रातैः कुरुनाथवरूथिनीव सञ्छन्ना ।
> ऋक्षसहस्रोपचिता लक्ष्मीरिव गगनदेशस्य ॥ २५२ ॥

जिस प्रकार अर्जुन के बाण समूहों से दुर्योधन की सेना ढक गई थी, उसी प्रकार यह पर्वत भी अर्जुन वृक्ष, बाण (भिस्टी) वृक्षों से ढँपा है। आकाश की लक्ष्मी जैसे हजारों ऋक्षों से (नक्षत्रों से) भरी रहती है, उसी प्रकार आबू हजारों ऋक्षों से (भालुओं से) भरा है ॥२५२॥

> ध्वजिनीव दानवानां मिष्टकसमधिष्ठिता, नियामेव ।
> उद्यातरोहिणीका, रम्येयमुपत्यका भाति ॥ २५३ ॥
> (संदानितकम्)

जिसप्रकार से राक्षसों की सेना में मिष्टक-राक्षस है, उसी प्रकार यहाँ पर मिष्टक (आम के वृक्ष) हैं, जिस प्रकार रात्रि में रोहिणी नक्षत्र निकलता है उसीप्रकार यहाँ पर रोहिणी (मांसरोहिणी ओषधि) उत्पन्न हुई है, यह उपत्यका; [पर्वत के पास की भूमि] अति सुन्दर है ॥२५३॥

> इति दर्शयति वयस्ये, सुन्दरसेने च पश्यति प्रीत्या ।
> स्वप्रस्तावोपगता गीतिरियं केनचिद्गीता ॥ २५४ ॥

इस प्रकार मित्र के दिखाने पर एवं सुन्दरसेन के प्रीति से उपत्यका को देखते हुए—प्रसंग वश किसी ने स्वय ही यह गीति गाई ॥२५४॥

> "अतिशायितनाकपृष्ठं पृष्ठ ये नार्बुदस्य पश्यन्ति ।
> बहुविषयपरिभ्रमणं मन्ये क्लेशाय केवलं तेषाम्" ॥ २५५ ॥

१—उत्कण्ठिता – विविधकुसुममालाभूषिताङ्गी मनोज्ञा,
सुरतरसविलोला सानुरागा स्वकान्ते ।
निवसति चटुलाक्षा वासगेहे चिरं या,
वरकविभिरिहोक्ता सा किलोत्कण्ठितेति ॥ अनंगरंग १०।२९

(ख) आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रियः ।
तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा ॥ सा. द. ३।८६

वासकसज्जा—वनिता शुभवासवेश्मनि मृदुशय्यामधिवासिनी निशि ।
पतिमार्गविचारवीक्षणा कथिता वासकसज्जिका बुधैः ॥

(ग) कुरुते मण्डनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि ।
सा तु वासकसज्जा स्याद्विदितप्रियसङ्गमा ॥ सा. द. ३।८५

स्वर्ग की भूमि को भी तिरस्कृत करने वाले अर्बुदाचल के उपरी भाग को जो नहीं देखते, उनका बहुत से देशों में घूमना केवल कष्ट के लिये ही है ॥२५५॥

आकर्ण्य च स बभाषे, महात्मनाऽनेन युक्तमुपगीतम् ।
शिखरशिरः पश्यामो वयस्य रम्यं समारुह्य ॥ २५६ ॥

इसको सुनकर सुन्दरसेन ने कहा कि "इस महात्मा ने ठीक ही कहा है, हे मित्र ! पर्वत के शिखर पर चढ़कर इसकी सुन्दरता को देखें" ॥२५६॥

अथ गिरिवरमारूढो विलोकयन् विविधविबुधभवनानि ।
वापीरुद्यानभुवः सरांसि सरितश्चचाराविस्मेरः ॥ २५७ ॥

इसके पीछे पर्वत पर चढ़कर बहुत से देवमन्दिरों को वापी (बावडी), उद्यान, तालाब और नदियों को आश्चर्य से देखते हुए घूमने लगा ॥२५७॥

अचिराभामिव विघना, ज्योत्स्नामिव कुमुदबन्धुना विकलाम् ।
रतिमिव मन्मथरहितां, श्रियमिव हरिवक्षस पतिताम् ॥ २५८ ॥
हस्तोच्चयं विधातुः, सारं सकलस्य जन्तुजातस्य ।
दृष्टान्तं रम्याणां, शस्त्रं सकल्पजन्मनो जैत्रम् ॥ २५९ ॥
विकसितकुसुमसमृद्धिं, शृंगाररसापगैककलहंसीम् ।
लीलापल्लववल्लीं, व्रतिनामवधानवर्मणो भल्लीम् ॥ २६० ॥
विचरन्नुपवनमण्डपपुष्पप्रकराभिराममूपृष्ठे ।
रममाणां सह सख्या ललनामालोकयामास ॥ २६१ ॥ (कुलकम्)

निगाह के सामने पडी नायिका का वर्णन—मेघ रहित अचिराभा (विद्युत्) के समान, चन्द्रमा से बिछुडी ज्योत्स्ना के समान, कामदेव से पृथक् हुई रति के समान, विष्णु के वक्ष से गिरी लक्ष्मी की भाँति, ब्रह्मा के हस्त कौशल का नमूना, सम्पूर्ण प्राणियों की सार भूत, सुन्दरता का उदाहरण, कामदेव का विजय प्राप्त करने का शस्त्र, खिले फूलों की समृद्धि-वसन्त ऋतु, शृंगाररस रूपी नदी की कलहंसी, नाना प्रकार के पल्लवों वाली लीलावती लता, तपस्वियों के समाधि रूपी कवच को तोडने में भाला, फूलों से सुन्दर उपवन मण्डप में घूमती एवं सखियों के साथ खेलती ललना नायिका को देखा ॥२५८–२६१॥

अवलोकयतस्तस्य स्मरसायकवेध्यतामुपगतस्य ।
इदमभवन्मनसि चिरं विस्मयमाराभिभूयमानस्य ॥ २६२ ॥

नायिका को देखते हुए कामदेव के बाण से विद्ध होने के कारण उसके मन में बहुत अधिक आश्चर्य हुआ ॥२६२॥

क्वेदं खलु विश्वसृज. कौशलमत्यद्भुतं जातम् ।
येन विरुद्धानामपि घटितैकत्र स्थितिस्तथा हीयम् ॥ २६३ ॥

ब्रह्मा का यह अद्भुत कौशल कहाँसे उत्पन्न हो गया, जिसमें विरोधि वस्तुओं का भी एकत्र सकलन सुन्दरता उत्पन्न करता है ॥२६३॥

ललितवपुर्निर्दोषा स्फुरदुज्ज्वलतारकाभिरामा च ।
निर्वाच्यवदनकमला जितवीणा क्वणितवाणी च ॥ २६४ ॥
प्रकटितविग्रहसंस्थितिरतिशोभाघटितसन्धिबन्धा च ।
उन्नतपयोधराढ्या शरदिन्दुकरावदाता च ॥ २६५ ॥
अभिमतसुगतावस्थितिरभिनन्दितचरणयुगलरचना च ।
अतिविपुलजघनदेशा विध्वस्तशरीरविहितशोभा च ॥ २६६ ॥

सुन्दर शरीर, निर्दोष, हिलती हुई निर्मल आँखो की पुतली से मनोहर (चंचल आँखो वाली), अवर्णनीय मुख शोभा, वीणा को भी जीतने वाली मधुर वाणी, उत्तम शरीर विन्यास, सुन्दर गठन, अभिराम सन्धिबन्ध (अवयव सश्लेष), भारी स्तन, शरद् ऋतु ने चन्द्रमा के समान शुभ्रता, सुन्दर चलना और खडा होना, अनिन्दित चरण युगल, अति विपुल जघन प्रदेश, नष्ट शरीर [कामदेव] से बनाई शरीर शोभा, वाली हारलता को देखकर सुन्दरसेन में प्रथम अनुराग उत्पन्न हुआ[1] ॥२६४–२६६॥

आविर्भवदनुरागे तस्मिन्नथ चलितलोचना सहसा ।
सापि बभूव मृगाक्षी हस्तगता कुसुमचापस्य ॥ २६७ ॥

इसके पीछे सुन्दर आँखोंवाली, मृगाक्षी हारलता भी सहसा कामदेव के वशीभूत हो गई[2] ॥२६७॥

तरुमूलमाश्रिताया विस्मृतसकलान्यकर्मणः सपदि ।
तस्या गात्रलतायामंकुरितं सात्त्विकैर्भावैः ॥ २६८ ॥

तुरन्त ही वह वृक्ष के नीचे बैठ गई, सब कार्यों का करना भूल गई, उसके शरीर में सात्विक भाव उत्पन्न हो गये[3] ॥२६८॥

---

१. इन तीन श्लोकों में विरोधाभास अलंकार है ।

२ यहाँ पर कवि ने नायक में पहले कामवेग दिखाया है, परन्तु कविप्रसिद्धि से प्रथम नायिका में अनुराग कहा जाता है—

पूर्वं नारी भवेद्रक्ता पुमान् पश्चात्तदिङ्गितै ॥

३. काम के सात्त्विक भाव—

स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमाञ्च स्वरभंगोऽथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः ॥ सा. द. ३।१३५

सत्त्व-मन या सत्त्वगुण से उत्पन्न होनेवाले विकार सात्त्विक-भाव हैं ।

सेचोपवनसमृद्धिस्तस्मिन्नेव क्षणे स्मर स्मृत्वा।
ता व्यथयितुमारेभे, प्रभोर्हि कृत्य करोति खलु सर्व ॥ २६६ ॥

वसन्त से उत्पन्न उपवन का ऐश्वर्य इसने शरीर म (हारलता का यौवन ही वसन्त कृत उपवन की शोभा थी), अपने प्रभु [कामदेव] को स्मरण करके उसको पीडित करने लगा, क्योकि सब कोइ अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है[1] ॥२६६॥

गात्रशिरासन्धिभ्य प्रस्वेदजल विनिर्ययौ तस्या ।
अन्तर्ज्वलितमनोभवहव्यभुजा दह्यमानेभ्य ॥ २७० ॥

अदर जलती हुई कामाग्नि स जलते हुए उसके गात्र शिरा-सधियों से प्रस्वेद पसीना जल निकलने लगा ॥२७०॥

कुसुमशरजालपतिता मुहुर्मुहुर्विदधती विवृत्तानि ।
अनिमेष पश्यन्तीमत्स्यवधूमनुचकार सा तन्वी ॥ २७१ ॥

कामदेव के जाल म फसा हारलता मछली की भाँति करवट बदलती थी, मछली के समान निर्निमेष दृष्टि अपलक आँख स वह देख रही थी ॥२७१॥

स्तब्धतनु सोत्कम्पा पुलकवती स्वेदिनीं सनि श्वासाम्।
विदधे तामसमशर, क्रीडति हि शठो निशिष्टमासाद्य ॥ २७२ ॥

काम के कारण उसका शरीर जड बन गया, उसम उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई, शरीर रोमाञ्चित हो गया, पसीना बहने लगा, गहरे लम्बे श्वास लेने लगी। धूर्त व्यक्तिविशेष को प्राप्त करके इच्छानुसार खेलता है ॥२७२॥

उच्छ्वासैरुल्लसन कुचयुगले, सौष्ठव विलासानाम्।
अभिलषितेन, प्रेम्णा स्निग्धत्व चक्षुषोर्मनोहारि ॥ २७३ ॥
अनुरक्त्या वदनरुचि, वचसि च गमने च साध्वसस्खलनम्।
तस्या मदन कुर्वन्नुपनिन्ये चारुतामवधिम् ॥ २७४ ॥ (युग्मम्)

उच्छ्वासो से स्तन ऊपर उठने लगे, अभिलाषा-चाह स विलासों में सौष्ठव आगया, प्रम के कारण आँखों में स्नेह तथा सुदरता आ गई। अनुरक्ति से चेहरे की कान्ति बढ गई, भय के कारण बोलने में और चलने मे लडखडाना प्रारम्भ हो गया, इस प्रकार से कामदेव ने उसकी सुन्दरता सीमा तक पहुचादी[2]॥२७३–७४॥

---

१ माघ ने कहा है—'प्रभुचित्तमेव हि जनाऽनुवत्तते।' शिशुपालवध १२।४१

२ विलास—यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्।
विशेषस्तु विलास स्यादिष्टसदर्शनादिना ॥ सा० द० ३।९९९
विहसित—आकुञ्चितकपोलाक्ष सस्वन न स्वन तथा।
प्रस्तावोत्थ सानुरागमाहुर्विहसित बुधा ॥

पार्श्वगतेऽपि प्रेयसि कामशरासारताड्यमानाऽपि ।
न शशाक साऽभिधातुं चित्तगतं प्रणयभंगतो भीता ॥ २७५ ॥

मेरे कहने से कहीं प्रणय भंग न हो जाये, इस भय से कामदेव के बाणों से पीड़ित होते हुए एवं प्रेमी के पास में होने पर भी उसने अपने मन की बात नहीं कही[1] ॥२७५॥

अथ विदितचित्तवृत्तिः सकटाक्षं प्रियतमे समाकृष्य ।
मदनेन दह्यमानां विहसितविशदं जगाद तामालोक्य ॥ २७६ ॥

इसके पीछे प्रियतम में निगाह लगाये; कामदेव से जलती हारलता की मनोदशा को समझकर, हँसती हुई सखी ने हारलता को खींचकर स्पष्ट रूप में कहा ॥२७६॥

अयि हारलते संहर हरहुंकृतिदग्धदेहसंक्षोभम् ।
सद्भावजाऽनुरक्तिर्न हि पथ्यं पण्यनारीणाम् ॥ २७७ ॥

हे हारलता! महादेव से भस्म किये कामदेव जन्य संक्षोभ-बेचैनी को रोक, वेश्याओं के लिए सद्भाव जन्य प्रेम (अभिमान जन्य अनुराग), अच्छा नहीं[2] ॥२७७॥

---

1. स्त्री चाह-कामना करती है परन्तु वाणी से कुछ नहीं कहती, पुरुष कामना करता है, और मुख से प्रेम की माँग भी कर बैठता है—('स्त्रियः कामयन्ते, न तु प्रार्थयन्ते, पुरुषः कामयते-प्रार्थयते च'—वात्स्यायन)। प्रथम समागम में ही स्त्री के अपने आप कहने पर हलकापन दीखता है—

सर्वा एव हि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते,
न तु लघुमिश्रामपि वाचं वदन्तीति घोटकमुखः ॥ वात्स्यायन ।

नैषध में भी दमयन्ती के लिए कहा है—
'का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाषं कथयेदलज्जा ॥' ३।५९

2. प्रीति—अनुराग चार प्रकार का है:

अभ्यासादभिमानाच्च तथा संप्रत्ययादपि ।
विषयेभ्यश्च तन्त्रज्ञाः प्रीतिमाहुश्चतुर्विधाम् ॥ वात्स्यायन २।१

कर्माभ्यास से, सत्कार से, प्रेम व से और परस्पर दान मानादि से उत्पन्न, इसमें अभिमान जन्य प्रीति को यहाँ कहा है, जैसा कामसूत्र में कहा है—

अनभ्यस्तेष्वपि पुरा कर्मस्वविषयात्मिका ।
संकल्पाज्जायते प्रीतिर्या सा स्यादाभिमानिकी ॥

इसी को अनंगरंग में समा कहा है—'समयोगे समा स्मृता'—४।२७।

अवधीरय धनविकलं, कुरु गौरवमकृशसंपदः पुंसः ।
अस्मादृशां हि मुग्धे धनसिद्धये रूपनिर्माणम् ॥ २७८ ॥

निर्धन का तिरस्कार करो; धनी पुरुष को सम्मान दो, हे मुग्धे ! हम लोगों का रूप धन प्राप्ति के लिए ही बना है[1] ॥२७८॥

अभिरामेऽभिनिवेशं विदधाना विविधलाभनिरपेक्षा ।
उपहस्यसे सुमध्ये विदग्धवारांगनावारैः ॥ २७९ ॥

हे सुमध्ये ! नाना प्रकार के लाभों की उपेक्षा करके अभिराम (मनोज्ञ-सुन्दर) मनुष्य में अनुरक्त होने पर चतुर वेश्याओं की हँसी का पात्र बनोगी— वे तुम पर हँसेंगी ॥२७९॥

येषां श्लाघ्यं यौवनमभिमुखतामुपगतो विधिर्येषाम् ।
फलितं येषां सुकृतं जीवितसुखिवार्थिता येषाम् ॥ २८० ॥
ते यस्याः स्वयमेव त्वामनुबध्नन्ति मदनशरभिन्नाः ।
न हि मधुलिहः कृशोदरि मृग्यन्ते चूतमञ्जर्या ॥ २८१ ॥

(युगलकम्)

जिन कामुकों का यौवन प्रशंसनीय होगा, जिनका भाग्य उदय हो गया होगा, जिनका सुकृत फल गया होगा, जिनमें जीवन के सुख की चाह होगी, वे कामदेव के शरों से बिंधे अवश्य ही तेरे पास स्वयं आयेंगे, आम की मंजरी के पास भ्रमर स्वयं खिंचकर आते हैं, मंजरी उनके पीछे नहीं भागती[2] ॥२८०-८१॥

इति गदितवतीमालीं कामशरासारभिन्नसर्वांगी ।
अव्यक्तस्खलिताक्षरमूचे कृच्छ्रेण हारलता ॥ २८२ ॥

सखी के इस प्रकार कहने पर, कामदेव के बाणों से छिदी हारलता ने लड़खड़ाती एवं अस्पष्ट वाणी द्वारा कठिनाई के साथ कहा ॥२८२॥

१· क्षेमेन्द्र ने भी कहा है—
अक्षीणवित्तेन निरुद्यमेन किं रूपयुक्तेन करोति वेश्या ।
विच्छिन्न दुग्धा न पुनः सगर्भा सा कस्य गौश्चाहृतयोपयुक्ता ॥
इत्युक्त्वा तं क्षपितविभवं कञ्चुकाभं भुजङ्गी
त्यक्त्वा गच्छेत्सघनमपरं वैशिकोऽयं समासः ॥ समयमातृका २।८१, ८९

२· अन्यत्र भी कहा है—नार्थयन्ते मधुनि मधुपाः पारिजातप्रसूनैः,
नाभ्यर्थ्यन्ते तुहिनरुचिना चन्द्रिकाभिश्चकोरः ।
कालिदास का वचन प्रसिद्ध ही है—
'न रत्नमन्विच्छति मृग्यते हि तत्'—कुमार· ५।४५

सखि कुरु तावद्यत्नं पटुतरमतिवेदनाप्रतीकारे।
कोऽधीकृता विपत्त्या न भवन्त्युपदेशयोग्या हि॥ २८३॥
हे सखी! वेदना को दूर करने का कोई उत्तम उपाय शीघ्र करो, सिर पर आई विपत्तियाँ केवल उपदेश से दूर नहीं की जा सकतीं ॥२८३॥

अस्वायत्तः प्रेयान् मृदुपवनः सुरभिमास उद्यानम्।
इयती खलु सामग्री भवति क्षीणायुषामेव॥ २८४॥
अस्वतन्त्र प्रेमी, मृदु पवन, सुरभिमास (चैत्रमास), उपवन, ये सब, उनके मारने के लिए पर्याप्त हैं, जिनकी आयु क्षीण हो गई है ॥२८४॥

मत्वा मदनाशीविषवेगाकुलितविग्रहां मालतीम्।
समुपेत्य शशिप्रभया पौरन्दरिरभिदधे कृतप्रणतिः॥ २८५॥
सर्प विष की भाँति कामाग्नि से बेचैन, अपनी सखी को जानकर, चन्द्रप्रभा ने सुन्दरसेन के पास जाकर, हाथ जोड़कर निवेदन किया ॥२८५॥

यदि नाम रुणद्धि गिरं गणिकाभावोपजनितवैलक्ष्यम्।
तदपि कथनीयमेव, स्निग्धापदि न हि निरूप्यते युक्तम्॥ २८६॥
वेश्या भाव के कारण उत्पन्न लज्जा मुझे कहने से रोकती है, तथापि कहना ही होगा, क्योंकि स्नेहीजन की आपत्ति में औचित्य का विचार नहीं होता[1] ॥२८६॥

एतावति संसारे परिगणिता एव ते सुजन्मानः।
आपन्नपरित्राणे व्याकुलमनसः स्फुरन्ति ये बुद्धौ॥ २८७॥
इतने बड़े संसार में उन्हीं लोगों का जन्म धन्य है, जो आपत्तियों में फँसे मनुष्यों की रक्षा करते हैं; उनको ही मनुष्य स्मरण करते हैं ॥२८७॥

यस्मिन्नेव मुहूर्ते चक्षुर्विषयं गतोऽसि मे सख्याः।
तत एवारभ्य गता विधेयतां दुष्टमदनस्य॥ २८८॥
जिस मुहूर्त में आप मेरी सखि की आँखों के सामने पड़े हैं, तब से ही वह दुष्ट कामदेव के अधीन बन गई है ॥२८८॥

रोमोद्गमसन्नद्धं भित्त्वान्तर्निमग्नं परापतिताः।
तस्या मानससम्भवकोदण्डविनिर्गता इषवः॥ २८९॥
कामदेव के धनुष से निकले हुए बाण उसके रोमाञ्चरूपी कवच का भेदन करके शरीर के अन्दर अन्तःकरण में गिरे हैं ॥२८९॥

---

1. माघ ने भी कहा है—'विपदि न दूषिताऽतिभूमिः'—८।२०। आपत्ति में अमर्यादा दूषित नहीं।

किं वा वदतु वराकी, कुत्र समाश्वसितु, यातु कं शरणम् ।
पीडयति भृशं यस्मान्नित्यं शुचिर्दक्षिणो मृदुः पवनः ॥ २६० ॥

गरीब बेचारी वह क्या कहे; कहाँ सान्त्वना पावे; किसको शरण में जाये; क्योंकि निर्मल, कोमल, दक्षिण की वायु उसको निरन्तर बहुत अधिक पीडित कर रहा है[1] ॥२६०॥

वचसि गते गद्गदतामुज्झितमौनव्रताश्चिराय पिकाः ।
हृष्टा व्यथयन्ति सखीं जातावसरा निरर्गलं विरुतैः ॥ २६१ ॥

उसकी वाणी में अस्पष्टता आजाने से, देर से धारण किये मौन व्रत को छोडकर, अब कोयलें भी प्रसन्न होकर निरर्गल (अण्ड-बण्ड); वाणी में बोलकर मेरी सखि को पीडित कर रही हैं ॥२६१॥

स्खलिताकुलिते गमने तन्वंग्या अगणितश्रमा हंसाः ।
सुचिराल्लब्धावसरा. कुर्वन्ति गतागतानि परितुष्टाः ॥ २६२ ॥

उस तन्वगी की चाल में बेचैनी और स्खलन आ जाने से अब हंस भी थकान की चिन्ता न करके, देर में अवसर मिलने के कारण प्रसन्नतापूर्वक जाना-आना करने लगे हैं ॥२६२॥

उष्णोच्छ्वसितसमीपे विदह्यमानोऽपि मधुकरस्तस्याः ।
अलककुसुमं न मुंचति, कृच्छ्रेष्वपि दुस्त्यजा विषयाः ॥ २६३ ॥

उसके गरम उच्छ्वास से जलते हुए भी भ्रमर, केशों में लगाये फूल को नहीं छोडते; शारीरिक कष्ट होने पर भी विषय दुस्त्याज होते हैं, कठिनाई से छोड़े जाते हैं[2] ॥२६३॥

नो वारयसि तथा मां साम्प्रतमिति कथयतीव मधुलेहः ।
निःसहवपुषः कर्णे श्रुतिपूरकपुष्पसंगतो गुञ्जन् ॥ २६४ ॥

अब भ्रमर भी असहाय बनी सखी के कान में लगे फूल के सहारे गूँजते हुए, मानों यह कह रहे हैं, कि जिस प्रकार से पहले तुम मुझे हटाती थी, अब उस प्रकार से नहीं हटाती ॥२६४॥

---

१. वसन्ते दक्षिणः—
उद्दामं दाक्षिणात्यो मलिनमलयजः सारथिर्मीनकेतोः ।
प्राणः सीमन्तिनीनां मधुमयसुहृन्मानचौरः समीरः ॥ काव्यमीमांसा ॥१८॥

२. कुचों को पीडित करने, ओठों के काटने में भी नायिका को आनन्द मिलता है ।

प्रशिथिलभुजलतिकायास्तस्या पतितस्य हेमकटकस्य।
यत्प्रापणं पृथिव्यास्तस्मिन्खलु मुक्तहस्तता हेतुः ॥ २६५ ॥

उसकी बाहुओं के शिथिल-कृश हो जाने के कारण स्वर्ण का वलय जो भूमि पर गिर पड़ा; वह उसकी उदारता ही समझो[1] ॥२६५॥

रशनागुणेन विगलितमेकपदं तन्नितम्बतश्चित्रम्।
पतनाय नियतमथवा निषेवणं गुरुकलत्रस्य ॥ २६६ ॥

रशनारज्जु-करधनी से खिसका हुआ भी एक पैर भारी श्रोणि भाग से नहीं गिरता; यह बड़े आश्चर्य की बात है[2] जब कि (गुरुपत्नी पर आसक्ति करना लोक में पतन का कारण होती है, यहाँ विपरीत है) ॥२६६॥

अंगीकृत्य मनोभवमुरसि तथा लालितोऽपि हतहारः।
तापयति सखीं तत्क्षणमन्तर्भिन्नात्कुतः कुशलम् ॥ २६७ ॥

बड़े चाव से पहना हुए हार कामदेव के पक्ष को स्वीकार करके-शत्रु बनकर सखी को दुःख दे रहा है, अन्दर से जो फूट गये-उनकी कहाँ कुशल? उनकी कहीं भी शान्ति नहीं (हार भी अन्दर से छिद्र होता है)।

वासासितं स्वेदजलं कज्जलमलिनाश्रुवारिणा मिश्रम्।
कुचतटपतितं तस्याः प्रयागसंभेदसलिलमनुकुरुते ॥ २६८ ॥

चन्दन के लेप से सुवासित स्वेद जल, कज्जल मिश्रित आँसुओं के साथ मिलकर स्तनों पर गिरकर, प्रयाग में मिली गंगा-यमुना के जल का अनुकरण करता है[3] ॥२६८॥

पिकरुतमलयसमीरणसुमनःस्मरभृंगदहनपरिकलिता।
पञ्चतपश्चरति भवत्परिरम्भणसौख्यलम्पटा बाला ॥ २६९ ॥

कोयल का कुहकना, मलयाचल की वायु (शीत वायु), मल्लिकादि पुष्प, काम और भ्रमर ये पाँच काम से पीड़ित उसको जलाने वाली अग्नियाँ हैं।

---

१. कालिदास ने भी सोने के वलय के गिरने का उल्लेख किया है—
'मुहुर्मणिबन्धनात् कनकवलयं स्रस्तस्रस्तं मया प्रतिसार्यते'—
शाकुन्तल-३।१३

२. गुरुपत्नी का सेवन निश्चित पतन का कारण है—यह दूसरा अर्थ है।

३. कालिदास ने रघुवंश में गंगा के श्वेत जल और यमुना के काले जल के मिलने का वर्णन किया है—
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥रघु० १३।५७

आपसे मिलने के सुख की लालसा में वह बाला पाँच अग्नियों का तप कर रही है[1] ॥२९९॥

न परा पतति वराकी दशमीं यावन्मनोभवावस्थाम् ।
त्रायस्व सुभग तावच्छरणागतरक्षणं व्रतं महताम् ॥ ३०० ॥

यह गरीब जब तक काम की दसवी दशा (मृत्यु) तक नहीं पहुँचा, हे सुभग! उससे पहिले ही उसको बचा लो—सज्जनों का यही धर्म है कि शरणागत की रक्षा करें[2] ॥३००॥

अथ तद्वचसि कृतादरमुद्भूतमनोभवं समवधार्य ।
अवगीतिभीतचेता उचे गुणपालितं सुहृदम् ॥ ३०१ ॥

शशिप्रभा के वचनों का आदर करके, मनोभव काम उत्पन्न हुआ जान कर निन्दा के भय से अपने मित्र गुणपालित को मन में डरते हुए सुन्दरसेन ने कहा ॥३०१॥

यद्यपि मारप्रसरो दुर्वारः प्राणिनां नवे वयसि ।
चिन्त्यं तदपि विवेकिभिरवसानं वारयोषितां प्रेम्णः ॥ ३०२ ॥

यद्यपि उठती जवानी में प्राणियों के लिए काम विकार असहनीय होता है, तथापि बुद्धिमानों को वश्या प्रेम का परिणाम सोचना ही चाहिये ॥३०२॥

वारस्त्रीणां विभ्रमरागप्रेमाभिलापमदनरुजः ।
सहवृद्धिक्षयभाजः प्रख्याताः संपदः सुहृदः ॥ ३०३ ॥

वश्याओं का विभ्रम अनुराग–प्रीति, प्रेम, अभिलाषा–चाह, कामपीडा, ये सब सम्पत्ति के मित्र तुल्य हैं, सम्पत्ति के साथ ये बढते हैं, और सम्पत्ति के घटने से घटते हैं[3] ॥३०३॥

---

१ पञ्चाग्नि तप—वह्निभिर्दीप्तैः शुष्कैश्चतुर्दिक्षु चतुष्कयम् ।
वह्निसंस्थापनं, ग्रीष्मे तीर्मांशुस्तत्र पञ्चमः ॥ कालिकापुराण

२ काम की दस अवस्थायें—
अभिलाषोऽथ चिन्ता स्यात्स्मृतिश्च गुणकीर्तनम् ।
उद्वेगोऽथ प्रलापः स्यादुन्मादो व्याधिरेव च ।
जडतामरणे चैव दशमे जायते ध्रुवम् ॥ शृङ्गारतिलक २।५

साहित्यदर्पण में (३।१९०) में भी काम की ये ही दस अवस्थायें कही हैं ।

३ विभ्रम भ्रूविलास—अङ्कुर पल्लवकलिकाप्रसूनफलभोगभागियं क्रमशः ।
प्रेम मानः प्रणयः स्नेहो रागोऽनुरागः इत्युक्तः ॥

विभ्रम आदि—प्रेमाभिलाषो रागश्च स्नेहः प्रेम रतिस्तथा ।
शृङ्गारश्चेति सम्भोगः सप्तावस्थः प्रकीर्तितः ॥

ताभिरयद्गतजन्मा करोति संगं कथं यासाम् ।
क्षणदृष्टोऽपि प्रणयी, रूढप्रणयोऽपि जन्मनो पूर्वः ॥ ३०४ ॥

सत्कुल में उत्पन्न मनुष्य इन वेश्याओं के साथ संगति कैसे करे, जिनके लिए क्षण भर में देखने से उत्पन्न नया प्रेम तथा पुराना-गाढ़ा स्नेह भी एक ही समान होता है ॥३०४॥

प्रद्युम्नः प्रद्युम्नो विरूपकः खलु विरूपकः सततम् ।
सुस्निग्धः सुस्निग्धो रूक्षो रूक्षस्तु गणिकानाम् ॥ ३०५ ॥

वेश्याओं के लिए धनी मनुष्य ही प्रद्युम्न—कामदेव होता है, जिसके पास बहुत से रुपये होते हैं, वही विशेष रूप से रूप वाला है, द्रव्य से जो स्निग्ध-भरा होता है, वही उनके लिये स्नेही है, धन से रूक्ष-हीन व्यक्ति उनके लिए रूक्ष-कठोर होता है[1] ॥३०५॥

यासां जघनावरणं परकौतुकवृद्धये न तु त्रपया ।
उज्ज्वलवेषा रचना कामिजनाकृष्टये न तु स्थितये ॥ ३०६ ॥

वेश्याओं का जघनों को ढाँपना लज्जा के लिए नहीं होता, अपितु दूसरों में आसक्ति उत्पन्न करने के लिये होता है। इनका उज्ज्वल वेश लोक-मर्यादा के लिये न होकर कामिजनों के आकर्षण के लिये होता है ॥३०६॥

मांसरसाभ्यवहारः पुरुषाहतिपीडया न तु स्पृहया ।
आलेख्यादौ व्यसनं वैदग्ध्यख्यातये न तु विनोदाय ॥ ३०७ ॥

इनका मांसरस का भोजन करना स्वाद के लिये न होकर, अनेक कामुक पुरुषों के सेवन जन्य शरीर पीड़ा की शान्ति के लिए होता है। इनका आलेख्य-चित्रकर्म आदि कार्य व्यसन-रुचि मनो विनोद के लिए न होकर केवल चतुरता दिखाने के लिये होता है[2] ॥३०७॥

---

१. वित्तेन वेत्ति वेश्या स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ।
वित्त विनाऽपि वेत्ति स्मरसदृशं कुष्ठिन जराजीर्णम् ॥ क्षेमेन्द्र.

२. वेश्यायें मांसरस का सेवन करती हैं, यह उल्लेख मृच्छकटिक में भी आया है, प्रायः मछली का मांस-रस सेवन करती हैं—

रमय च राजवल्लभ ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम् ।
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्यां श्वाना मृतकं न सेवन्ते ॥ १,२६
यदिच्छसि लम्बदशा विशाल प्रावारकं सूत्रशतैर्हि युक्तम् ।
मांसञ्च खादितुं तथा तुष्टिञ्च कर्तुं चुहु चुहु चुक्कु चुहु चुहु इति ॥ ८।२२
क्षेमेन्द्र ने भी लिखा है—मत्स्ययूपरसैर्दासी पुनर्क्षीरपलाण्डुभिः ।
प्रियं पराङ्मुखमिव प्रस्थानयति यौवनम् ॥
देशोपदेश—२।२२

रागोऽधरे न चेतसि, सरलत्वं भुजलतासु न प्रकृतौ ।
कुचभारेषु समुन्नतिराचरणे नाभिनन्दिते सद्भिः ॥ ३०८ ॥

इनके अधर में ही राग-रक्तिमा-लाली रहती है, चित्त में राग-अनुराग नहीं रहता । भुजाओं में ही सरलता-सीधापन होता है, प्रकृति में-स्वभाव में सीधापन नहीं होता । स्तनों में ही समुन्नति मिलती है, सज्जनों से अभिनन्दित आचरण में उन्नति नहीं होती ॥३०८॥

जघनस्थलेषु गौरवमाकृष्टधनेषु नो कुलीनेषु ।
अलसत्वं गमनविधौ नो मानववंचनाभियोगेषु ॥ ३०९ ॥

वेश्याओं के जघनों में गुरुता-भारीपन या श्रेष्ठता रहती है, जिनका धन ले लिया है, उनके लिए अथवा कुलीन पुरुषों के लिए प्रतिष्ठा नहीं रहती । इनकी चाल में ही अलसत्व मन्दगति रहती है, मनुष्यों के ठगने के आग्रह में मन्दगति-दीर्घसूत्रता नहीं रहती ॥३०९॥

वर्णविशेषापेक्षा प्रसाधने नो रतिप्रसंगेषु ।
ओष्ठे ''मदनासंगो नो पुरुषविशेषसंभोगे ॥ ३१० ॥

इनके लिये प्रसाधन में ही वर्ण-श्वेत-कृष्ण आदि का विचार है, रति क्रीड़ा में वर्ण—ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्ण का विचार नहीं होता । मदन-मोम का संग-उपयोग ओष्ठ के लिए ही है, पुरुष विशेष के संभोग में मदन-काम का संग नहीं रहता ॥३१०॥

या बालेऽपि सरागा, वृद्धेष्वपि विहितमन्मथावेगा ।
क्लीवेष्वपि कान्तदृशः, साकांक्षा दीर्घरोगेऽपि ॥ ३११ ॥

वेश्यायें बालक में भी अनुराग कर सकती हैं, वृद्ध में भी कामवेग की माँग कर सकती हैं, नपुंसक में भी प्रेमी या पति के समान बर्त्ताव कर सकती हैं, चिररोगी पुरुष में भी आकांक्षा-चाह कर सकती हैं ॥३११॥

स्वेदाम्बुकणोपचिता अनार्द्रतानिजनिवासमनसश्च ।
आविष्कृतवेपथवो वज्रोपलसारकठिनाश्च ॥ ३१२ ॥

पसीने में स्नान किया होने पर भी इनको अपने निवास और मन में किसी प्रकार का स्नेह या प्रीति नहीं होती । कँपकँपी दीखने पर भी ये वेश्यायें हीरे के सार भाग के समान [हीरे से भी अधिक] कठोर होती हैं ॥३१२॥

जघनचपला अनार्याः, परभृतयः कृतकनेत्ररागाश्च ।
सर्वांगार्पणदक्षा असमर्पितहृदयदेशाश्च ॥ ३१३ ॥

ये जघनचपला–व्यभिचारिणी होती हैं, अनार्य-दुष्ट स्वभाव की, दूसरों से पुष्ट होती हैं, इनकी आँखों में बनावटी प्रीति रहती है, सारे शरीर को अर्पित करने में चतुर, परन्तु हृदय को कभी अर्पित नहीं करतीं ॥३१३॥

न कुलसमुत्पन्ना अपि भुजंगदशनक्षतवेदनाभिज्ञा[1] ।
कन्दर्पदीपिका अपि रहिता स्नेहप्रसंगेन ॥ ३१४ ॥

सत्कुल में उत्पन्न न (नकुल-न्यौले के वंश में उत्पन्न) होने पर भी विटों (भुजग-साँपों) के काटने की वेदना को जाननेवाली, स्नेह-तेल के बिना भी कामदेव के दीपक होती हैं ॥३१४॥

उज्झितवृषपयोगा अपि रतिसमये नरविशेषनिरपेक्षा ।
कृष्णैकाभिरता अपि हिरण्यकशिपुप्रियाः सततम् ॥ ३१५ ॥

वृष स्वभाव के पुरुष (अथवा वृष धर्म) के छोड़ने पर भी रति क्रीड़ा में पुरुष विशेष का विचार न करने वाली होती हैं। कृष्ण भगवान कृष्ण (अथवा कृष्ण-पाप) में प्रेम रखने पर भी हिरण्यकशिपु से (हिरण्य-स्वर्ण, कशिपु-अन्न और आच्छादन-खान-पान, रहन-सहन) सदा प्रेम रखती हैं[2] ॥३१५॥

मेरुमहीधरभुव इव किम्पुरुषसहस्रसेवितनितम्बाः ।
नीतय इव भूमिभृतां सुपरिहृतानर्थसंयोगाः ॥ ३१६ ॥

जिस प्रकार मेरु पर्वत का कटि भाग हजारों किन्नरों से सेवित है—किन्नर वहाँ रहते हैं, उसी प्रकार इनका कटि भाग भी हजारों कुत्सित पुरुषों से सेवित होता है। जिस प्रकार राजाओं की नीति उनको अनर्थों से बचाती है,उसी प्रकार वेश्यायें भी अपने नाश या भयोत्पत्ति के अवसर को बचाती हैं ॥३१६॥

बहुमित्रकरविदारणलब्धाभ्युदया सरोरुहिण्य इव ।
डाकिन्य इव च रक्तव्याकर्षणकौशलोपेता ॥ ३१७ ॥

1—इसमें जघनचपला शब्द है, इसका लक्षण—
प्राक्प्रतिपादितमर्धे प्रथमे चरमदले तु चपलायाः ।
लक्ष्मायंयेषा मोक्ता विशुद्धधीभिर्जघनचपला ॥

2—वृष पुरुष का लक्षण—
(क) उपकारपरो नित्यं यौवनः स्नेहभक्तस्तथा ।
दशांगुलशरीरश्च धीमान् धीरो वृषो मतः ॥ स्मरदीपिका ।
(ख) कृशा मांसलमौलयो स्तम्भुजाः सुपीवरास्तथा
हृस्वा कूर्मनिभोदराश्च कठिनाम्स्यागान्विता पीवरा ।
श्रोणान्तः स्थिरदीर्घरोमपनसूनः स्वारल्पशवोदरा
ज्वालोला वृषभा नराङ्गुलमितं कामांकुरं बिभ्रतो ॥ अनंगरंग ३।१०

जिस प्रकार से कमलिनी मित्र-सूर्य की बहुत-सी किरणों से विकसित होती है, उसी प्रकार इनका अभ्युदय भी इनके बहुत से मित्रों के नखक्षतों के कारण होता है। डाकिनी की भाँति ये खून चूसने में अति कुशल होती हैं ॥३१७॥

प्रतिपुरुषं सन्निहिताः कृत्यपरा विविधविकरणोपचिताः।
बहुलार्थग्राहिण्यः प्रकृतय इव दुर्ग्रहा गणिकाः ॥ ३१८ ॥
(अर्थचतुष्टयवाचिनीयमार्या)

वेश्यायें प्रकृति की भाँति कठिनाई से पकड़ में आती हैं। प्रकृति [सत्त्व, रज और तम की साम्यावस्था—स्वभाव] प्रत्येक मनुष्य में पृथक्-पृथक् है, सांख्य मत में प्रकृति ही कार्य करने वाली कर्त्ता है, भिन्न भिन्न इन्द्रियों से युक्त, नाना प्रकार के अर्थ विषयों को प्रकृति ग्रहण करती है ॥३१८॥

वेश्यायें—पुरुष मात्र के प्रति निरपेक्ष होती हैं—सबके पास जाती हैं, पुरुषों को मोहती हैं—अपनी ओर खींचती हैं, नाना प्रकार के रति कर्मों को जानने वाली अत्यधिक धन का संग्रह करने वाली होती हैं।

सादरमाकृष्य चिरं कुसुमस्तवकं च नरविशेषं च।
रिक्तीकर्तुं निपुणाः क्षुद्राः क्षुद्राश्च चुम्बन्ति ॥ ३१९ ॥

जिस प्रकार से क्षुद्रा—मधुमक्खियाँ फूल के गुच्छे का रस देर तक आदर के साथ लेकर उसे रिक्त—खाली बनाने में कुशल होती हैं, उसी प्रकार से क्षुद्रा—वेश्यायें भी पुरुष को आदर के साथ देर तक उसका धन लेकर उसको कंगाल बनाने में कुशल होती हैं ॥३१९॥

परमार्थकठोरा अपि विषयगतं लोहकं मनुष्यं च।
चुम्बकपाषाणशिला रूपाजीवाश्च कर्षन्ति ॥ ३२० ॥

परिणाम में कष्टदायक, विषयों—काम में आसक्त मनुष्य को रूप से जीविका प्राप्त करने वाली वेश्यायें चुम्बक की भाँति खींचती हैं। जिस प्रकार से अतिशय कठोर, पहुँच में आये लोहे को चुम्बक पत्थर खींचता है, उसी प्रकार वेश्यायें भी विषयों में फँसे मनुष्य को खींचती हैं[1] ॥३२०॥

---

1. चुम्बक और नायिका-वेश्या में समानता है, चुम्बक लोहे को खींचता है, वेश्यायें पुरुष को खींचती हैं। चुम्बक चार प्रकार का है—आकर्षक, चुम्बक, द्रावक और भ्रामक, वेश्यायें भी चार प्रकार की हैं, उनके भी यही नाम हैं—

'प्रस्तर इव कठोरोऽपि, नखाकर्षकचुम्बकद्रावकेष्वेकोऽपि परं ...र । पुरुषान् स्वरूपमहिम्ना दूरादपि आकर्षितुं समर्था आकर्षिणी। आकृष्य नरान् तान् स्वसंभ्रमान् करोति या सा चुम्बिका। आलोकमात्रेण

पुरुषाक्रान्ताः सततं कृत्रिमशृंगाररागरमणीयाः ।
आहन्यमानजघनाः करेणवो वारयोषाश्च ॥ ३२१ ॥

वेश्यायें हथिनियों की भांति होती हैं। जिस प्रकार पुरुषों से अधिष्ठित, निरन्तर बनावटी शृगार की लाली से—सिन्दूर लगाने से सुन्दर; जघन भाग में चोट करने पर हथिनियाँ चलती हैं, उसी प्रकार वेश्यायें भी पुरुषों से अधिष्ठित, कृत्रिम शृगार की लाली से सुन्दर, जघन-कटि के सामने के भाग से आघात होने पर प्रसन्न होती हैं[1] ॥ ३२१ ॥

उचितगुणोत्क्षिप्ता अपि पुरतो विनिवेशिते सुवर्णलवे ।
झगिति पतन्ति सुरेन प्रकटप्रमदा यथा च तुलाः ॥ ३२२ ॥

जिस प्रकार से तराजू मजबूत डोरिया से उपर को उठाई होने पर भी आगे के पलड़े पर थोडा सा सोना रखने पर तुरन्त नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार वेश्यायें भी उचित योग्य सौन्दर्यादि गुण से अपनी बनाई होने पर भी थोड़े से स्वर्ण के कारण तुरन्त नीचे गिर जाती हैं—दूसरे की बन जाती हैं ॥ ३२२ ॥

बहिरुपपादितशोभा अन्तस्तुच्छा स्वभावतः कठिनाः ।
वेश्याः समुद्गि (दृग ?) का इव क्वणन्ति यन्त्रप्रयोगेण ॥ ३२३ ॥

वेश्यायें—जो मिली सिप्पियों की भांति बाहर से ही देखने में सुन्दर होती हैं, अन्दर से खाली रहती हैं, स्वभाव से ही कठोर होती हैं, यन्त्र प्रयोग से [सम्भोग के समय] शब्द करती हैं, सिप्पियां कला कौशल के प्रयोग से शब्द करती हैं ॥ ३२३ ॥

बध्नन्ति येऽनुरागं दैवहतास्तासु वारवनितासु ।
ते निःसरन्ति नियतं पाणिद्वयममतः कृत्वा ॥ ३२४ ॥

स्वर्गमात्रेण वा तान् भ्रावयितुं शक्ता द्रावयी। मौहायित्वा समागमादानेन भ्रामयति सा भ्रामिका ॥'

पुरुष भी चार प्रकार के हैं—कामकलाकौशलेन यो नारीमाकर्षति स आकर्षकः। रतिकौशलेन यश्चुम्बति स चुम्बकः। औषधिविशेषयोगेन कुचमर्दनेन वा यः कठिनकामिनीं द्रावयति स द्रावकः। अन्यासक्तो योऽन्यनारीं भ्रामयति प्रतारयति स भ्रामकः ॥—श्रीतनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी।

1. हथिनी का लक्षण—स्थूला विग्रहकुन्तला च बहुभुक् क्रूरात्रपावर्जिता
गौराङ्गी कुटिलांगुलीकचरणा ह्रस्वा नतस्कन्धरा।
विभ्रागेभमदाम्बुगन्धिरतिजं तोयं भृशं मन्दगा
दुःसाध्या सुरतेऽपि गद्गदरवा स्थूलौष्ठिका हस्तिनी ॥
अनंगरंग १।१४

भाग्य के मारे जो मनुष्य इन वेश्याओं में प्रेम करते हैं, वे अवश्य ही दोनों हाथों को आगे करके-भिक्षा के लिये हाथ फैलाकर घर से निकलते हैं ॥३२४॥

इदमुपदिशति वयस्ये सुन्दरसेने च मन्मथव्यथिते ।
प्रस्तावादुपगातु गीतित्रयमभ्यधायि केनापि ॥ ३२५ ॥

अपने मित्र द्वारा कामदेव से पीडित सुन्दरसेन को इस प्रकार का उपदेश देते हुए—प्रसगवश किसी ने ये तीन गीतिया गाईं—॥ ३२५ ॥

तरुणीं रमणीयाकृतिमुपनीतां स्मृतिभुवा वशीकृत्य ।
परिहरति यो जडात्मा प्रथमोऽसौनालिकोऽथिना भ्रान्तिम् ॥३२६॥

कामदेव के वश में हुई, सुन्दर आकृति वाली तरुणी के समीप आने पर भी जो उसका परित्याग करता है, वह अभागा नि सन्देह प्रथम श्रेणी का वेवकूफ है[1] ॥ ३२६ ॥

इदमेव हि जन्मफल जीवितफलमेतदेव यत पुसाम् ।
लडहनितम्बवतीजनसभोगसुखेन याति तारुण्यम् ॥ ३२७ ॥

पुरुषों ने शरीर धारण का यही जीवित फल है कि सुन्दर नितम्बावाली स्त्री के सम्भोग से उनका यौवन व्यतीत होता है ॥ ३२७ ॥

सुमनोमार्गणदहनज्वालावलिदह्यमानसर्वाङ्ग्य ।
प्रबलप्रेमप्रवणा प्रमदा स्पृहयन्ति नाल्पपुण्येभ्य ॥ ३२८ ॥

कामदेव के बाणों की अग्नि से जलते हुए सम्पूर्ण अगों वाला—काम से पीडित, अतिशय प्रेम करनेवाली स्त्रिया भाग्य हीनों से प्रेम नहीं करतीं ॥३२८॥

एवमुपश्रुत्य वच समुवाच पुरन्दरात्मज सुहृदम् ।
मम हृदयादिव कृष्ट्वा गीतमिदं साधुनाऽनेन ॥ ३२९ ॥

इन वचनों को सुनकर सुदरसेन ने अपने मित्र को कहा—मेरे हृदय की बात चुराकर इसने कही है ॥ ३२९ ॥

जघन के आघात—'अथ जघनाभिघातमुच्छ्वेक्षमाणा गजवधूरिजघननया तरुन्तर-
मारूढवती'–मुद्राराक्षस ।

जिस प्रकार से हस्तिनी नायिका रति में दु साध्य होती है, उसी प्रकार वेश्या को भी सतोष नहीं होता ।

१ बालेति गीयते नारी यावद् वर्षाणि षोडश । तस्मात्परं च तरुणी यौवना प्रियता भवेत् ॥ तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात्पञ्चाशता भवत् । वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतात्सवर्जिता ॥ नागरसर्वस्व

कविने ठीक [illegible] कहा है—सौन्दर्यवल्लीव जिज्ञासाविष्टा तारुण्यसम्पन्नमनोहरश्री ।
समागतेयं विजनेऽभिलाषादुपेक्ष्यते केन विचक्षणेन ॥

तदनुसायकचकितां हारलतां हरिणशावतरलाक्षीम् ।
आश्वासयितुं यामो, गुणपालित किं विकल्पितैर्बहुभि: ॥ ३३०॥

इस लिये, हे गुणपालित ! हिरण के छौने के समान सुन्दर आँखों वाली, कामदेव के बाणों से पीडित हारलता को सान्त्वना देने के लिये चलें, बहुत सोच विचार करने से क्या लाभ ? ॥ ३३० ॥

अथ तत्र काऽपि गणिका गणयन्ती परिचितं हृतद्रविणम् ।
प्रविशन्तमेव मन्दिरमीर्ष्याव्याजेन निरुरोध ॥ ३३१ ॥

वेश्याहाट में सुन्दर सेन ने जो देखा उसका वर्णन—

जिसका धन खींच लिया गया ऐसे, निर्धन परिचित व्यक्ति का कोई गणिका अनादर करती हुई, ईर्ष्या के बहाने से उसे घर में घुसने से रोक रही है ॥३३१॥

काचिद्वञ्चकदत्तं लुण्डीकृतजीर्णवसनमवलोक्य ।
वेश्या निपीडति स्म प्रपाचये व्यर्थकर्तव्या ॥ ३३२ ॥

प्रात:काल में कोई वेश्या किसी धूर्त द्वारा लपेटकर दिये पुराने फटे वस्त्र को देखकर चिन्ता में पड़ी सोच रही है—कि सब किया व्यर्थ गया ॥ ३३२ ॥

दैवस्मृत्या पतितं दृष्टिपथं भग्नमूल्यविटमेका ।
ज्वलिता रुषा भुजिष्या जग्राह जवेन धावित्वा ॥ ३३३ ॥

पैसा न दिये हुए धूर्त को भाग्य से सामने आया देखकर; कोई वेश्या क्रोध से जलती हुई जोर से दौड़कर पकड़ रही है[1] ॥ ३३३ ॥

अन्त:स्थितकामिगृहद्वारगतं लुप्तवित्तनरमन्या ।
समुवाच कुट्टनी व्रज कल्लोलाकल्पदेहेति ॥ ३३४ ॥

श्वेत धुले वस्त्र पहने, लुप्तवित्त (निर्धन) मनुष्य के द्वार पर आने पर; कोई वेश्या उसे यह कहकर चकमा दे रही है कि अब तो जाओ, दूसरा आदमी अन्दर बैठा है ॥ ३३४ ॥

प्रकटितदशननखक्षततिरभिदधती राजपुत्ररतियुद्धम् ।
अपरा पुर: सखीनां वारवधूराततान सौभाग्यम् ॥ ३३५ ॥

कोई वेश्या दूसरी सखियों के सामने राजपुत्र के साथ किये रतियुद्ध में लगे दन्त और नखों के प्रहारों को दिखाकर अपने सौभाग्य की प्रशंसा कर रही है ॥ ३३५ ॥

१· इसी से कहा है—उत्कोच-घूस, पारितोषिक-इनाम, भाट-सुभाषित भाट की सदुक्ति, परार्थ-दूसरे के लिये धन, चौर्यांश-चोरों का भाग, इनको तुरन्त ही ले लेना चाहिये, पीछे नहीं मिलते ।

अन्या कामिस्पर्धावर्धितभाटी समुत्सुका चण्डी।
सौभाग्यगर्वदर्पं समुवाह विलासिनीमध्ये ॥ ३३६ ॥

कामिजनों की होड से बढे मूल्य के कारण पैसा लेने में उतावली, कोई वश्या वेश्याओं के बीच म अपने सौभाग्य का घमण्ड कर रही है ॥ ३३६ ॥

एकगणिकानुबन्धक्रोधोद्धतशस्त्रकामिनौ काऽपि।
सम्भ्रमतो धावित्वा निवारयामास कुट्टनी कलहम् ॥ ३३७ ॥

एक ही वश्या में नम्बर लगा होने स (देर होती देखकर) क्रोध के कारण पागल बनकर, शस्त्र निकाल कर, परस्पर लडते हुए दो कामुकों को कोई कुट्टनी भयसे दौडकर हटा रहा है ॥ ३३७ ॥

धनमाहृत्य बहुभ्यो भुज्यत एकेन केनचित्स्वार्थम्।
इति धनवन्तं कामिनमावर्जयति स्म काऽपि वारवधूः ॥ ३३८ ॥

कोई वश्या बहुतों स धन लेकर किसी एक के साथ म [जिसस मन लगा है उसके साथ म] भोग कर रही है। कोई वश्या धनी कामी पुरुष की खुशामद कर रही है—उसे अनुकूल कर रही है ॥ ३३८ ॥

गायन्मात्रागाथा द्विपदिकया सौष्ठवेन विट एकः।
बभ्राम पुरो दास्या विदग्धविकृतीरनेकविधाः ॥ ३३९ ॥

कोई विट[1] सस्वर द्विपदिका, मात्रा गाथा (छन्द विशेष) गाता हुआ, नाना प्रकार की भावभंगियाँ बनाते हुए, दासी के सामने घूम रहा है ॥ ३३९ ॥

कश्चित्पण्यक्षीणो विभवोपचितान्यपुरुषयोजनया।
विदधाति स्माराधनमधनत्वमुपागतः कामी ॥ ३४० ॥

कोई निर्धन बना मनुष्य कामी एवं धनी पुरुषों को वेश्याओं के साथ मिला कर मुफ्त में रति प्राप्त कर रहा है ॥ ३४० ॥

त्वयि सक्तेन मया गृहमुज्झितमधुना परेव जाताऽसि।
इति ढौकमलभमानः कश्चिद् गणिकामुपालेभे ॥ ३४१ ॥

तेरे कारण से ही तो मैंने घर छोडा, अब तू पराई बन गई—इस प्रकार कोई पुरुष वेश्या को उपालम्भ दे रहा है ॥ ३४१ ॥

---

1 विट—भक्षितनिजबहुविभवा परविभवक्षपणदीक्षिता पश्चात्।
अनिशं वेश्यावेश स्तुतिमुखा सुखा विटाश्चिन्त्या ॥
कलाविलास क्षेमेन्द्र कृत।

मात्रा द्विपदी—शुद्धा खण्डा च मात्रा च सम्पूर्णेति चतुर्विधा।
द्विपदी करणाध्येन तालेन परिगीयते ॥ भरत-नाट्यशास्त्र।
स्वप्नवासवदत्ता में द्विपदी का उल्लेख आया है।

उपितामपरेण सम वृद्धविटाना पुर पराजित्य ।
त्याजयति स्म भुजग कश्चिद् गणिका द्विगुणभाटीम् ॥ ३४२ ॥

किसी वेश्या ने पहले एक कामी से मूल्य लेकर पीछे से दूसरे के साथ समय बिताया। इसकी शिकायत पहले कामी ने वृद्ध विटों की पचायत के सामने की। उनके निर्णयानुसार दण्ड रूप वेश्या से दुगना मूल्य पहले कामी को मिला ॥३४२॥

दृष्ट्वा त्वया विरोपक वलयकलापी शशिप्रभाभुजयो ।
याढ भण भण कीदृक् कानु तर सोमया दत्त ॥ ३४३ ॥

विटों की परस्पर बातचीत—शशिप्रभा की बाहुओं में वलयकलापी—आभूषण देखकर एक विट दूसरे विट से पूछ रहा है कि ऐसा आभूषण कहाँ से और कब लाकर तुमने सोमा वेश्या को दिया है, सच कहो, बोलो[1] ॥३४३॥

अथ चतुर्थो दिवसश्चीनाम्बरयुगलस्य दत्तस्य ।
तदपि परुषाभिधाना वद मदनक किं करोम्यत्र ॥ ३४४ ॥

आज चार दिन हो गये चीनाशुक (चीन देश की रेशमी) का जोडा दिये, परन्तु हे मदनक ! वह निष्ठुर अभी तक भी सीधी नहीं होती–अनुकूल नहीं होती, बोल क्या करूँ[2] ॥३४४॥

स्नेहपरा मयि केली, कलहसक, किन्तु राक्षसी तस्या ।
माता नात्मीकर्तुं वर्षशतेनापि शक्यते पापा ॥ ३४५ ॥

हे कलहसक ! केला तो मुझे चाहती है, परन्तु उसकी राक्षसी माँ एक सौ साल में भी अपनी नहीं की जा सकती—नहीं पसीजती ॥३४५॥

सुमन कुसुमवास सज्जीकुरु किमिति तिष्ठसि विचिन्त ।
अद्य तव दयितिकाया किञ्जल्क नर्तनावसर ॥ ३४६ ॥

हे किंजल्क ! फूल और केसर से सुवासित वस्त्र को तैयार करो, क्यों निश्चित बैठे हो, आज तेरी दयितिका [प्यारी] के नाचने का अवसर है–प्रोग्राम है ॥३४६॥

यदि नाम पच दिवसास्त्वयि कुर्ते प्रेम धनलवं दृष्ट्वा ।
तदपि न रागवती सा, वन्दर्पक कि वृथा गर्व ॥ ३४७ ॥

---

1. वलयकलापी—कनककलापी कटक तथा स्यात्प्रपूरकम् ।
   खर्जूर कासापितिक बाहुनालविभूषणम् ॥
   भरत नाट्यशास्त्र २३।२८

2. मृच्छकटिक में भी आता है—
   कौमिविंमानिता कापुरुषाणो विवर्धते मदन ।

हे कन्दर्पक ! तुम्हारे थोड़े से धन को देखकर यदि वह पाँच दिन से तुम्हारे साथ प्रेम करने लगी है, तो भी वह तुम पर रीझी नहीं, क्यों झूठा घमण्ड करते हो[1] ॥३४७॥

जीवन्नेव विलासक परिहर दूरेण मूढ हरिसेनाम् ।
बद्धावेशास्तस्यां व्यापृतपुत्रो महाविषमः ॥ ३४८ ॥

हे विलासक ! अपना कुशल चाहते हो तो दूर से ही हरिसेना की देहली छोड़ दो। उससे प्रेम करने वाला व्यापृत का पुत्र बहुत ही बुरा है—मार डालेगा ॥३४८॥

केसरया क्षणदत्तं कृत्वांशुकमुपरि कामिजालस्य ।
स्तब्धग्रीवं भ्रमतश्चन्द्रोदयं पश्य माहात्म्यम् ॥ ३४९ ॥

जन्मदिवस या होली आदि किसी उत्सव में मिले वस्त्र को ऊपर दुपट्टे के रूप में ओढ़कर केसरा नाम की वेश्या गर्दन को ऊँचा करके (घमण्ड के साथ) कामी जनों के सामने घूम रही है। चन्द्रोदय के समान उसका माहात्म्य देख (जिस प्रकार चन्द्रोदय के देखने का माहात्म्य है, उसी प्रकार इसके देखने का भी माहात्म्य है) ॥३४९॥

कौमारकं विहन्तुं रतिसमये मदनसेनायाः ।
इच्छामि किन्तु तस्या मात्राऽतीव प्रसारितं वदनम् ॥ ३५० ॥

मदनसेना के साथ प्रथम समागम करके उसका कौमार्य तोड़ना (नथुनी उतारना) चाहता हूँ। किन्तु उसकी माता बहुत मुँह बा रही है—धन माँगती है ॥३५०॥

विभ्रम कियतस्तपस. फलमेतद्यदुपभुज्यते मदिरा ।
स्वकरेण पीतशेषा मदघूर्णितमदनसेनया दत्ता ॥ ३५१ ॥

मद्यपान से उन्मत्त बनी मदनसेना के; अपने हाथ से, पीने से बची दी हुई मदिरा; जिन्हें पीने को मिलती है; उनका यह विभ्रम-मद्यपान बड़े भारी तप का फल है[2] ॥३५१॥

---

1. वेश्या और लतापल्लव एक समान हैं—

वेश्यालताः सरागं पूर्वं तदनु प्रक्षीणमनुरागम् ।
पश्चादपगतरागं पल्लवमिव दर्शयन्ति निजचरितम् ॥

२. मद्यपान—रति के पूर्व और पश्चात् दोनों समय करने का उल्लेख है—
यथा—प्रावारयंश्च रतिषु विलसन्मन्मथश्री विलासा

होमस्पृक्शमनुपाधाः शीधवश्चकुरासाम् ॥ माघ. ९।८
(ख) धरवनुवरप्रसंगतिसुगन्धितरं सरकं,
द्रुतमिव पद्मरागमणिभासस्वरूपधरम् ।
भवति रतिभ्रमेषु च मदः पिबतोऽल्पमपि ;
क्षयमत ओजसः परिहरन न शयीत परम् ॥ अष्टांगहृदय ७।८८

कुवलयमालानिलयो लीलोदय किमिति सम्प्रति त्यक्तः।
किं विदधामस्तस्मिन्भ्रातर्दास्या विना मूल्यम् ॥ ३५२ ॥

हे लीलोदय ! कुवलयमाला के घर जाना क्यों छोड़ दिया। हे मित्र ! पैसे के बिना उस चेटी के यहाँ क्या करूँ ॥३५२॥

मुषिताशेषविभूतेरिन्दीवरकस्य यामिनी याति।
संवाहयतः सम्प्रति मंजीरक तिलकमंजरीचरणौ ॥ ३५३ ॥

हे मंजीरक ! इन्दीवरक की सम्पूर्ण सम्पत् को खींचकर और उसे अपना दास बनाकर, सारी रात उससे पैर दबवाते हुए तिलकमंजरी रात बिताती है ॥३५३॥

अद्यापि बालभावं निखिलं न जहाति बालिका तदपि।
प्रौढिम्ना मकरन्दक सकला ललना अधः कुरुते ॥ ३५४ ॥

आपस में चेटियों की बातचीत—

बालिका नाम की वेश्या तो आज भी बालिका बनी हुई है, फिर भी; हे मकरन्दक ! वह अपने प्रौढ भाव से सब स्त्रियों को नीचा दिखाती है' ॥३५४॥

कुब्जे गत्वा वदयसि तं निर्दयचित्तनर्तनाचार्यम्।
हारा सुकुमारतनुः किमियं सम्मर्दकारिता भवताम् ॥ ३५५ ॥

हे कुब्जे ! उस कठोर मन वाले नर्तनाचार्य को जाकर कहो कि यह हारा—अति कोमल शरीर का है, इसको तुमने क्यों मारा, अथवा अधिक शिक्षा देकर क्यों दुःखी किया ॥३५५॥

(ग) 'आम्रकूटे मधुरतिकूटम्'—मेघदूतः १।५

(घ) 'रतिकाले सुखं प्रौढा यद्भावान्ते सुनाम ॥'

१. क्षेमेन्द्र ने कहा है—

क्लीबस्य यरयास्ति न भोगसंरम्भ किं भुजिष्या भवने करोति।
यस्य हस्ते तरन्तुरगमस्ति स किं समारोहति नाकमेव ॥

समयमातृका–२।८९

(ख) पूनामकिमनागीका याऽन्या वारसुन्दरीवोऽयाम्।
कार्याकरण्डवोऽयाः कौलेयस्यापि कोऽपि सम्बन्धः ॥ (कौन्तेय कृपा)

२. प्रौढा-प्रगल्भा के भेद—स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नतादरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायिका ॥

सा० द० ३।६०

(ख) 'प्रौढा दयितवक्षोदुर्गं पदार्थालिङ्गं विदुः'—

निःसारोऽभिनिवेशः शुकशावकपाठने सुरतदेवि ।
तिष्ठति बहिरुपविष्टः प्रतीक्षमाणस्तव प्रेयान् ॥ ३५६ ॥

हे सुरत देवि ! इस तोते के बच्चे को पढ़ाने में मनोनियोग करना व्यर्थ है । तेरा प्रेमी तेरी प्रतीक्षा में बाहर बैठा है ॥३५६॥

वीणावादनखिन्ना पतिताऽऽस्ते वासभवनपर्यङ्के ।
उत्थापय ता त्वरितं स्मरलीला मत्त आयातः ॥ ३५७ ॥

स्मरलीला वीणा बजाने से थक कर घर में पलंग पर पड़ी है, दासी ! उसको जल्दी से उठा, उसका प्रेमी मत्त (नाम है) आया है ॥३५७॥

किमिदं यथास्थितत्वं तव माधवि यन्मुहुर्वदन्त्या मे ।
परिधत्से नाभरणं श्रीविग्रहराजसूनुना दत्तम् ॥ ३५८ ॥

नायिका के प्रति माता का कहना—हे माधवि ! तुझे क्या हो गया, मेरे बार बार कहने पर भी तू श्री विग्रहराज पुत्र के दिये आभूषणों को नहीं पहन रही है ॥३५८॥

ईदृक्शून्यमनस्त्वं किं कुर्मो मातरिन्दुलेखायाः ।
पानक्रीडासक्त्या पतिताऽपि न चेतिता कनकताडी ॥ ३५९ ॥

कामुक को सुनाते हुए, दासी का माता को कहना—"इन्दुलेखा की माँ ! हम क्या करें—तू तो ऐसी लापरवाह है कि पानक्रीडा में—मद्यपान में लगी होने पर तूने गिरती हुई कनकताडी-सोने की तगडी का भी ख्याल नहीं किया" ॥३५९॥

नकुलः पयो न पायित इति रोषवशादियं हि दुःशीला ।
नाभाति कामसेना पुनः पुनः प्रार्थ्यमाना ॥ ३६० ॥

चेरी का कामी को सुनाकर माता को कहना—तूने नेवले को दूध नहीं पिलाया, इससे गुस्सा होकर बार-बार कहने पर भी (खुशामद करने पर भी) कामसेना नहीं आ रही है ॥३६०॥

श्रीबलसुतपरिपालितं ऋणायुः किमनया विनेतव्यः ।
मुकुला मुक्तमुखाग्धिविरहनिशा मेषपापणे लग्ना ॥ ३६१ ॥

श्रीबल के पुत्र से पाला हुआ मेढ़ा क्या इसने अवश्य जीतना है, जिससे मुकुला सब प्रकार के मुखों को छोड़कर रात दिन मेढ़े के पालन में लगी है ॥३६१॥

आतामतामुपगतमुन्दून करतलं च तव ललिते ।
मा पुनरतिचिरमेव प्रणिधास्यसि कन्दुकक्रीडाम् ॥ ३६२ ॥

कामी के प्रति माता का वचन—

हे ललिते ! गेंद खेलने से तेरा हाथ लाल हो गया और सूज भी गया। इसलिए बहुत देर तक गेंद खेलना छोड़ दो[1] ॥३६२॥

अभिराम कनकभाटी प्रथममियं गृह्यते, समुत्पन्ने।
स्नेहे तु कुसुमदेव्यास्त्वं प्रभवसि जीवितस्यापि ॥ ३६३ ॥

कामी के प्रति माता का कहना—प्रथम मिलन में सोने का शुल्क—(अधिक पैसा) लिया जाता है, पीछे स्नेह उत्पन्न हो जाने पर तुम कुसुम देवी के जीवनधन हो जाओगे ॥३६३॥

ग्रहणकमर्पय तावद्यदि कौतुकमुपरि चन्द्रलेखायाः।
निर्वर्तितकर्तव्यो दास्यसि निचितयथाभिमतम् ॥ ३६४ ॥

चन्द्रलेखा के ऊपर यदि मन लगा है, तो पहले ग्रहणक (पुरस्कार या रति मूल्य) दे दो। समागम कर चुकने के पीछे (काम हो चुकने के पीछे) जो इच्छा हो वह फिर दे देना ॥३६४॥

न परमदाता मातः सूनुरसौ वासुदेवभट्टस्य।
निर्लज्जः शठवृत्तिः पुनः पुनर्वार्यमाणोऽपि ॥ ३६५ ॥

क्षपयति वसनानि सदा हठेन सकलानि सुरतसेनायाः।
न ददात्येकामूर्णामूरणः परमत्ति कार्पासम् ॥ ३६६ ॥ (युग्मम्)

वासुदेव भट्ट का यह लड़का बहुत देने वाला नहीं है (थोड़ा देता है), बार-बार घर से निकालने पर भी नहीं निकलता, बड़ा हठी और निर्लज्ज है। सुरतसेना के सब वस्त्रों को जबर्दस्ती खींचता है, इसलिए हे माता! इसे किसी प्रकार से निकालो। भेड़ा ऊनका एक रोंया तो देता नहीं, परन्तु रोज कपास खाता है (बिनौले खाता है[2]) ॥३६५-६६॥

भगिनि न मुञ्चति वेश्म क्षणमपि पट्टराजपुत्रोऽसौ।
भग्नान्यनरावसरो, नग्नेनाधिष्ठितं तीर्थम् ॥ ३६७ ॥

१—कन्दुकक्रीडा का वर्णन दशकुमारचरित के छठे उच्छ्वास में है।

२—शठ—वाचैव मधुरो यस्तु कर्मणा नोपपादयेत्।
योषितो कश्चिदप्यर्थं स शठः परिकीर्तितः॥
निर्लज्ज—वार्यमाणो दृढतर यो नारीमुपसर्पति।
सचिह्नः सापराधश्च स निर्लज्ज इति स्मृतः॥
भरतनाट्य-शास्त्र—३१।८८, २०१.

अप्रागल्भ्यं व्यसनं, धैर्यमकार्यं, विवेक उपचारः ।
क्षेपणमगुणो यस्मिंस्तत्सुरतं प्रस्तुतं साध्याम् ॥ ३८७ ॥ (कुलकम्)

चण्ड वेग काम के जो योग्य था, अनुराग प्रीति के लिए जो उचित था, युवावस्था के कारण जो सुन्दर था, जीवन का जो फल था–परमानन्द जो था[1], अविनय ही जिसमें शोभा है, अश्लील आचरण ही जिसमें अतिशय प्रशंसनीय है, निर्भयता ही (ढीठपन ही) जहाँ सौष्ठव गिना जाता है, चञ्चलता (एक स्थिति में स्थिर न रहना) ही जहाँ पर गौरव माना जाता है, जहाँ पर केशों का पकड़ना-खींचना ही अनुग्रह है,[2] ताडन-करघात ही उपकार है, दाँतों से काटना—हर्ष आनन्द के लिए है, कुच, नितम्ब आदि पर नखों से विलेखन उन्नति का कारण है, शरीर का निपीडन–जोर से दबाना ही जहाँ प्रशस्त है[3], अतिशय चाह के साथ चुम्बन अथवा मुख से बाहर आई जिह्वा का चुम्बन, निर्दयता के साथ अंगों का दबाना, नायिका के शरीर में प्रविष्ट होने की इच्छा (उससे मिलकर एक हो जाना), दृढ़ता से आलिंगन जिसमें रहता है,[4] जिस

---

१ सौन्दर्यं प्रीतिसरसिरुहकन्दरेणोऽथ यौवनम् ।
पदैकमनुरागाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

२. कचग्रहण का उल्लेख पञ्चसायक एवं अनङ्गरङ्ग में ही मिलता है—अन्यत्र नहीं देखने में आया । अनङ्गरङ्ग में—
स्निग्धा घना कुञ्चितनीलवर्णा केशा ग्रहीतव्यास्तरुणीजनानाम् ।
प्रेमप्रवृद्ध्यै विधिनैव मन्द प्राज्ञा नरैश्चुम्बनदानकाले ॥ ९।३०

३. हास्यैर्वचोभिर्घनमुष्टिघातैर्नखक्षतैर्दन्तनिपीडनैश्च ।
विश्वासवाचः भणितैः प्रसिद्धैर्वशं नयेत प्रियवाक् प्रगल्भाम् ॥
शृङ्गारदीपिका ॥९०

बाहुपीडनकचग्रहणाभ्यामाहतेन नखदन्तनिपाते ।
बोधितस्तनुशयस्तरुणीनामुन्मीलविशदविषमेषु ॥ माघ १०।१२

कचग्रहमनुग्रहं, दशनखण्डनं मण्डनं, दृगञ्जनमवञ्जनं मुखरसार्पणं तर्पणम् ।
नखार्दनमसर्दनं दृढमपीडनं पीडनं, करोति रतिसंगरे मकरकेतनः कामिनाम् ॥

४ जिह्वाचुम्बन का भी उल्लेख नैषध में मिलता है—
'प्रसृत न त्वया सावधम्मोहनविमोहित ।
अतृप्तोऽधरपानेषु रसनामपिब तव ॥' २०।७८

आलिंगन में—क्षीरजलकाख्यालिंगन का उल्लेख है—जिस प्रकार से दूध और पानी मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार से नायक नायिका के शरीर में एक हो जाना चाहता है—
'भावासक्ता कामुका कामिनीवामिच्छन्त्यङ्गे नम्मसीव प्रवेष्टुम् ।'

सम्भोग को बहुत से अनङ्गों ने किया (एक से करना असम्भव था), बहुत से रागों ने जिसे परम उत्कर्ष पर पहुँचाया, प्रेमों ने जिसे निश्चल बनाया, शृङ्गारों ने जिसे विकसित किया, लज्जा आदि से अप्रागल्भ्य धृष्ट न होना ही जिसमें व्यसन-दूषण है, धैर्य-पीडा आदि का सहन करना ही जिसमें अकार्य-कुकर्म होता है, विवेक-कर्त्तव्य अकर्त्तव्य विचार ही जिसमें उपघात कार्य का नाश करने वाला है, ह्रेपण-लज्जा करना-शर्माना ही जिसमें दोष होता है, ऐसा सुरत सम्भोग सुन्दरसेन और हारलता ने प्रारम्भ किया ॥३७५-८०॥

प्रारम्भ एव तावत्प्रज्वलितो धगिति मनसिजो यस्मिन् ।
तस्य विशेषावस्था वक्तुमशक्या प्रवृद्धस्य ॥ ३८१ ॥

जिस सम्भोग में काम प्रारम्भ में ही धग् धग् शब्द के साथ (आग का शब्द) जल गया, उसके बढने पर उसकी अवस्थाओं का वर्णन करना असम्भव है ॥३८१॥

सहजरसेन जडीकृतमिति यूनोः कामशास्त्रनिर्णीते ।
नानाकरणग्रामे लालित्यमवाप पाण्डित्यम् ॥ ३८२ ॥

सहजरस-शृंगार रस से कुण्ठित होने पर हारलता और सुन्दरसेन दोनों का कामशास्त्र से अनुमोदित पाण्डित्य नाना प्रकार के रतिबन्धों में (अनेक प्रकार के रतिबन्धों में) मनोहर बन गया ॥३८२॥

अभिधेयमनार्येयं प्रविचार्यं च्छादनीयमविषह्यम् ।
न बभूव तयोस्तस्मिन्नारब्धे सुरतपरिमर्दे ॥ ३८३ ॥

सम्भोग के आरम्भ होने पर उनके लिए अकथनीय कुछ नहीं रहा, सोच विचार का प्रश्न नहीं रहा, गोपनीय कुछ नहीं बचा, सुनने या सहने अयोग्य कुछ नहीं था ॥३८३॥

अत्यभ्यस्ता याऽन्या सुरतवधौ विविधचाटुपरिपाटी ।
तामालूनविशीर्णां चकार सहजः स्मरावेगः ॥ ३८४ ॥

अनेक प्रकार से खुशामद करने का जो ढंग अभ्यस्त बहुत प्रकार से सफल बना था (अथवा अनेक प्रकार से खुशामद करने की जो रूप रेखा मन में पहले से सोची थी), उसको स्वाभाविक—अकृत्रिम कामवेग ने छिन्न भिन्न बना दिया, तोड़ दिया ॥३८४॥

सद्भावरागदीपितमदनाचार्योपदिष्टचेष्टानाम् ।
कः परिगणनं कर्तुं रतिधर्माविष्टमनसयोः शक्तः ॥ ३८५ ॥

सदभिप्राय और प्रेम से उत्साहित काम ही कथित चेष्टाओं का अध्यापक है। रतिचक्र—सम्भोग में लगे स्त्री पुरुष की चेष्टाओं को कौन गिना सकता है[1] ॥३८५॥

बाला मृदुगात्रलता दृढपुरुषाक्रान्तविग्रहा न पराम्।
न व्यथिता, मुदमाप, प्रभवति खलु चित्तजन्मन शक्ति. ॥३८६॥

कोमलांगी बाला भी दृढ पुरुष द्वारा शरीर के पीडित करने पर भी जो पीडा का अनुभव नहीं करती, अपितु उल्टा प्रसन्न होती है, यह कामदेव की शक्ति का ही प्रभाव है[2] ॥३८६॥

किं रमणी रमणोऽविशदुत रमण सा न जानीम।
स्वावयवावगमस्त्वप्रकाशमगमत्तयोस्तदा निपुणम् ॥ ३८७ ॥

उनके परस्पर सम्भोग से यह भी पता नहीं चला कि नायिका में नायक मिल गया अथवा नायक में नायिका मिल गई। उनमें अपने अपने अंगों का ज्ञान भी नहीं रहा, अंगों का ज्ञान बहुत बारीकी से देखने में समझ में आता था। इस प्रकार से उन दोनो मे देहसायुज्यरूप अद्वैत हो गया[3] ॥३८७॥

---

१ आचार्य का लक्षण—उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विज।
साङ्गञ्च सरहस्य च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ मनु० २।१४०

कामशास्त्र में कहा है—शास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नरा।
रतिचक्रप्रवृत्तस्य नास्ति शास्त्रं न च क्रम ॥ २ १.

नास्त्यत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रहः।
प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र कारणम् ॥

स्वप्नेष्वपि न दृश्यन्ते ते भावास्ते च विभ्रमाः।
सुरतव्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षणकल्पिता. ॥
कामसूत्र २।७

२. (क) या सा चन्दनपङ्कमङ्गपतितं भारं गुरुं मन्यते,
सुप्ता कोमलपद्मपत्रशयने खेदं परं गच्छति।
सा सर्वाङ्गभरं प्रियस्य सहते केनाऽप्यहो हेतुना,
चित्रं पश्य किमत्र चित्रमथवा कामस्य किं दुष्करम् ॥

(ख) इसी से किसी कवि ने कहा है—'अचिन्त्यशक्तिर्भगवाननङ्गः।'

३. अमरुक का पद्य इस सम्बन्ध में है—
आश्लिष्टा रभसाद् विलीयत इवाक्रान्ताऽप्यनङ्गेन या,
यस्या· कृत्रिमचण्डवस्तुकरणाकूतेषु खिन्नं मन।
कोऽयं काऽहमिति प्रवृत्तसुरता जानाति या नान्तरं,
रन्तु सा रमणी स एव रमणः शेषौ तु जायापती ॥

तस्या निमीलितदृशो निस्पन्दतनोर्बभूव सुरतान्ते ।
लिंगमनंगच्छाया जीवितसत्तानुमानस्य ॥ ३८८ ॥

सम्भोग तृप्ति का वर्णन—सम्भोग के पीछे उसकी आँखें बन्द हो गईं, शरीर में निस्पन्दता आ गई (शरीर निश्चल-मृत की भाँति हो गया), शरीर में व्याप्त काम जन्य कान्ति ही उनके जीवित होने का प्रमाण था, उससे ही जीवित होने का अनुमान होता था[1] ॥३८८॥

श्रमजलबिन्दूपचिता वृत्तस्मरणेन जातवैलक्ष्या ।
सा शुशुभे विपरीतपर्याकुलकेशाभूषणा नितराम् ॥ ३८९ ॥

विपरीत रति के कारण पसीने में स्नान की हुई, पुरुषायित रति को स्मरण करके लज्जित, बिखरे हुए बालों से वह अतिशय शोभित हुई[2] ॥३८९॥

निर्व्याजार्पितवपुषोर्निर्वृतिमयमेव गणयतोर्विश्वम् ।
क्षणदा विरराम तयोरक्षीणाकांक्षयोरेव ॥ ३९० ॥

किसी छल या वञ्चना के बिना परस्पर शरीर का अर्पण करते हुए, संसार को सुखमय—आनन्दरूप मानते हुए, उन दोनों की आकांक्षा के अपूर्ण रहने पर ही (अतृप्तावस्था में ही) रात्रि समाप्त हो गई[3] ॥३९०॥

मोहनविमर्दखिन्ना विजृम्भमाणा स्खलद्गतिर्मन्दम् ।
निद्राकषायिताक्षी हारलता वासवेश्मनो निरगात् ॥ ३९१ ॥

(ख) सुरते निराकुलाऽसौ ध्रुवतामिव याति नायकस्याङ्गे ।
न च यत्र विवेकुमलं कोऽयं काऽहं किमेतदिति ॥ रुद्र. १२।१६

१. नारी विमुक्तकुसुमेषु बला रतान्ते, नृत्यं करोति बहुबन्धनरोदने च ।
वैवश्यमेति मुकुलीकृतचारुनेत्रा शक्नोति नो किमपि सोढुमतिप्रयासम् ॥
अनंगरंग ३।३१

(ख) 'प्रस्तरा बहुरि, मीलनं दृशोः, मूर्च्छना च रतिभावलक्षणम् ।'
रतिरहस्य १०।४४ (रतिभाव सुरततृप्ति);

२. जातश्रमं बोध्य पतिं पुरन्ध्री स्वेच्छावृता एव च रतेऽप्यतृप्ता ।
कन्दर्पवेगाकुलिता नितान्तं कुर्वीत पुंस्त्वं पुरुषायितं सा ॥ अनंगरंग १०।३१

३. इसमें भवभूतिका श्लोक प्रसिद्ध है—
किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगादविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥
उत्तररामचरित १।२७

तस्या निमीलितदृशो निस्पन्दतनोर्बभूव सुरतान्ते ।
लिंगमनंगच्छाया जीवितसत्तानुमानस्य ॥ ३८८ ॥

सम्भोग तृप्ति का वर्णन—सम्भोग के पीछे उसकी आँखें बन्द हो गईं, शरीर में निस्पन्दता आ गई (शरीर निश्चल-मृत की भांति हो गया), शरीर में व्याप्त काम जन्य कान्ति ही उनके जीवित होने का प्रमाण था, उससे ही जीवित होने का अनुमान होता था[1] ॥३८८॥

श्रमजलबिन्दूपचिता वृत्तस्मरणेन जातवैलक्ष्या ।
सा शुशुभे विपरीतपर्याकुलकेशाभूषणा नितराम् ॥ ३८९ ॥

विपरीत रति के कारण पसीने में स्नान की हुई, पुरुषायित स्थिति को स्मरण करके लज्जित, बिखरे हुए बालों से वह अतिशय शोभित हुई[1] ॥३८९॥

निर्व्याजार्पितवपुषोर्निर्वृतिमयमेव गणयतोर्विश्वम् ।
क्षणदा निरराम तयोराकांक्षाक्षयोरेव ॥ ३९० ॥

बिना छल या वञ्चना के बिना परस्पर शरीर का अर्पण करते हुए, संसार को सुखमय—आनन्दमय मानते हुए, उन दोनों की आकांक्षा के अपूर्ण रहने पर ही (अतृप्तावस्था में ही) रात्रि समाप्त हो गई[3] ॥३९०॥

मोहनविमर्दखिन्ना विजृम्भमाणा स्खलद्गतिर्मन्दम् ।
निद्राकषायिताक्षी हारलता वासवेश्मनो निरगात् ॥ ३९१ ॥

(ख) सुरते निरागुकाऽसौ द्रवतामिव याति नायकस्याङ्गे ।
न च पर विवेक्तुमलं कोऽयं काऽहं किमेतदिति ॥ रुद्र. १२।२२

1. नारी विपरीतसुरतेषु जाता रतान्ते, नृत्यं करोति बहुवल्गनरोदने च ।
वैक्लव्यमेति मुकुलीकृतचारुनेत्रा शक्नोति नो किमपि सोढुमतिप्रयासम् ॥
अनंगरंग ३।११

(ख) 'श्रान्तता वपुषि, मीलनं दृशोः, मूर्च्छना च रतिभावलक्षणम् ।'
रतिरहस्य १०।३४ (रतिभाव सुरतवृत्ति);

2. जातश्रमं वीक्ष्य पतिं पुरन्ध्री स्वेच्छावशाद् एवाथ रतोपरक्षा ।
कन्दर्पवेगाकुलिता नितान्तं कुर्वीत तुष्ट्यै पुरुषायितं सा ॥ अनंगरंग १०।२१

3. इसमें भवभूति का श्लोक प्रसिद्ध है—
किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगादविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥
उत्तररामचरित १।२७

सुरत जन्य पीन्न से थकी, जम्भाई लेती हुई, नींद के कारण लड़खड़ाती चाल से, आँखों में नींद भरी हारलता सम्भोग गृह से धीरे धीरे बाहर निकल गई ॥३६१॥

परिचितपार्श्वगताऽहं, तेन समं पानभोजनं कृत्वा ।
नीता निशा कथाभिर्मोहनकार्यं तु यत्किंचित् ॥ ३६२ ॥

निचली तरह आर्यों में वश्यावीथी की चर्चा का उल्लेख—

कोई नायिका कह रही है—मैंने अपने परिचित के बगल में बैठकर, उसके साथ में खान पान करके, बातचीत में ही सारी रात बिता दी, सुरत कार्य तो थोड़ा सा ही नाम मात्र का हुआ ॥३६२॥

अविदग्ध' श्रमकठिनो दुर्लभयोषिद्युवा जडो विप्र ।
अपमृत्युरुपक्रान्त कामिव्याजेन मे रात्रौ ॥ ३६३ ॥

दूसरी वश्या कह रही है—अविदग्ध (अचतुर), परिश्रम के कारण कठोर शरीर, स्त्रियाँ जिस दुर्लभ हैं इसी से अति बेचैन बना, युवा, मूर्ख कामी ब्राह्मण मृत्यु रूप से रात्रि में मेरे पास आया ॥३६३॥

नेच्छाविरति', क्षणमपि, न च शक्तिर्वस्तुशून्यरतियत्नै ।
केवलमलमथाहं कदर्थिता वृद्धपुरुषेण ॥ ३६४ ॥

तीसरी वेश्या कह रही है—वृद्ध पुरुष में सुरत की इच्छा एक क्षण के लिये भी कम नहीं होती थी, सम्भोग की शक्ति थी नहीं, सम्भोग शक्ति के प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न किये। आज तो इस बूढ़े ने सारी रात मुझे व्यर्थ में ही पीड़ित किया[१] ॥३६४॥

मद्यवशादभियोक्तरि मृतकल्पे तल्पभागमग्नायाः ।
अविरोधितनिद्राया सुखेन मे यामिनी याता ॥ ३६५ ॥

---

१ वृद्धरत वर्णन—यत्नोत्थापनमात्रनि सहजरच्चर्मावरोपश्चेत् ,
अश्यच्छेफसि दुःखांगवक्त्रन्यर्योद्यमालिंगने ।
लज्जाधायिनि विद्यमानयुवतौ वृद्धस्य कृच्छ्रे रते,
यस्यात् संप्रतिमान्य, किन्तु हसित युक्त क्रियारादितुम् ॥

(ख) बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शङ्का
काचिद् दृष्टा भ्रमरभरतो मञ्जरी भज्यमाना ।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुमध्य समस्तम् ॥

देश एवं स्वभाव का ज्ञान न होने के कारण किसी धूर्त एवं घमण्डी राजपुत्र से किये हुए व्यवहार की जो मजाक हमारी भाण्डों ने की, उससे हम बहुत दुःखी हैं ॥४००॥

प्रियसखि लोकसमक्षं नगरप्रभुणा हठेन नीताऽस्मि ।
एवं तु नो कदाचिद्विगुणार्थप्रार्थने कृतो न्यायः ॥ ४०१ ॥

हे प्रियसखि ! नगराध्यक्ष ने मेरी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती मुझे लोगों के सामने लाकर (पञ्चायत से न्याय की माँग करके) न्याय नहीं किया, अच्छा नहीं किया । इस प्रकार करके उसने मेरा अपमान किया ॥४०१॥

आकर्षन्ती जघनं व्रजसि यथा विलिखिता नखैस्तिलशः ।
मन्ये तथोपभुक्ता केरली केनापि दाक्षिणात्येन ॥ ४०२ ॥

नखों द्वारा अच्छी प्रकार से घसीटी हुई अपनी जघनों को खींचती हुई (कठिनाई से पैर उठा कर चलती हुई) चल रही है, इससे मैं अनुमान करती हूँ कि इस केरली (वेश्या) का किसी दाक्षिणात्य ने उपभोग किया है[1]॥४०२॥

अधरे बिन्दुः, कण्ठे मणिमाला, स्तनयुगे शशप्लुतकम् ।
तव सूचयन्ति केतकि कुसुमायुधशास्त्रपण्डितं रमणम् ॥ ४०३ ॥

हे केतकि ! तेरे अधर में बिन्दु दश, गले में मणिमाला, स्तनों पर शशप्लुतक, कामशास्त्र के पण्डित के साथ तेरे रमण को सूचित करता है[2] ॥४०३॥

---

१. दाक्षिणात्य—मगध से दक्षिण में, उत्कल देश के निवासी ने उपभोग किया, यथा—विपरीतरतामिलाषिणी गतलज्जा नखदानतोषिणी ।
निरतामनुरागशालिनी मदनार्त्ता कथितेयमुत्कली ॥ अनंगरंग ७।९

२. बिन्दु—अगले दाँतों से निचले ओठ पर किया क्षत, मणिमाला-दन्तावलि से निष्पादित दशनचिह्न पंक्ति, शशप्लुतक—नखविलेखन का एक भेद, यह नखविलेखन दीर्घकाल तक रहने वाला, परोक्ष में भी नायिका कामुक की क्रीडा स्मरण करती है—

अधरे तिलके च कामिना रदयुग्मेन विखण्डने कृते ।
इति बिन्दुरथोरितोऽखिलैर्दशनैः स्यात् किल बिन्दुमालिका ॥
अनंगरंग ९।१४

रेखाकृता सर्वनखैरधस्तादंगुष्ठमाधाय तु चूचुके या ।
मयूरपादं किल तं वदन्ति शशप्लुतं सर्वनखैः कुचाग्रे ॥
अनङ्गरङ्ग० ९।१७

'समैश्च सर्वैर्नखरैः सुषम्नैस्ताडैः किलोक्तं शशकप्लुताख्यम् ॥'
पञ्चसायक० ४।२३

कहाँ तो पुरोडाश (सोमरस या हवि) एवं वेद मन्त्रों की ध्वनि से परिचित तुम्हारा यह मुख और कहाँ मदिरा और आसव से वासित वेश्याओं के मुखों का पान[1], कहाँ कुशा-दर्भ के उखाड़ने में सहसा उत्पन्न होने वाली वेदना पीड़ा का चमत्कार और कहाँ वेश्याओं के साथ प्रेम युद्ध करने में प्रीति के लिये किये उनके निर्दय नख प्रहार[2], कहाँ गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि तीन अग्नियों के धूम से बहाये आँसुओं से धुला तुम्हारा मुख और कहाँ वेश्याओं से किये तिरस्कार के कारण शोक से व्याकुल आँसुओं से धुला यह मुख, कहाँ वषट्कार ध्वनि, विप्रोचित अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छः कर्मों से शोभित उपरोष[3], और कहाँ सामान्य वेश्या द्वारा रतिकाल में भणित (अव्यक्त ध्वनि) को सुनने की उत्सुकता, और कहाँ आचार्य द्वारा पतली लता द्वारा ताड़ना किये जाने पर सक्षोभ बेचैनी से होने वाला कम्पन और कहाँ कुपित धारवेश्या के निष्ठुर पाद प्रहार का सहन करना, कहाँ स्मृति एवं शास्त्र में बताये व्रतों को करते हुए हरिण चर्म-अजिन चर्म का प्रावरण[4] और कहाँ बाजारू स्त्री के धारण किये वस्त्र को धारण करने में अभिमान मानना, बचपन से ही समिधाओं के काटने का अभ्यास तुमने किया, अब धूर्त वनिताओं के ओठों के काटने का कौशल कहाँ से तुममें उत्पन्न हो गया ॥४१४-४२०॥

शुश्रूषणमेव गुरोः परिशीलितममलचेतसा सततम् ।
कुटिलमतयो भुजिष्या कथं त्वयाऽराधिता निपुणम् ॥ ४२१ ॥

निर्मल मन से गुरुओं की सेवा करने का ही अभ्यास तुमने बचपन से किया, अब कुटिल बुद्धि वाली वेश्याओं को प्रसन्न करने की कला कहाँ से प्राप्त की ? ॥४२१॥

आम्नायपाठ एव स्फुटतरपदसौष्ठव तव ख्यातम् ।
प्रकुपितवेश्यानुनये क्व शिक्षितं वचनचातुर्यम् ॥ ४२२ ॥

---

१. मदिरा से उन्मत्तता रहती है, आसव में उद्दीप्तता होती है, मदिरा मद बनाती है, आसव उद्दीपक है ।

२. उन्मत्त, चण्डवेगा या प्रौढ़ा रुष्ट होकर या प्रीति के लिये नायक के शरीर पर नखक्षत करती है ।

३. अध्ययन अध्यापन यजन याजन तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चापि षट्कर्माण्यग्रजन्मनः ॥ मनु० १०।७५

४. याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा है—
'दण्डाजिनोपवीतानि मेखलां चैव धारयेत् ।' १।१।२९.

वेद पाठ में पदों का स्पष्ट पाठ तुम्हारा प्रसिद्ध था, अब कुपित वेश्या को प्रसन्न करने में वचन चातुर्य कहाँ से सीखा ? ॥४२२॥

अथवा किं क्रियतेऽस्मिन्नवदातकुलेऽपि लब्धजन्मानः ।
सदसस्तुता भवन्ति प्रागुपचितकर्मदोषेण ॥ ४२३ ॥

अथवा क्या करें, इस शुद्ध निर्मल कुल में जन्म लेकर भी अपने पूर्व जन्म संचित कर्मदोष से सज्जनों द्वारा निन्दित होते हैं ॥४२३॥

त्वयि विनिवेश्य कुटुम्ब परलोकहितार्जनैकविहितास्थः ।
स्थास्यामीति समीहितमनुदिवसं, तद्विसंवदितम् ॥ ४२४ ॥

बहुत दिनों से सोच रक्खा था, किन्तु तुम्हारे ऊपर कुटुम्ब का भार छोड़ कर परलोक हित की प्राप्ति के लिये यत्न करूँगा, ऐसा प्रतिदिन सोचता था, यह सब अब असफल हो गया, व्यर्थ हो गया[1] ॥४२४॥

इत्यवगतलेखार्थे सुन्दरसेने विवेयसमूढे ।
आर्यामगायदन्य स्वावसरे गीतिपरिकलिताम् ॥ ४२५ ॥

इस लेख को पढ़कर सुन्दरसेन के कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निश्चय न कर सकने पर किसी ने इस अवसर पर गीति से पूर्ण होनेवाली आर्या गाई[2] ॥४२५॥

'विषयतिमिरावृतादृणामवटे पततामदृष्टमार्गाणाम् ।
पुंसां गुरुजनवचनद्रव्यशलाकाञ्जनं शरणम्" ॥ ४२६ ॥

विषयों के अन्धकार से घिरी आँखों के गर्त में गिरे हुए व्यक्ति को जब कोई रास्ता न मिलता हो, तब उसके लिये गुरुजनों के वचन ही शलाकाञ्जन का काम करते हैं ॥४२६॥

उद्वेजयति सदात्वे सुखसम्पत्तिं करोति परिणामे ।
कटुकौषधप्रयोगो गुरुनिगदितकार्यनिष्ठुरं वचनम् ॥ ४२७ ॥

ये वचन तत्काल में तो कँपकँपी उत्पन्न करते हैं, परन्तु परिणाम में सुख सम्पत्ति को देते हैं। गुरु से कहा कठोर वचन भी कटु औषध की भाँति कार्यकर होता है ॥४२७॥

लब्ध्वा वचसोऽवसरं मित्रमवादीत्पुरन्दरापत्यम् ।
पुनरपि न हि खिद्यन्ते प्रियजनहितभाषणे सन्तः ॥ ४२८ ॥

समय देखकर गुणपालित ने अपने मित्र सुन्दरसेन को कहा, प्रियजन के हितकारी बात कहने में सज्जन कभी भी दुःख अनुभव नहीं करते ॥४२८॥

---

१ 'पुत्रमुत्पाद्य, संस्कृत्य, वेदमध्याप्य, वृत्तिं विधाय, दारैः संयोज्य गुणवति पुत्रे कुटुम्बमावेश्य, कृतप्रस्थानलिङ्गो वृत्तिवशेषानुक्रमेत् ।' शङ्खलिखित-स्मृति,

२ प्रथम आर्या फिर गीति

अगणितसहचरवचसो दुर्व्यसनमहाब्धिमग्नवपुषस्ते।
मन्युव्यथितस्य पितुर्यदि परमवलम्बनं वचनम् ॥ ४२९ ॥

मित्र के वचनों की भी उपेक्षा करने, दुर्व्यसन रूपी बड़े समुद्र में डूबते हुए तेरे लिये दुःखित पिता के क्रोध में कहे वचन भी उत्तम सहारा हैं ॥४२९॥

निजवंशदीपभूत कृतचरितालंकृतो महासत्त्व।
सुन्दर सम्प्रति तातः स्पृष्टो दुष्पुत्रदोषेण ॥ ४३० ॥

अपने वंश के लिए दीपक बना, सज्जनों के आचरण से अलङ्कृत, महान प्रकृति, पिता भी आज कुपुत्र दोष से युक्त हो गया ॥४३०॥

पुत्राभावः श्रेयान्न कुसुतता पुत्रिणः कुलीनस्य।
अन्तस्तापयति भृशं सचरितकथाप्रसंगेन ॥ ४३१ ॥

कुलीन पिता के लिए यह अधिक अच्छा है कि उसके लड़का ही न हो, अपेक्षा इसके कि उसका लड़का बुरा हो। क्योंकि बुरा लड़का अपने व्यवहार से सदा हृदय को जलाता रहता है ॥४३१॥

सद्व्यवहारत एव प्रायो लोके गुणः सुगणनि यत।
येन तु सुतेन जननी वन्ध्यात्वं श्लाघते स पापीयान् ॥ ४३२ ॥

क्यों कि लोक में गुणों के व्यवहार से ही [दिखने से] गुण माना जाता है। इसीलिये पापी पुत्र होने की अपेक्षा माता का वन्ध्या होना अधिक उत्तम समझा जाता है[1] ॥४३२॥

विफलं शास्त्रज्ञानं, गुरुगृहसेवाऽपि नोपकाराय।
विषयवशीकृतमनसो न्याय्यं पन्थानमुत्सृजत ॥ ४३३ ॥

विषयों से वशीभूत मन वाले पुरुषों के न्याय मार्ग को छोड़ देने पर; शास्त्र ज्ञान भी विफल हो जाता है और गुरु-गृह का सेवा शिक्षा भी उपकार नहीं कर सकती ॥४३३॥

जीवन्नेव मृतोऽसौ यस्य जनो वीक्ष्य वदनमन्योन्यम्।
कृतमुखभंगो दूरात्करोति निर्देशमंगुल्या ॥ ४३४ ॥

वह मनुष्य जीता हुआ भी मरा हुआ ही है, जिसके मुख को देखकर दूसरे परस्पर दूर से नाना प्रकार के मुख बनाकर (टेढ़ा करके) अंगुली उठाते हैं ॥४३४॥

नोपनिहन्तुं विषया शक्याः सत्यं,तथापि निपुणधियः।
अभिधेयता न गच्छन्त्यपवादविशेषिताभिधानस्य ॥ ४३५ ॥

---

1. नापुत्रो विन्दते लोकान् कुपुत्राद् वन्ध्यता वरा।
कुपुत्रो नरको यस्मात् सुपुत्रः स्वर्गं एव हि ॥ हरिवंश पुराण.

यह सत्य है, कि विषय वासनायें रोके नहा की जा सकतीं, तथापि बुद्धि मान् मनुष्य निन्दा के डर से विषयों के अधीन नहीं बन जाते ॥४३५॥

गुरुपरिचर्या, जाया कुलोद्गता, स्निग्धबन्धुसम्पर्क ।
ब्राह्मे कर्मणि सक्तिर्लोकद्वयसाधनं सुधियाम् ॥ ४३६ ॥

गुरुजनों की सेवा, सत्कुल म उत्पन्न पत्नी, स्नेही मित्र का सम्पर्क, ब्राह्म कर्म—ब्राह्मण के करणीय कर्मों म आसक्ति लगाव, बुद्धिमानों के लिये ये कर्म इहलोक और परलोक दोनों को देने वाले हैं ॥४३६॥

सुलभा तस्य विभूतिस्तस्य गुणा यान्ति जगति विस्तारम् ।
बहु मनुते त सुजनस्तस्मै स्पृहयन्ति बान्धवा सततम् ॥ ४३७ ॥

इन कार्यों के करने वाले के लिये-सम्पत्ति सुलभ हो जाती है, उसके गुण ससार में फैलते है—सब उसका नाम याद करते हैं, सज्जन उसको बहुत आदर देते हैं, बान्धव सम्बन्धी जन सदा उससे मित्रता की चाह करते हैं ॥४३७॥

नासादयति स एक सत्सेवितमार्गत परिस्खलनम् ।
मण्डयति सोऽन्ववाय, स निवास शर्मणामशेषाणाम् ॥ ४३८ ॥

सज्जनो से सेवित मार्ग से जो नहा गिरता, वह अकेला ही अपने सारे वंश को (अगले पिछले वश को), शोभित करता है, सब प्रकार के शुभों का–सुखों का निवास स्थान है ॥४३८॥

स भवति विनयाधारो, युक्तायुक्ते विवेकिता तस्य ।
वृद्धोपदेशवाच श्रवणोदरपूरणा सदा यस्य ॥ ४३९ ॥
(विशेषकम्)

जो व्यक्ति सदा वृद्ध पुरुषों के उपदेशों को सुनता है, वह विनय शील होता है, सदा अच्छे बुरे कार्य का विवेक करता है, उसका सद् असद् विवेक ज्ञान सदा बना रहता है ॥४३९॥

प्राक्तनकर्मविपाक क्षुद्रासु शरीरिणा यदासक्ति ।
आयतन तु सुखाना ससारभुवा कुलोद्गता दारा ॥ ४४० ॥

वेश्याओं के शरीर मे जो आसक्ति होती है, यह पूर्वजन्म के कर्मों का ही फल है । ससार में उत्पन्न मनुष्यों के लिये सत्कुल में उत्पन्न स्त्रियाँ ही सुख का स्थान होती हैं ॥४४०॥

निर्विण्णे निर्विण्णा, मुदिते मुदिता, समाकुला कलिते ।
प्रतिबिम्बसमा कान्ता, सक्रुद्धे केवल भीता ॥ ४४१ ॥

विवाहित स्त्रियाँ ही पति के उदास होने पर उदास, प्रसन्न होने पर प्रसन्न, व्याकुल-बेचैन होने पर बेचैन-घबराई होती हैं, पति का प्रतिबिम्ब-छाया रूप होती हैं, परन्तु पति के कुपित होने पर केवल डरी होती हैं (कुपित नहीं होतीं)[1] ॥५४१॥

यावद्वाञ्छितसुरतव्यायामसहाऽनिरुद्धसंभाषा।
चित्तानुवृत्तिकुशला पुण्यवतामेव जायते जाया ॥ ५४२ ॥

पति की इच्छानुसार सम्भोग श्रम को सहने वाली (उससे कष्ट अनुभव न करने वाली), कभी प्रतिकूल न बोलने वाली, पति के चित्त के अनुसार बरतने वाली, पत्नी पुण्यशालियों को ही मिलती है[2] ॥५४२॥

सद्भावप्रेमरसं वलयारावैर्निगद्य शंसिता निभृतम्।
विदधानाङ्गसमर्पणमुन्मीलितकुसुमसायकाकूतम् ॥ ५४३ ॥
हाहा किमुद्धतत्वं, श्रोष्यति कश्चिद् गतत्रप, स्वैरम्।
निकटे परिवारजनो विस्मृत एव स्मरातुरस्य तव ॥ ५४४ ॥
इति हुंकृतिभिर्वलितैरायासनिवेदितार्थपदवाक्यैः।
द्विगुणीकरोति कुलजा नायककर्माणि मोहनप्रसरे ॥ ५४५ ॥
(कुलकम्)

कंगन-कण की ध्वनि से शङ्कित, निश्चल-चुपचाप निष्कपट भाव वाले प्रेमरस के साथ अपने अंगों का समर्पण करती हुई, विकसित काम के अभिप्राय को व्यक्त करती हुई, हा हा—यह कैसी उद्धतता दिखाई कर रहे हो, कोई सुनेगा, निर्लज्जता मत करो, धीरे से करो, पास में सम्बन्धी हैं, इसे भी कामावेश में तुमने भुला दिया, इस प्रकार के निरंतर हुंकार हुकारों से, प्रयत्न पूर्वक मनोगत भाव को लज्जा के कारण मुख से न कहकर अन्य रूपों से प्रकट करती हुई; कुलजा नायिका, नायक के सम्भोग में प्रवृत्त होने पर, उसके कार्यों में और भी बढ़ावा दे देती है[3] ॥५४३–५४४–५४५॥

---

१ हृष्टा हृष्टे विषण्णा स्याद् विषण्णास्ये सदाप्रिये।
प्रतिच्छायानुरूपा पुण्या सुखेषु च विपत्सु च ॥
२. आत्मा हि जायते यस्यां तेन जाया विदुर्बुधाः।
भर्ता तु भार्यया रक्ष्यः कथं जायान्तमोदरे ॥ महाभा विराट् ११।२१।२.
(ख) अनुकूलां विमलाङ्गीं कुलजां कुशलां सुशीलसम्पन्नाम्।
पञ्चलकारां भार्यां पुरुषः पुण्योदयाल्लभते ॥
३. जगति घोको भवति प्रदोष सत्यजन. परयति कौतुकेन।
मुहूर्तमात्रं कुरु कान्त धैर्यं मुमुक्षितः किं दिवसेष मुद्दके ॥

इत्थमुदीरितवाचं सुन्दमवोचत् पुरन्दरस्य सुतः।
समुपस्थितनीरसमाप्रियवियोगभयकम्पितो वचनम् ॥ ४४६ ॥

गुणपालित के इस प्रकार कहने पर सुंदरसेन ने प्राणप्रिया के वियोग को पास आया जानकर भय से कम्पित वचन कहा ॥४४६॥

तातादेशेऽलंघ्ये हारलताविरहपावके तीव्रे।
विधिवशवर्तिनि मरणे नो विद्मः कार्यपरिणामम् ॥ ४४७ ॥

पिता की आज्ञा अलंघनीय होने पर, हारलता के विरह की तीव्र अग्नि में, दैव भाग्य के अधीन मृत्यु होने पर कार्य का परिणाम कुछ ज्ञात नहीं—क्या होगा कुछ कह नहीं सकते ॥४४७॥

अनपेक्षितधनलाभा स्नेहैकनिबद्धमानसा दयिताम्।
दैवाकृष्टौ मुञ्चति घटितो वा लोहवज्रकणिकाभिः ॥ ४४८ ॥

अचानक बिना किसी आशा के धन की प्राप्ति तथा प्रेम से निबद्ध मतवाली प्रेयसी को दृढ वज्र कणिकाओं से घटित-संयोजित भाग्य (वज्र के समान कठिन हृदय वाला भाग्य) या तो आकृष्ट करता है मिलाता है अथवा त्याग करता है—अलग कराता है ॥४४८॥

अथ कृतगमनविनिश्चितिरभिमतरामां चकार विदितार्थाम्।
साऽपि तमनुवव्राज प्रस्तुतयात्रं शुचाऽऽकुलिता ॥ ४४९ ॥

सुंदरसेन ने अपने जाने का निश्चय हारलता को भी कह दिया। शोक से बेचैन हारलता भी उसके साथ यात्रा करने लगी ॥४४९॥

आसाद्य वटस्य तलं वाष्पपयःकणचिताक्षिपदमाग्राम्।
विघ्नितचरणविहारो हारलतामभिदधाति स्म ॥ ४५० ॥

वट के नीचे पहुँच कर, पलकों में आँसू भरे, चलना बन्द करके सुन्दरसेन ने हारलता को कहा ॥४५०॥

आ क्षीरवतो वृक्षादा सलिलाद्वा प्रिये प्रियं यान्तम्।
अनुयायादिति वचनं तेन त्वमितो निवर्तस्व ॥ ४५१ ॥

हे प्रिये! प्रिय के साथ यात्रा में क्षीरवृक्ष तक या पानी तक जाना चाहिये, इससे आगे नहीं, इसलिये तुम यहाँ से लौट जाओ[1] ॥४५१॥

---

1 अभिज्ञान शाकुन्तल में भी इस सम्बन्ध में कहा है—
आ उदकान्तात् स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य, इति श्रूयते।
तदिदं सरस्तीरम्। अत्र सन्दिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि। चतुर्थ अंक
नदीतीरे गत्वा गाप्टे क्षीरवृक्षे जलाशये।
आरामेष्वथ कूपादौ इष्टं बन्धुं विसर्जयेत् ॥ स्मृति

किं कुर्मो दैवहता, प्रभवति यस्मिन्कृशोदरि प्रसभम् ।
प्रेमग्रन्थिच्छेत्ता गुरुशासनसायको निरावरणः ॥ ४५२ ॥

हे कृशोदरी ! दैव के वशीभूत हम कर भी क्या सकते हैं, जब कि प्रेम की गाँठ को काटनेवाला पिता का आज्ञा रूपी अनुल्लंघनीय बाण बलवान् हो॥४५२॥

न द्रविणलवप्राप्तिर्नैकाश्रयपरिचयो न चाटुगुणः ।
न स्वामिसमादेशो नाकारविलोभनं न चात्यातिः ॥ ४५३ ॥
हेतुस्तव प्रवृत्तेरस्मासु, तथापि दैवयोगवशात् ।
ईदृक् कोऽप्यनुबन्धो यस्य विपाकः प्रतीकारः ॥ ४५४ ॥(युग्मकम्)

एक कौड़ी का भी लाभ नहीं, कहीं ठिकाना नहीं, न मीठा वचन, पिता आदि किसी का आदेश भी नहीं, न देखने में रूप का ही कोई आकर्षण और न कोई प्रसिद्धि, इस पर भी तेरा जो हम से स्नेह हुआ यह दैव का ही काम है, ऐसा कोई अनिर्वचनीय अनुबन्ध (दोषोत्पत्ति) है, जिसका यह अवश्यम्भावी परिणाम है[1] ॥४५३-४५४॥

परुषं यदभिहितासि प्रणयरुषा शंकितेन नर्मणि वा ।
सुदति न तत्स्मरणीयं दुर्भाषणकीर्तनोद्धाते ॥ ४५५ ॥

प्रणय कोप से, शङ्कित मन से या हास परिहास में मैंने यदि कभी कोई कठोर वचन कहा हो, हे सुदति ! दुर्भाषण कीर्तन के प्रसंग में उसका स्मरण न करना ॥४५५॥

तव हृदये हृदयमिदं विन्यस्तं, न्यासपालनं कष्टम् ।
यत्नात्तथा विधेयं स्थानभ्रंशो यथा न स्यात् ॥ ४५६ ॥

तेरे हृदय में यह हृदय रख दिया, धरोहर की रक्षा करना बहुत कठिन है, ऐसा यत्न करना जिससे यह स्थान भ्रंश न होने पाये[2] ॥४५६॥

अथ विरतवचोदयितं बाष्पभराश्लिष्टवर्णपदयोगम् ।
इति कथमपि हारलता संमूर्च्छितवर्णभारतीमूचे ॥ ४५७ ॥

क्षीरिवृक्ष—'न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारीषप्लक्षपादपाः । पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षाः'

१. उत्तररामचरित में—अथवा स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतद्-व्यतिषजति पदार्थानन्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते । विकसति पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥

२. सुखमर्थो भवेद्दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद्भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥ स्वप्नवासवदत्ता १।१०

भारी मन से सुन्दरसेन के इस प्रकार कह चुकने पर आँसुओं के भार से मिलित वर्ण एवं पदों वाले अस्पष्ट शब्दों में हारलता ने बड़ी कठिनाई से कहा ॥४५७॥

अविशुद्धकुलोत्पन्ना देहार्पणजीविका शठाचरणा।
क्वाहं रूपाजीवा, क्व भवन्त श्लाघनीयजन्मगुणा ॥ ४५८ ॥

अपवित्र कुल में उत्पत्ति शरीर समर्पण ही जीविका का साधन, धूर्तता का व्यवहार करने वाली कहाँ मैं वेश्या, और कहाँ उत्तम वंश में उत्पन्न आप ? ॥४५८॥

यत्त्व विषयविलोकनकुतूहलादागतोऽसि, विश्रान्त ।
इयतो दिवसानस्मिंस्तन्मम परजन्मसुकृतफलम् ॥ ४५९ ॥

विषयों के देखने के कुतूहल से आकर जो आप इतने दिनों तक रहे, यह मेरे पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही फल है ॥४५९॥

गुरुसेवा बन्धुजन स्वदेशवसति कलत्रमनुकूलम् ।
अनुपगदृष्टपरिचित आस्था प्रविधाय क परित्यजति ॥ ४६० ॥

पूज्य जनों की सेवा, मित्र-बन्धु, अपने देश में निवास, अनुकूल भार्या, इन सबको मामूली कारण से परिचित बने व्यक्ति में श्रद्धा करके, कौन पुरुष बिना विशेष कारण के छोड़ता है ॥४६०॥

यौवनचापलमेतद्यन्मादृशि भवति कौतुक भवताम् ।
यत्तु सुखमनवगीत तस्य स्थान निजा दारा ॥ ४६१ ॥

मुझ जैसी में आपकी जो चाह इच्छा हुई वह केवल आपका युवावस्था का चित्त-चाञ्चल्य ही है।[1] पुरुषों के लिए अनिंद्य सुख का स्थान तो अपनी विवाहित भार्या ही है ॥४६१॥

ते मधुरा परिहासास्ता वक्रगिर स वामतासमय ।
नो हृदये कर्तव्या रहसि समार्थिना भवता ॥ ४६२ ॥

वे मधुर-मीठे परिहास, व वक्रोक्तिया व्यंग्य, वह विपरीत आचरण, इनका

---

१ यथा मृच्छकटिक में—
'गणिका मम मित्रमिति। अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चरित्रम्।'
(९ वा अंक),

एकान्त में मन में विचार नहीं करना, ये सब आपके कुशल कल्याण की इच्छा से ही (प्रसन्न करने के लिये ही) किये थे[1] ॥४६२॥

लाघवतो यन्महतः प्रणयाद्वा साधु यस्त्वाचरितम् ।
प्रतिकूलं तत्र मया नाथांजलिरेष विरचितो मूर्ध्नि ॥ ४६३ ॥

क्षुद्रता के कारण अथवा अतिशय स्नेह वश के कारण से आपके प्रति यदि कोई अनुचित बर्ताव मुझसे हुआ हो, उसके लिये हे नाथ ! मैं सिर झुकाकर क्षमा चाहती हूँ ॥४६३॥

दुःसंचारा मार्गा दूरे वसतिर्विसंप्लुतं हृदयम् ।
गुणपालित तव सुहृदा भवितव्यमतोऽप्रमत्तेन ॥ ४६४ ॥

नीचे-ऊँचे या चोर-सर्पादि के कारण मार्ग चलने अयोग्य है, निवास स्थान-अपना देश दूर है, हृदय सदा शंकाशील है, हे गुणपालित ! तुमको सब मित्र की रक्षा में, सावधान रहना चाहिये[2] ॥४६४॥

हृदयद्वय एकत्वं याते यूनोर्वियोगजं क्लेशम् ।
अनुभवतोरपरेण प्रसंगतः पठ्यते पथ्या ॥ ४६५ ॥

हारलता और सुन्दरसेन दोनों के हृदय के एक हो जाने पर वियोग जन्य क्लेश का अनुभव करते हुए किसी अन्य व्यक्ति ने प्रसंगवश यह पथ्या आर्या पढ़ी[3] ॥४६५॥

१· परिहास—परय मत्तारिबसं चूतं कुसुमैर्मधुगन्धिभिः ।
हेमपञ्जरुद्धो या कोकिलो यत्र कूजति ॥ बुद्धचरित ४।४४.

(ख) घनकेशी स्मरारवत्यदर्लं भ्रू पतितं प्रति ।
देहि महासुदस्यैवि मद्‌गिरा मोदितासि यत् ॥ नैषध २०।११.

(ग) निधिनिक्षेपस्थानस्योपरि चिह्नार्थमिव धृता निहिता ।
क्षोभयति सव तनूदरि जघनतटादुपरि रोमाली ॥ आर्यासप्तशती (१३८)

विपरीत आचरण—
क्षुम्भनेषु परिवर्तिताधरं हस्तरोधि रशनाविघट्टने ।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम् ॥ रघुवंश १९।२७.

२· स्नेही के प्रति मन सदा शंकाशील रहता है—'स्वगृहोद्यानगतेऽपि स्निग्धे पापं विशङ्क्यते स्नेहात्'—नागानन्द ५।१; 'प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि'—किरात ९।७०, 'अतिस्नेहः पापशङ्की'—शाकुन्तल ४.

३· पथ्या—आर्या का एक भेद है; यथा—
त्रीणि गणत्रयं पादे द्वितीये तथाद्वयम् ।

"अन्योन्यसुदृढचेष्टितसद्भावस्नेहपाशबद्धानाम् ।
विच्छेदकरो मृत्युर्धीराणां वा परिच्छेदः" ॥ ४६६ ॥

परस्पर सुदृढ चेष्टावाले, निष्कपट स्नेहपाश से बँधे प्रेमियों का अत्यन्त वियोग मृत्यु का कारण होता है। अथवा धीर (सुख दुःख में समान चित्त, पण्डित) मनुष्यों के लिये परिच्छेद विवेक का कारण होता है¹ ॥४६६॥

अथ तच्छ्रवणानन्तरमास्व सुखं दयितिके व्रजामीति ।
अभिधाय याति मन्दं सुन्दरसेने विवर्तितग्रीवम् ॥ ४६७ ॥

यह सुनने के पीछे, 'सुख से रहो' रूपी आशीर्वाद देकर प्रिये ! मैं जा रहा हूँ, इस प्रकार कह कर ग्रीवा को मोडकर सुन्दरसेन के धीमे से जाने पर, (हारलता भूमि पर गिर पड़ी) ॥४६७॥

वटशाखालम्बिभुजां श्वसितोष्णसमीरशुष्यदधरदलाम् ।
पर्यस्तां बिभ्राणां तन्मार्गविलोकनानिमेषदृशम् ॥ ४६८ ॥
लोलायमानवेणीतिर्यक्कृतकण्ठभूषणविशेषाम् ।
गलदश्रुवारिपूर्णां पतितां संशुष्कनिःसहांगलताम् ॥ ४६९ ॥

वड की शाखा को पकड़े निश्वास की उष्णवायु से ओठ के सूखने पर, रंग बदली हुई हारलता सुन्दरसेन के जाने के मार्ग में अनिमेष दृष्टि से देखती रही। बालों के अस्त व्यस्त होने के कारण गले का आभूषण भी अव्यवस्थित हो गया था, आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे, सूखी नि सहाय लता की भाँति वह भूमि पर गिर पड़ी ॥४६८-४६९॥

रन्धानामिव हृदयं स्फुटदितरकरेण कुचयुगाश्रयिणा ।
परिशेपिता विलासैरुत्सृष्टां जीवलोककर्तव्यैः ॥ ४७० ॥

गुरुश्चतुर्थेऽपि तथा, किन्तु कोऽत्र तृतीयके ।
विषमे अगणो नात्र; पथ्याऽऽर्या संप्रकीर्तिता ॥

(ख) पथ्या-द्विवहा आर्या पढ़ी ।

1. स्नेह का लक्षण—दर्शने स्पर्शने चापि श्रवणे भाषणेऽपि वा ।
यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते ॥

धीर का लक्षण—
'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।'—कुमार॰ ११५०.

सौन्दरानन्द में—
'ज्ञानाच्च शौर्याच्च विना विमोक्तुं न शक्यते स्नेहमयस्तु पाशः'—७११५.

अंगीकृतां विपत्त्या, वशीकृतां मर्मघट्टनैर्विषमैः।
हारलतामपरिस्फुटमन्तः - परिक्षीयमाण - भारत्या ॥ ४७१ ॥
मा मा धावत चरणमेकं यावदेष निष्करुणः।
वनगुल्मैर्न तिरोहित इत्यभिदधती जहुः प्राणाः ॥ ४७२ ॥
(कुलकम्)

स्तनों पर हाथ रख कर पटते हुए हृदय को रोकते हुए; सब प्रकार के विलासों को छोड़,[1] संसार के करणीय कर्मों का भी परित्याग करके; दुःख से दुःखी, मर्म स्थल की पीड़ा से अतिशय रुप में पीडित, आसन्न मृत्यु के कारण सूखी वाणी द्वारा अस्पष्ट बोलती, हे प्राण! अभी मत निकलो, एक क्षण के लिये रुक जाओ, जब तक यह कठोर जंगल की लता समूहों में छिपकर आँख से ओझल नहीं होता, इस प्रकार कहती हुई हारलता ने प्राण छोड़ दिये ॥४७०-४७२॥

अथ पश्चात्समुपेतं पप्रच्छ पुरन्दरात्मजः पथिकम्।
दृष्टा शोकव्यथिता निवर्तमाना वरांगना भवता ॥ ४७३ ॥

इसके पीछे, पीछे से आते हुए पथिक से सुन्दरसेन ने पूछा-'आपने शोक से पीडित वापिस जाती हुई किसी वेश्या को देखा' ॥४७३॥

स उवाच वटतरोरध उर्व्यां पतिता निनिश्चलावयवा।
तिष्ठति वनिता, नान्या नयनाध्वसरं गताऽस्माकम् ॥ ४७४ ॥

उसने कहा कि—वटवृक्ष के नीचे, भूमि पर पड़ी, निश्चेष्ट अवयवों वाली एक स्त्री थी, और कोई स्त्री हमारी निगाह में नहीं आई ॥४७४॥

इति तद्वचनाश्महतो विह्वलमूर्तिः पपात भूपृष्ठे।
उत्थापितश्च सुहृदा सोऽभिदधे तेन शोकविक्लेन ॥ ४७५ ॥

पत्थर के समान इस कठोर वचन को सुनकर विह्वल होकर सुन्दरसेन भूमि पर गिर पड़ा। मित्र ने उसे उठाया और शोक से बेचैन सुन्दरसेन ने कहा ॥४७५॥

भवतु कृतार्थस्तातस्त्वमपि सुमित्राऽस्व साम्प्रतं प्रीतः।
समकालमेव मुक्ता पापेन मयाऽसुभिश्च हारलता ॥ ४७६ ॥

(उपालम्भ देते हुए), पिता भी कृतार्थ हो गये, तुम अच्छे मित्र भी अब प्रसन्न हो जाओ। मुझ पापी के कारण हारलता ने मेरे चलने के साथ ही प्राण छोड़ दिये ॥४७६॥

---

1. विलास—
'प्रियसन्निधौ गमने क्रियायां वचने च सातिशय विशेषोत्पत्ति विलासः।'

हाहा हाव हतोऽसि, ध्वस्ता लीला, विलास किं कुरुपे ।
उच्छिन्ना विच्छित्तिर्भ्रम विभ्रम दश दिशो निराधारः ॥ ४७७ ॥

बड़े दुःख की बात है, पूर्ण चन्द्र की कान्ति को भी तिरस्कृत करने वाली हारलता के यम के पास जाने पर–मरने पर–हाव मर गये, लीला नष्ट हो गई, विलास व्यर्थ हो गये, विच्छित्ति जाती रही, विभ्रम भी नष्ट हो गया, दशों दिशायें शून्य हो गईं[1] ॥४७७॥

किलकिंचित गच्छ वनं, मोट्टायितमशरणत्वमुपयातम् ।
कुट्टमित प्रव्रज्यां गृहाण, बिव्वोक विश भुवो विवरम् ॥ ४७८ ॥

किलकिञ्चित तुम जंगल का रास्ता पकड़ो, मोट्टायित तुम्हारा भी अब कहीं स्थान नहीं रहा, कुट्टमित ने संन्यास ले लिया, बिव्वोक पृथ्वी के गर्त्त में पाताल में घुस गया (ये सब भाव नष्ट हो गये)[2] ॥४७८॥

---

१. साहित्य दर्पण में स्त्रियों के अट्ठाईस सात्त्विक अलंकार कहे हैं । इनमें भाव, हाव और हेला ये तीन अंगज हैं । इनका सम्बन्ध शरीर से है, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सात अयत्नज—[अर्थात् कृति से साध्य नहीं] हैं । लीला, विलास, विच्छित्ति, बिब्बोक, किलकिञ्चित, विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि ये अट्ठारह स्वभावसिद्ध हैं, किन्तु कृतिसाध्य हैं । इनमें–

हाव—भ्रूनेत्रादि विकारैस्तु संभोगेच्छाप्रकाशकः ।
भाव एवाल्पसंलक्ष्यः विकारो हाव उच्यते ॥ सा०द०–३।९४.

लीला—अङ्गैर्वेषैरलंकारैः प्रेमभिर्वचनैरपि ।
प्रीतिप्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः ॥ सा०द० ३।९८.

विलास—यथा स्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् ।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना ॥ सा०द० ३।९९.

विच्छित्ति—स्तोकाप्याकल्परचना विच्छित्तिः कान्तिपोषकृत् ॥ सा.द. ३।१००.

विभ्रम—त्वरया हर्षरागादेर्दयितागमनादिषु ।
अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः ॥ सा द. ३।१०४.

२. किलकिञ्चित—
स्मित-शुष्क-रुदित-हसित-त्रास क्रोध श्रमादीनाम् ।
सांकर्यं किलकिञ्चितमभीष्टतमसंगमादिजाद् हर्षात् ॥ सा.द. ३।१०१.

मोट्टायित—तद्भावभाविते चित्ते वल्लभस्य कथादिषु ।
मोट्टायितमिति प्राहुः कर्णकण्डूयनादिकम् ॥ सा द ३।१०२.

ललितमनाथीभूतं, विट्ठलस्य गतिर्न विद्यते क्वापि ।
शशधरबिम्बद्युतिमुषि यातायामन्तरस्यान्तः ॥ ४७९ ॥

पूर्ण चन्द्रमा की द्युति को चुराने वाले मुख वाली के यम के पास चले जाने पर ललित अनाथ हो गया, विट्ठल को कोई रास्ता नहीं मिला ॥ ४७९ ॥

विनिवृत्य यामि द्रष्टुं मद्विरहात्त्यक्तवल्लभप्राणाम् ।
भवतु वराक्यास्तस्याः समार्चिर्दानमात्रमुपकारः ॥ ४८० ॥

मेरे वियोग में अपने प्रिय प्राणों को छोड़ने वाली हारलता को जलाने के लिये लौट कर वापस जाता हूँ । अग्निदान का मेरा पुण्य उस गरीब को मिल जाये ॥४८०॥

गत्वाऽथ वसुदेशं यस्मिन्सा पंचमावमापन्ना ।
निललाप मुक्तकण्ठं विलुठन् भुवि सहचरेण धृतमूर्तिः ॥ ४८१ ॥

जिस स्थान पर हारलता मरी थी, उस स्थान पर पहुँच कर मित्र से अवलम्बित शरीर (पकड़ा हुआ), भूमि पर लोट कर खूब जोर से रोया ॥४८१॥

"एते वयं निवृत्ता मुंच रुषं, देहि कोपने वाचम् ।
उत्तिष्ठ, किमिति तिष्ठसि भूमितले रेणुरूक्षितशरीरा ॥ ४८२ ॥

हम लौट आये, क्रोध को छोड़, सुमन ! उत्तर तो दे, खड़ी हो, जमीन पर क्यों बैठी है, शरीर पर धूल क्यों लगा रक्खी है ॥४८२॥

विनिमील्य दृशौ कस्मादप्रतिपत्त्या स्थिताऽसि शुभवदने ।
त्वद्वारितगमनविधेरपराधितया न मेऽस्ति संयोगः ॥ ४८३ ॥

हे शुभवदने ! आँखों को बन्द करके किसलिये मूढ़ की भाँति निश्चल पड़ी है, तेरे मना करने पर भी जो मैं चला गया; इसी अपराध से मेरा तुम्हारे साथ संयोग नहीं हो रहा ॥४८३॥

नाराधिपतिपुरस्त्रीरमिमनिशं त्वयि दिवं प्रयातायाम् ।
सत्यपि शरेषु पञ्चसु निरायुधः साम्प्रतं मदनः ॥ ४८४ ॥

इन्द्रपुरी की स्त्रियों को तिरस्कृत करने के लिये तेरे स्वर्ग में जाने पर, कामदेव अपने पाँच बाण रखने पर भी अब शस्त्र विना हो गया[1] ॥४८४॥

वञ्चकवृत्ता वेश्या इत्यपवादो जनेषु यो रूढ ।
अपनीतोऽसौ निपुणे त्वया प्रिये जीवमोचेण ॥ ४८५ ॥

मनुष्यों में जो यह अपवाद प्रसिद्ध है कि वेश्यायें ठग होती हैं, इस अपवाद को हे प्रिये! तूने प्राण देकर पूर्णरूप से झूठा प्रमाणित कर दिया[2] ॥४८५॥

षण्मुख सद्व्रत एकस्त्रिपुरान्तकनन्दनो महासेन ।
हृदय स्पृष्ट न मनागपि वामलोचनाप्रेम्णा ॥ ४८६ ॥

शिव का पुत्र सद्व्रतधारी षडानन अकेला ही इस विषय में प्रशसनीय है, जिसके हृदय पर स्त्रियों के प्रेम का जरा भी प्रभाव नहीं हुआ ॥४८६॥

मन्येऽभीष्टवियोग निमेषमपि दु सह समवधार्य ।
हरिणा वक्षसि लक्ष्मीर्विधृता गौरी हरेण देहार्धे ॥ ४८७ ॥

मैं ऐसा मानता हूँ कि प्रिय का क्षण मात्र भी वियोग दु सह है, इसीलिये ऐसा सोच कर विष्णु ने लक्ष्मी को छाती पर और शिव ने गौरी को शरीर के अर्धभाग में धारण किया है ॥४८७॥

अयि लोकपाल, मा भुवि ललामभूता, तया विना शून्यम् ।
विश्वमिति किं न चिन्तितमात्मस्थानं प्रिया नयता ॥ ४८८ ॥

---

१ पाँच बाण—
(क) अरविन्दमशोक च चूत च नवमल्लिका ।
नीलोत्पल च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायका ॥
(ख) उन्मादनस्तापनश्च शोषण स्तम्भनस्तथा ।
सम्मोहनश्च कामस्य पञ्च बाणा प्रकीर्तिता ॥
(ग) द्रावण क्षोभणश्चैव वशीकरण इत्यपि ।
आकर्षणश्च कामस्य बाण सम्मोहनोऽपर ॥

२ कहा भी है—'कपटानुरागकौसीदिक' खलु वश्याजन ॥ हासै प्र
वाग्भि प्रौढिकरैर्विलोकनशतै सतर्जनै सस्मितै,
क्वाथैरौषधमन्त्रतन्त्रमणिभि कृत्वा वश नायकम् ।
हृत्वा तस्य समस्तवस्तुनिचय त्यक्त्वा तमन्य शठ,
सेवन्ते धनिन वृथैव सतत वाराङ्गनाना रति ॥

हानि नहीं। (उन पुरुषों के मनोरञ्जन में वेश्याओं के ऐसा होने पर भी कोई हानि नहीं) ॥४९८॥

रमणहृदयानुवर्तनचतुरचतुःषष्टिकर्मकुशलानाम्।
न स्पृशति तत्त्वचर्चा मनागमूना विदग्धचेतांसि ॥ ४९९ ॥

कामुक नायक के हृदय के अनुसार चलने में चतुर, कामशास्त्र की चौसठ कलाओं में कुशल[1], वेश्याओं के रसिक चित्तों में तत्त्व ज्ञान का विचार नहीं होता[2] ॥४९९॥

वलितप्लुतचित्रगतिस्थितिबोधैर्योऽन्वानुवृत्त्या च।
रागस्पर्शेन विना विशति मनः सादिनां तुरगः ॥ ५०० ॥

घुड़सवार के मन में घोड़ा अपना वलित, प्लुत, चित्रगति, स्थिति ज्ञान से तथा घुड़सवार की इच्छा के अनुसार चलने के कारण ही पैठ जाता है, भले ही उसमें राग [रंग] और स्पर्श [कोमलता] न हो, (घुड़सवार घोड़े को उसके इन गुणों से पसन्द करता है, उसे घोड़े से राग नहीं होता—केवल गुणों से ही स्नेह है, इसी प्रकार वेश्या से भी स्नेह उसके गुणों से ही होता है) ॥५००॥

गन्धोऽपि कुत्र प्रेम्णः परभृतहारीतगृहकपोतानाम्।
उज्ज्वलयन्त्यसमेषुं विरुतविशेषैस्तथापि ते यूनाम् ॥ ५०१ ॥

कोयल, हारीत, घर के पाले कबूतरों में प्रेम की गन्ध भी नहीं, तथापि ये अपनी विशेष आवाजों से युवाओं में काम को जाग्रत करते हैं ॥५०१॥

आहितमुक्ताहार्ये सम्यक्सकलप्रयोगनिष्पत्त्या।
भावविहीनोऽपि नटः सामाजिकचित्तरञ्जनं कुरुते ॥ ५०२ ॥

पहिले स्वीकार किया और फिर छोड़ दिया ऐसे आहार्य अभिनय को करने वाला, अनुराग हीन नट भी भली प्रकार सम्पूर्ण अभिनय की सफलता से सामाजिक जनों के मन को प्रसन्न करता है[2] ॥५०२॥

---

1. चौंसठ कला—कामसूत्र के अवयव भूत गान-वादित्र आदि ६४ कलायें अथवा पाञ्चाल की ६४, कलाओं में चतुर [कामसूत्र २।२]
2. आङ्गिक, वाचिक और आहार्य तीन प्रकार के अभिनयों में एक आहार्य है, 'आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नेपथ्यजो विधि'—भरत २१।२। भाव—रति आदि स्थायि भाव—आठ, निर्वेद आदि व्यभिचारि भाव—३३, स्तम्भ आदि सात्त्विक भाव आठ, इस प्रकार कुल ४९ भाव हैं, इनसे रहित होने पर भी नट-दर्शकों का मन प्रसन्न करता है।

येऽपि धनक्षयदोषं पश्यन्ति जडा विलासिनीश्लेषे ।
प्रष्टव्यास्ते भवता किमकृतकर्शिपुव्यया दारा ॥ ५०३ ॥

जो मूढ़ वश्याओं के सम्भोग में धन क्षय का दोष देखते हैं, उनसे पूछना चाहिए कि क्या स्त्री में अन्न वस्त्र का व्यय नहीं होता[1] ॥५०३॥

न च लाभ एक एव प्रवर्तने कारणं मनुष्येषु ।
रागाद्योऽपि सन्ति वैशिकशास्त्रप्रणेतृभि कथिता ॥ ५०४ ॥

मनुष्यों के प्रवृत्ति का कारण केवल लाभ ही नहीं होता, राग अनुराग, प्रीति आसक्ति आदि भी कारण होते हैं, ऐसा वैशिक शास्त्र कामशास्त्र बनाने वालों ने कहा है[2] ॥५०४॥

का वा विभूतिराप्ता सुन्दरसेनात्तया तपस्विन्या ।
यद्विरहकुलिशाभिन्ना मुमोच सा जीवितं क्षणार्धेन ॥ ५०५ ॥

उस बेचारी हारलता ने सुन्दरसेन से कौन सा बड़ा धन पा लिया, जिसने विरह म उसने आधे क्षण में अपने प्राण छोड़ दिये ॥५०५॥

उत्तमतरुणप्रकृति पुलकादिकसूचितान्यतरशक्ति ।
स्फुटसन्निहितविभावो निवार्यते केन शृंगार ॥ ५०६ ॥

उत्तम यौवन, रोमाञ्च आदि कारणों से प्रगट असामान्य शक्ति, सुव्यक्त, समीपवर्ति विभाव रहने पर शृङ्गार को कौन छोड़ सकता है[3] कोई भी नहीं छोड़ सकता ॥५०६॥

---

१ दृष्ट वाऽनिष्ट वा सुकृदु स वा न वेत्ति या माहात् ,
परवशग स भवेदिह गदसज्ञक पुरुष ॥

२ वैशिक—वेशोपचरणाद् वापि वैशिक स उदाहृत , (ख)—विशेषयेत्कला सर्वा यस्मात्तस्माद्‌ वैशिक —भरत २३।२-३

३ शृङ्गार—रम्य देश कला-काल-वेश भोगादिसेवनै ।
प्रमोदात्मा रति सैव यूनोरन्यो-न्यसक्तयो ।
प्रकृष्यमाण शृङ्गारा मधुराङ्गविचेष्टितै ॥ दशरूपक ४।४८

विभाव—विशेष रूप से जो रस उत्पन्न करते हैं, उन भावों को विभाव कहते हैं । ये विभाव उद्दीपन और आलम्बन भेद से दो प्रकार के हैं, जिसका आलम्बन आश्रय लेकर रस उत्पन्न होता है, वह आलम्बन है, यथा नायिका और नायक, जो रस को उद्दीप्त करता है वह उद्दीपन विभाव है, यथा—ज्योत्स्नावास, चन्द्रोदय, वसन्त ऋतु आदि ।

अन्तःकरणविकारं गुरुपरिजनसंकटेऽपि कुलटानाम् ।
जानन्ति तदभियुक्ता भ्रूभंगापांगमधुरदृष्टेन ॥ ५०७ ॥

वेश्याओं के अन्तःकरण के विकार भाव को, गुरुजन तथा अन्य आदि के पास में होने पर भी, उनसे परिचित मनुष्य भ्रूचालन, अपाङ्ग दृष्टिपात, तथा मधुर प्रेक्षण से जान लेते हैं ॥५०७॥

अन्या विहाय पतिगृहमविचिन्तितकुलकलङ्कजनगर्हा ।
रागोपरक्तहृदया यान्ति दिगन्तं मनुष्यमासाद्य ॥ ५०८ ॥

अनुराग वाली कामिनियाँ—कुलनिन्दा एवं लोकनिन्दा की परवाह न करके, मन के अनुकूल पुरुष के मिलने पर पति गृह को छोड़कर भी उसके साथ दूर देश में भी चली जाती हैं ॥५०८॥

अपमानं पतिविहितो गुरुपरिकरतोऽनिशं गृहे दौःस्थ्यम् ।
शीलक्षतये यासां तासामतिरागतोऽन्यनरसक्तिः ॥ ५०९ ॥

पति से किया अपमान, गुरुजनों से मिला तिरस्कार, घर में दुःखी जीवन, जिनका होता है, उनके लिए अति अनुराग द्वारा दूसरे मनुष्य में आसक्ति उत्पन्न करके शीलनाश का कारण होता है ॥५०९॥

या अप्यचलितवृत्ता भर्तुः परिचरणतत्परा प्रमदाः ।
ता अपि रागवियुक्ताश्चेष्टन्ते औचित्यमात्रेण ॥ ५१० ॥

जो शुद्ध चरित्र वाली स्त्रियाँ, भी पति सेवा में सदा तत्पर रहती हैं, वे केवल उचित कर्त्तव्य मात्र दृष्टि से ही बरतती हैं, पतिसेवा करना है, इसलिये करती हैं, स्नेह से नहीं करती ॥५१०॥

---

१. इयं प्रमादजनितकोपानपेममन्मथा ।
सभ्रूक्षेपकटाक्षा च शृंगारे दृष्टिरिष्यते ॥ भाव—८।४४
कांचित्कन्तीव हर्षं या सविकासाङ्गविनिर्गता ।
सभ्रूक्षेपकटाक्षा सा कान्ता मन्मथवर्धिनी ॥

२. देश भ्रमन्ति विषमं, सहन्ते दुःखं, भ्रमन्ति दुःखिता ।
तथापि महिलानां प्रेम दर्शितं, न स्वजनवर्गे ॥
ग) दुग्धमिव प्रेमदृश्यमविचार्य खलु मन ॥
कौमुदीमित्रानन्द नाटक—४।१८–१०
(ख, रूप कुल यौवनमाभिजात्य नवमुत्सृज्य विचारयन्ति ।
दर्शितस्नेहेऽपि रसाभिनिविष्टा कन्दर्पेव परिसर्पयन्ति ॥

तस्मादस्त्वभिगमनं विविधनिमित्तं निवार्यते येन ।
निजपरपण्यस्त्रीणां रागाधीनं तु हृदयनिर्वहणम् ॥ ५११ ॥

इसलिए जैसा है वैसा ही ठीक है, इसमें बहुत सोच विचार करना उचित नहीं। रागप्राबल्य, पतिविरक्ति आदि अनेक कारणों से अभिगमन (व्यभिचार) होता है, यह किसी से नहीं रोका जा सकता। विवाहित अपनी स्त्री, परकीया स्त्री और वेश्या सबका हृदय राग प्रेम से ही जीता जा सकता है ॥५११॥

एवं विधदृष्टान्तैरुपपत्तियुतैस्तथेन्शौर्यवाक्यैः ।
अन्यैरपि चाटुपदैरावर्जितमानसं गम्यम् ॥ ५१२ ॥

इस प्रकार नाना प्रकार के दृष्टान्त, युक्तियुक्त तथा तर्क वितर्क वाले वचनों से, श्लाघा परक—खुशामदी वचनों से प्रियवल्लभ प्राणनाथ आदि नायक के मन को वश में करके प्रसन्न करके, कामुक को अभिगमन योग्य बनाना चाहिये ॥५१२॥

विहितस्वापविबोधं किंचित्प्रकटीकृतक्लमग्लान्या ।
उत्पादितजृम्भिकया परिरभ्य घनं निशापगमे ॥ ५१३ ॥
विघटितविनिमुद्रदृशा विलोक्य ककुभं सुदीर्घनिःश्वासम् ।
वक्तव्यमिति भवत्या रजनि खले किं प्रभाताऽसि ॥ ५१४ ॥

रात्रि के बीतने पर, नींद से जाग कर, कुछ थकान और ग्लानि को दिखाते हुए जम्भाई लेकर, दृढ आलिंगन करके, निन्दयारी आँखों को खोल कर—दिशाओं को देखते हुए, लम्बा निःश्वास लेकर, कहना चाहिये, कि क्या सबेरा हो गया[1] ॥५१३–१४॥

अबला विषहेत कथं दृढशक्तिमनुष्यरतिरसप्रसरम् ।
मदनजनितोऽनुरागो न विदध्याद्यदि बलाधानम् ॥ ५१५ ॥

यदि कामजनित अनुराग बल का सञ्चार न करे, तो किस प्रकार से अबला दृढशक्ति, बलवान मनुष्य के रतिवेग का सहन कर सकती है, कामजन्य अनुराग के बल से ही वह सहन करती है ॥५१५॥

धन्या चक्राह्ववधू प्रियतमसंघटनसमयसंप्राप्त्या ।
शशिना वियुज्यमाना कुमुदिनी किं क्षीणपुण्यासि ॥ ५१६ ॥

---

1 आस्येन्दोः परिवेषवद् रतिपते चापेयकोदण्डवत्
धम्मिल्लाम्बुमुच क्षणद्युतिवदासक्तौ क्षिपन्ती भुजौ ।
विश्लिष्यद्वलवलक्षनाभिविगलन्नीव्युन्नमन्मध्यमं,
किञ्चित्कुञ्चितदक्षदक्षमहो कुम्भस्तनी जृम्भते ॥
(ख) प्रभातशेषा रजनी बभूव—

चकवी धन्य है, प्रियतम से मिलने का समय आने पर—दिन होने पर, भाग्यशाली हो गई। चन्द्रमा से वियुक्त होने वाली कुमुदिनी—दिन निकलने के कारण संकुचित होने लगी—(कुमुदिनी रात्रि में खिलती है, दिन में बन्द होती है), कि प्रश्नार्थक है, क्या कुमुदिनी क्षीणपुण्या है—जो दिन में बन्द हो रही है, चकवी क्या भाग्यवती है, जो दिन में प्रियतम से मिल रही है ॥५१६॥

निर्गलितसुरभिमनोहररसस्थान सरसकुसुमसंप्राप्तम्।
न करोति तथा पीडामास्वाद्य विनिच्युतं यथा भृङ्ग्याः ॥ ५१७ ॥

निर्गलित, सुगन्धित, देखने में सुन्दर रस से भरा पुष्प भृङ्गी को न मिलने पर उतना दुःखदायक नहीं होता, जितना कि निर्गलित, देखने में सुन्दर, रस से भरे पुष्प का स्वाद लेने पर वह गिर कर पीड़ा करता है[1] ॥५१७॥

विज्ञापयाम्यतस्त्वां रचिताञ्जलिमौलिना विधाय नतिम्।
परिचारकजनमध्ये गणनीयाऽहं प्रसादेन ॥ ५१८ ॥ (युग्मम्)

हाथों को जोड़कर, शिर को झुकाकर, मैं आपसे प्रार्थना करती हूं, मुझे भी अपने सेवकों में गिनने की कृपा करें ॥५१८॥

अथ दापितरागाद्यैरपहस्तितलाभविभ्रमोपचितैः।
मृदुभिश्चित्तानुगतैरुपचारैः पातितव्य विश्वासे ॥ ५१९ ॥

राग-स्नेह के उपकारक भावों को उत्पन्न करते हुए तथा धन प्राप्ति आदि लाभ की भ्रान्ति को दूर करके, हृदय को वश करने वाले कोमल उपचारों से, कामुक को विश्वास में लेना चाहिए ॥५१९॥

अवलोकितोऽसि लम्पट किमपि वदन् कर्णसन्निधौ निभृतम्।
शङ्करसेनाधात्र्या अद्य मया जालमार्गेण ॥ ५२० ॥

हे लम्पट! तुम्हारे कानों में चुपचाप बात करते हुए मुझे आज, गवाक्ष मार्ग से शङ्कर सेना धाय ने देख लिया है[2] ॥५२०॥

---

१ नहि वन्ध्याऽनुते दुःखं यथा हि मृतपुत्रिणी—इति न्यायः

२ नायक में अनुराग को बढ़ाने के लिए ईर्ष्या उत्पत्ति करनी चाहिये—

स्नेहो विना भयं न स्यान्नेर्ष्या च प्रणयं विना।
तस्मान्मानप्रकारोऽयं द्वयोः प्रीतिविवर्धनः ॥

शृङ्गारतिलक २।५२.

क्षेमेन्द्र ने भी लिखा है—

स्वयं प्रवृत्तेऽपि नवप्रमोदे शङ्केत वक्तिविवादशीलम्।
निन्दत् प्रकामं जननीं विरुद्धा शङ्केत स्वयं वेशम च कामुकस्य ॥

समयमातृका ८।७१.

मालत्या सह किंचिदभिदधासि सखी ममेति न विरोधः ।
यत्तु चिरं स्निग्धदृशा पश्यसि तां तत्र मे शङ्का ॥ ५२१ ॥

तुम मेरी सखि मालती के साथ भले ही बात करो, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। परन्तु स्नेहभरी दृष्टि से जो देर तक उसको देखते हो, इससे मुझे शंका है ॥५२१॥

त्वामागता न वीक्षितुमनुबध्य न याचितं प्रयत्नेन ।
आहूय वद किमर्थं ताम्बूलं ग्राहिता कमलदेवी ॥ ५२२ ॥

तुम्हारे दर्शन के लिए कमलदेवी नहीं आई और न उसने हठ करके तुमसे पान माँगा। फिर किसलिए उसको बुलाकर तुमने पान दिया, इसका उत्तर दो ॥५२२॥

कञ्चुकमपकर्षन्त्याः प्रकटीभवदसकलकुचपार्श्वम् ।
सांनिवेशं दृष्टं भवता किं कुन्दमालायाः ॥ ५२३ ॥

आँचल को खींचकर कंधे, कक्ष और पार्श्व को दिखाते हुए, कुन्दमाला को आपने किस लिए आग्रह के साथ देखा ॥५२३॥

परिहासेन गृहीता यद्यंशुकपल्लवे त्वया रामा ।
आच्छिद्यापक्रान्ता किं मामवलोक्य पृष्ठतः सहसा ॥ ५२४ ॥

तुमने हँसी हँसी में जिस स्त्री का आँचल पकड़ा था, वह पीछे से मुझे आती देखकर क्यों सहसा आँचल छुड़ाकर भाग गई ? ॥५२४॥

विज्ञानेन ख्याता कुसुमलता त्वं तु वर्णयस्यनिशम् ।
नृत्यन्तीं मृगदेवीं विस्फारितलोचनः पश्यन् ॥ ५२५ ॥

नाचती हुई मृगदेवी को आँखें फाड़ फाड़कर देखते हुए अपने विज्ञान (वशीकरण आदि कर्म पाण्डित्य) से प्रसिद्ध कुसुमलता की क्यों रातदिन तुम स्तुति करते हो। अथवा मृगदेवी को निश्चय से देखते हुए तुम मेरे सामने कुसुमलता की जो प्रशंसा करते हो वह तो केवल बहाना मात्र है, वास्तव में तुम मृगदेवी पर रीझे हो ॥५२५॥

कारणमत्र न वेद्म्यहमृजुपन्थानं प्रसिद्धमुत्सृज्य ।
वक्रेण यदेषि सदा माधवसेनागृहाग्रेण ॥ ५२६ ॥

मैं नहीं समझती क्यों तुम सीधे चालू रास्ते को छोड़कर सदा टेढ़े मार्ग से माधवसेना के घर के आगे से निकलते हो ॥५२६॥

इति सेर्ष्योपन्यासैरन्यैश्चासमवेधितलघुकोपैः ।
प्रणयप्रभवैर्विहिते क्षामोदरि रूढरागे वै ॥ ५२७ ॥

अतिविषयेऽन्तरितसतनुर्जनितस्थितिरायताक्षि सह मात्रा ।
परुषगिरा त्वं कुर्या इत्थं मिथ्यावचःकलहम् ॥ ५२८ ॥
(अन्तः कुलकम्)

हे कृशोदरि ! इसी प्रकार के ईर्ष्या से भरे, दिल में चोट न पहुँचानेवाले, थोड़ा सा गुस्सा लाने वाले, स्नेह से भरे, अन्य वचनों से अनुराग उत्पन्न करके; हे विशाल नेत्रों वाली ! अपने शरीर को छिपाकर, नायक सुन सके तथा तेरी उपस्थिति जान सके, इस स्थिति में तुझे माता के साथ कठोर वाणी में झूठा वाक्कलह इस प्रकार से करना चाहिए ॥५२७–५२८॥

अक्लेशोपनतधनः प्रेमप्रह्वो निरर्गलत्यागः
भट्टानन्दस्य सुतो निधिभूतोऽमन्यया त्वया त्यक्तः ॥ ५२९ ॥

अर्थ दृष्टि से वेश्याओं के लिये गमनीय कामुक—बिना कष्ट के जिसे धन प्राप्त हुई हो; प्रेम से नम्र [प्रेम में पागल]; बेरोक टोक का—अप्रतिबन्ध रूप में त्याग करने वाला, खुले हाथों से खर्च करने वाला; अपरिमित द्रव्यवान्; भट्टानन्द का पुत्र तुझ भाग्यहीन ने छोड़ दिया[1] ॥ ५२९ ॥

व्यसनोपहतविवेको दानैकरतिः स्वदारविद्वेषी ।
मामविगणय्य मूढे निर्भर्त्सित एव केशवस्वामी ॥ ५३० ॥

व्यसनों (पान-स्त्री-मृगया आदि) से नष्ट विवेक (कर्त्तव्याकर्त्तव्य बुद्धि) अतिशय धनदाता; अपनी पत्नी से द्वेष करने वाले केशव स्वामी को, हे मूढे ! तूने मेरी परवाह न करके तिरस्कृत किया ॥ ५३० ॥

अगणितराजापायो विच्छिन्नायः स्वभावतस्त्यागी ।
रिमुपेक्षितोऽनुरक्तो वामधिया शौल्किकाध्यक्षः ॥ ५३१ ॥

राजदण्ड आदि की भी परवाह न करने वाले—निर्भय, अविच्छिन्न आमदनी वाले, स्वभाव से त्यागी एवं अनुरक्त शौल्किकाध्यक्ष (कर वसूल करने वालों के अध्यक्ष) भी; उल्टी मतवाली तूने क्या सोचकर उपेक्षा की ॥५३१॥

1—वात्स्यायन में केशवार्यास्वामी गम्या—स्वतन्त्रः पूर्वे वयसि वर्तमानो वित्तवानपरोक्षवृत्तिरधिकरणवानकृच्छ्राधिगतवित्तः, संघर्षवान्, संततायः, सुभगमानी, श्लाघनकः, षण्डकश्च, पुंस्त्वार्थी, समानस्पर्धी, स्वभावतस्त्यागी, राजनि महामात्रे वा सिद्धो, दैवप्रमाणो, वित्तावमानी, गुरूणां शासनातिगः, सजातानां लक्ष्यभूतः, सवित्त एकपुत्रो, लिङ्गी, प्रच्छन्नकामः, शूरो वैद्यश्चेति—अधि० ६ अ० ११२०.

पितुरेक एव पुत्रश्चतुर्थवयसो गदाभिभूतस्य ।
द्रविणवत प्रभुरातो निराकृतो भूरिकामया सोऽपि ॥ ५३२ ॥

वृद्ध एव रोगों से खोखले बने धनी पिता का अकेला एक ही लडका, उसको भी तूने अधिक धन की लालसा से निकाल दिया ॥ ५३२ ॥

स्वकरेण परित्यक्ता त्वया निभूति करोमि किं पापा ।
सर्वभरेणोपनत वसुदेवमनादरेण पश्यन्त्या ॥ ५३३ ॥

हे पापन् ! मैं क्या करूँ, अन्न वस्त्र अलकार धन आदि सब से भरपूर वसुदेव को अनादर की दृष्टि से देखते हुए तूने अपने ही हाथों से घर आई लक्ष्मी को धक्का दे दिया ॥ ५३३ ॥

पुरुषान्तरसपर्योत्सोत्साहितचित्तवृत्तिरनपेक्षम् ।
वसु विसृजति यो रभसात्तस्य न वार्ता त्वया पृष्टा ॥ ५३४ ॥

अन्य कामुक पुरुष की स्पर्धा होड में अतिशय उत्साह दिखाने वाले तथा रूसी की परवाह न करने वाले, एव जो तुरन्त धन देता है, ऐसे व्यक्ति की भी तूने बात नहीं पूछी ॥ ५३४ ॥

चित्रादिकलाकुशल स्मरशास्त्रविचक्षणो वृषप्रकृति ।
उपकुर्वन्नपि सर्वो विद्वेषिगणे त्वया क्षिप्त ॥ ५३५ ॥

चित्र आदि आलेखन में कुशल, कामशास्त्र में निपुण, वृष जातीय नायक, सब प्रकार से उपकार करने वाले को भी तूने शत्रु बना लिया[1] ॥ ५३५ ॥

चन्द्रवतीमाभरण दत्त मधुसूदनस्य पुत्रेण ।
पश्यन्ती विश्राणमयि रागिणि किं न ह्लाताऽसि ॥ ५३६ ॥

एक कामुक की दी वस्तु को दूसरी को बताने के लिये कहती है—हे धन की लोभिनी ! मधुसूदन के पुत्र से दिये आभूषण को पहने चन्द्रवती को देख कर तू क्यों लज्जित होती है ॥ ५३६ ॥

ग्रामोत्पत्तिरशेषा प्रविशन्ती सिंहराजविनियोगात् ।
मन्मथसेनावास लघयति ते रूपसौभाग्यम् ॥ ५३७ ॥

ग्रामस्वामी सिंहराज के कारण ही ग्राम की सम्पूर्ण सम्पत्ति घर में आने से, मन्मथ सेना का आवास यह तेरा रूप ही तेरे सौभाग्य को कम कर रहा है—तेरे रूप के कारण ही तेरा सौभाग्य है, तुझ सिंहराज को समर्पण करने से ही यह सारा घर धन धान्य से भरा है ॥ ५३७ ॥

---

१ उपकारपरो नित्य धीवश श्लेष्मलस्तथा ।
दृढाङ्गुलशरीरश्च धीमान् धीरो वृषो मत ॥
वपति वीर्य इति च वृष कामुक ।

आस्तामपरो लाभो भट्टाधिपनन्दिसेनतनयेन ।
शिवदेव्या उपचारः क्रियते यस्तेन पर्याप्तम् ॥ ५३८ ॥

महाधिप नन्दसेन के पुत्र से भले ही दूसरा कोई भी लाभ न हो, उसने शिवदेवी की जो सेवा की वही बहुत है ॥ ५३८ ॥

पश्येदं धवलगृहं पाशुपताचार्यभावशुद्धेन ।
कारितमनंगदेव्या विभूषणं पत्तनस्य सकलस्य ॥ ५३९ ॥

पाशुपताचार्य भाव शुद्ध अनंग देवी से बनवाये, इस सौध धवल गृह को देख, यह सारे नगर का आभूषण है। (भाव-परिष्टतार्थ सूचनमानव उपाधि है) ॥ ५३९ ॥

आपणिकार्थस्य कृतां राजा लभते चतुर्थमपि भागम् ।
हट्टपतिरामसेनप्रसादतो नर्मदा यमुपभुंक्ते ॥ ५४० ॥

बाजार में बिक्री के लिये आई वस्तुओं के मूल्य का चौथाई भाग राजा कैसे प्राप्त कर सकता है, जब कि बाजार के मालिक रामसेन के अनुग्रह से नर्मदा उसका उपभोग करती है। (सब भाग रामसेन स्वयं ही रख लेता है और फिर नर्मदा के लिये खर्च करता है) ॥५४०॥

पुंस्त्वाख्यापनकामो न स्त्री न पुमान्किल प्रभुस्वामी ।
अनुधावन्नुपहसितस्त्वया जडे स्वार्थमनपेक्ष्य ॥ ५४१ ॥

प्रभुस्वामी न पुरुष और न स्त्री है, नपुंसक होने से वेश्याओं में अपना पुरुषत्व दिखाने की इच्छा से प्रयत्न करता है, ऐसा कहकर; हे मूर्खे ! तूने स्वार्थ की परवाह न करके उसकी मज़ाक की ॥ ५४१ ॥

वाजीकरणैकमतिर्नरनाथानुग्रहेण विख्यातः ।
प्रत्याख्यातः स यथा रविदेवः किंकरत्वमाशंसन् ॥ ५४२ ॥

वाजीकरण[1] औषधियों के प्रयोग में लगा, राजा का प्रियपात्र; रविदेव तेरी दासता चाहता हुआ भी तूने लौटा दिया ॥ ५४२ ॥

किं कन्दर्पकुटुम्बे जातोऽसावुत वशीकरणयोगम् ।
जानाति कमपि सिद्धं येनाकृष्टासि सर्वभावेन ॥ ५४३ ॥

क्या यह कामदेव के कुटुम्ब में उत्पन्न हुआ है अथवा क्या कोई सिद्ध वशीकरण योग यह जानता है, जिससे कि सम्पूर्ण रूप से उसकी ओर आकृष्ट हुई है ॥ ५४३ ॥

---

१. वाजीकरण—येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः ।
येन चाभ्यधिकं वीर्यं वाजीकरणमेव तत् ॥ चरक. चि. अ. २.

बाल्ये तावदयोग्या पश्चादपि वृद्धभावपरिभूता।
तारुण्ये रागहृता यदि गणिका भ्रमतु तद्भिक्षाम्॥ ५४४॥

बाल्यावस्था में अपक्ववयस्कता के कारण हम संभोग के अयोग्य हैं, वृद्धावस्था में अति वृद्ध होने से अतिपक्ववयस्का होने से संभोग के अयोग्य रहती हैं। यौवनावस्था में यदि गणिका अनुराग स्नेह के कारण एक ही के परवश हो जायें तो वह सारी जिंदगी भिक्षापात्र लेकर ही घूमा करे॥ ५४४॥

उपनय भाण्डकमेतद्यदर्जितं मामकेन देहेन।
विदधामि तीर्थयात्रामास्स्व सुखं प्रेयसा सार्धम्॥ ५४५॥
(अन्त कुलकम्)

मेरे अपने शरीर को बेचकर कमाये हुए धन का भरा पात्र ला, मैं तीर्थ यात्रा करूँ (जिससे पाप धुल जाये), तू अपने प्रीतिपात्र कामुक के साथ आनंद से रह॥ ५४५॥

आर्यजननिन्दितानां पापैकरसप्रधाननारीणाम्।
एतावानेव गुणो यदभीप्समागमो निरावरणः॥ ५४६॥

सज्जनों से निंदित, पाप में ही लगी स्त्रियों का एक यही गुण है, कि उनका इच्छित पुरुष के साथ समागम बिना किसी प्रतिबन्ध के होता है॥ ५४६॥

नो धनलाभो लाभो लाभः खलु वल्लभेन संयोगः।
अक्षिगतादर्थाप्तिर्न भवति मनसः प्रसादाय॥ ५४७॥

धन का लाभ कोई लाभ नहीं प्रिय के साथ मिलाप यही सच्चा लाभ है। स्नेह रहित द्वेष्य पुरुष से मिला बहुत धन भी मनको प्रसन्न नहीं करता, (प्रीतिपात्र से मिला थोडा धन भी आत्मा को प्रसन्न करता है। द्वेष्ये स्वद्विगत—इत्यमर)॥ ५४७॥

गाढानुरागभिन्नं तारुण्यरसामृतेन संसिक्तम्।
न भनक्ति सहृदयहृदयं विभवार्जनसम्भवा चिन्ता॥ ५४८॥

दृढ स्नेह से विकसित, अमृत रूपी तारुण्य रस यौवन रस से सिंचित, सहृदय तरुणजनों के हृदय में धन कमाने आदि की चिन्ता नहीं होती, धन कमाने की चिन्ता से परेशान नहीं होते॥ ५४८॥

लाभः स एव परमः पर्याप्तं तेन कृतार्थाऽस्मि।
विनिवेश्य यदुत्सङ्गे निक्षिपति मुखे मुखेन ताम्बूलम्॥ ५४९॥

गोदी में बिठाकर वह अपने मुख से मेरे मुख में जो पान देता है, यही मेरे लिये सबसे बड़ा लाभ है मुझे इतना ही चाहिये, मैं इससे पूर्ण संतुष्ट हूँ[1] ॥५४९॥

सुरतश्रमवारिकणान् परिमार्ष्टि निवाशुकेन गात्रेषु ।
यदुरसि निधाय विहसंस्तस्य न मूल्यं वसुधरा सकला ॥ ५५० ॥

छाती पर लेटाकर हँसते हुए अपने वस्त्र के प्रान्त द्वारा सम्भोग जन्य श्रम के स्वेद बिन्दुओं को मेरे शरीर से जो पोंछता है, उसका मूल्य सारी पृथ्वी भी नहीं है, अनमोल है[2] ॥ ५५० ॥

शिथिलितनिजदाररतिर्मयि सक्तमना अनन्यकर्तव्य ।
यन्सौ निजनलरूपातिरस्कृत तेन गाणिक्यम् ॥ ५५१ ॥

मेरे में मन लगने पर अपनी स्त्री को भी भूला कर मुझे प्रसन्न करने में ही मग्न लगा, अपने रूप से नल को भी जीतने वाले, इस पुरुष के कारण मैंने वश्यापन भी भूला दिया ॥ ५५१ ॥

बहुकुसुमरसास्वाद कुर्वाणा मधुकरी विधिनियोगात् ।
ईदृक्प्रसवविशेषं लभते खलु येन भवति कृतकृत्या ॥ ५५२ ॥

बहुत से फूलों के रस का आस्वाद न करता हुआ भ्रमरा भाग्य के कारण ऐसे फूल विशेष को पाता है, जिससे कि वह धन्य-कृतकृत्य हो जाता है ॥५५२॥

अयि सरले तावदिमा उपदेशगिरो वसन्ति कर्णान्त ।
यावन्नान्तर्भूतं तच्चेतसि मामकं चेत ॥ ५५३ ॥

हे सरले ! ये सब उपदेश तभी तक कानों के अन्दर रहते हैं, जबतक मेरा चित्त उसके चित्त के अन्दर निलीन नहीं होता, उसके चित्त से मिलकर मेरा चित्त एक नहीं बनता ॥ ५५३ ॥

श्रीरस्तु दुर्गतिर्वा, वेश्मनि वासो भवत्वरण्ये वा ।
स्वर्लोके नरके वा, किं बहुना, तेन मे सार्धम् ॥ ५५४ ॥

प्रेमी के साथ रहने पर मुझे लक्ष्मी मिले या मेरी दुर्गति हो, घर में निवास मिले या जगल में क्लेश मिले, स्वर्ग मिले या नरक मिले, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं ॥ ५५४ ॥

---

1 उत्साहलाभा हि परिमसार—विक्रमाङ्कदेवचरित १०।३८
मन्तुपसि सुरतसमये युवतीना चैव समये विरमे ।
विहद्दरासमायां ताम्बूल या न स्मारेण पद्य ॥

२. अभिनवकेलिक्लान्त्वा कलयति वान्ना प्रमेय सम्भ्रम ।
उपानपर्यन्तु नमिता कुसुमापघनुलवत मधु ॥ आर्यासप्तशती–६१

इदमास्तेऽलंकरणं दुर्जननि गृहाण किं ममैतेन।
तेनैव भूषिताऽहं गुणनिधिना भट्टपुत्रेण ॥ ५५५ ॥

हे कुमाता ! ये रक्खे हैं आभूषण ! सम्भाल, मुझको इनसे क्या प्रयोजन ! मैं तो उसी गुणवान भट्टपुत्र से शोभित हूँ, वही मेरा आभूषण है ॥५५५॥

उचितस्थाननियुक्तान्यपनीय विभूषणानि सावेगम्।
एवमभिधाय यास्यसि मातुः पुरतः समुत्सृज्य ॥ ५५६ ॥

इस प्रकार कहकर, योग्यस्थानों पर धारण किये आभूषणों को गुस्से में उतार कर, माता के सामने फेंककर निकल पड़ेगी—दूर हो जायेगी ॥ ५५६ ॥

इति रागान्ध श्रुत्वा चेतसि कुरुते कदाचिदेवमिदम्।
स्नेहाधिष्ठितमनसामविधेयं नास्ति नारीणाम् ॥ ५५७ ॥

प्रेम में पागल हुआ—ऐसा सुनकर कदाचित मन में यह सोचने लगे कि स्नेहवती स्त्रियों के लिये कुछ भी अकरणीय नहीं है ॥ ५५७ ॥

जननीं जन्मस्थानं बान्धवलोकं वसूनि जीवं च।
पुरुषविशेषासक्ताः सीमन्तिन्यस्तृणाय मन्यन्ते[1] ॥ ५५८ ॥

पुरुष विशेष में आसक्त स्त्रियाँ माता, जन्मभूमि, सम्बन्धी जनों को, प्राणों को और शरीर को तृण की भाँति तुच्छ गिनती हैं[1] ॥५५८॥

रणशिरसि हते वज्रे वज्रोपमयन्त्रनिर्गतग्राव्णा।
प्राणान्मुमोच गणिका न मन्त्रविधिना हता नाम ॥ ५५९ ॥

युद्ध में शिर पर वज्र लगने के कारण प्रेमी की मृत्यु होने पर हता नामक वेश्या ने गोफण से फेंके वज्र के समान कठोर पत्थर से प्राणों का त्याग कर दिया था, किसी मन्त्र विधि से—वशीकरण मन्त्र से वश में होकर प्राण नहीं छोड़े थे केवल स्नेह वश ही प्राण छोड़े थे ॥ ५५९ ॥

कालवशेनायासीत् पञ्चत्वं दाक्षिणात्यमणिकण्ठः।
प्रेमोपगता वेश्या तेनैव समं जगाम भस्मत्वम् ॥ ५६० ॥

दक्षिण देश के मणिकण्ठ के कालवश से मर जाने पर उसके प्रेम में पागल बनी वेश्या भी उसके साथ ही जल गई ॥ ५६० ॥

भास्करवर्मणि याते सुरवसतिं वारिताऽपि भूपतिना।
तद्दुःखमसहमाना प्रविवेश विलासिनी दहनम् ॥ ५६१ ॥

भास्करवर्मा के स्वर्ग चले जाने पर उसके दुःख का सहन न करके, राजा के मना करने पर भी विलासिनी अग्नि में जल गई ॥ ५६१ ॥

---

१ विक्रमांक देवचरित में—
मरणमपि तृणं समर्थयन्ते मनसिजपौरुषवासितान्तरङ्गाः—६।१२

ज्वालाकरालहुतभुजि नग्नाचार्यः पपात नरसिंहः।
तस्मिन्नेव शरीरं निजमजुहोच्छोकपीडिता दासी ॥ ५६२ ॥
नग्नाचार्य नरसिंह अग्नि की तीव्र ज्वालाओं में गिर पड़ा था, उसी अग्नि में शोक से पीडित दासी ने अपने शरीर को भी डाल दिया ॥ ५६२ ॥

प्रीतिभराक्रान्तमतित्रिदशालयजीवितं क्रमोपगताम्।
अंगीचकार मुक्त्वा कदम्बका भट्टविष्णुमामृत्योः ॥ ५६३ ॥
कई पीढ़ियों से वंशपरम्परा में प्राप्त स्वर्ग के समान ऐश्वर्य्य को छोड़कर केवल प्रेम के कारण ही, कदम्बका ने भट्ट विष्णु का साथ मृत्युपर्यन्त निभाया, स्वीकार किया, निर्धन जीवन बिताया ॥ ५६३ ॥

देशान्तरादुपेता प्रसादमात्रेण वीक्षिता वनिता।
तत्याज न पादयुगं समरे निहतस्य वामदेवस्य ॥ ५६४ ॥
वामदेव के प्यार भरी दृष्टि के देखने मात्र से ही अनुरक्त बनी स्त्री दूर देश से उसके साथ चली आई। युद्ध में वामदेव के मरने पर भी उसके पैरों को पकड़कर बैठ गई ॥ ५६४ ॥

भट्टकदम्बकतनये याते वसतिं परेतनाथस्य।
चक्रे देहत्यागं रणदेवी वारयोषिता मुख्या ॥ ५६५ ॥
भट्ट कदम्ब के पुत्र के मर जाने पर, वेश्याओं में श्रेष्ठ रणदेवी ने अपना शरीर भी छोड़ दिया ॥ ५६५ ॥

अस्यामेव नगर्यां द्रविणमदात् कालसंचितमशेषम्।
प्रेम्णाऽऽकृष्टा गणिका मिश्रात्मजनीलकण्ठाय ॥ ५६६ ॥
इसी वाराणसी में बहुत समय से इकट्ठे किये सम्पूर्ण धन को प्रेम से खींची वेश्या ने मिश्र के पुत्र नीलकण्ठ को दे दिया था ॥ ५६६ ॥

इयमपि मयि विहितास्था मातृवचःकलुषिता गता क्वापि।
त्यक्त्वाऽऽभरणं सर्वं प्रविजृम्भितमन्युसवेगा ॥ ५६७ ॥
माता के वचनों से दुःखी, सम्पूर्ण आभूषणों का त्याग करके, क्रोध में पागल होकर मेरे में विश्वास रखकर कहीं चली गई ॥ ५६७ ॥

उत्सृष्टालंकरणां परिरोपितमातृमुक्तपरिवाराम्।
सतपर्यामि सम्प्रति सर्वस्वेनापि हरिणाक्षीम् ॥ ५६८ ॥
सब आभूषणों का परित्याग करके, माता, दासी आदि सम्बन्धी जनों को छोड़कर निकली हुई इस चञ्चल आँख वाली को अपने सर्वस्व की बाजी लगाकर भी रक्षा (सुखी) करूँगा ॥ ५६८ ॥

गेहेन किं प्रयोजनमन्यैरपि बन्धुदारपरिवारैः ।
संसारमहकारणमेका खलु मालती मम हि ॥ ५६६ ॥

मुझे घर से क्या मतलब, दूसरे बन्धु स्त्री-सम्बन्धी जनों से भी कुछ काम नहीं। मेरे लिये तो संसार में रहने का अकेला कारण मालती ही है, उसीके कारण जीता हूँ ॥ ५६६ ॥

अमृतकरावयवैरिव घटिता या दृढतरं परिष्वक्ता ।
चेतो नयति समत्वं ब्रह्मणः आनन्दरूपस्य ॥ ५७० ॥

मालती के अवयव चन्द्रमा की किरणों से बने हुए हैं, जिनका गाढ आलिंगन मनको ब्रह्मानन्द प्राप्ति का आनन्द देता है¹ ॥ ५७० ॥

आविर्भवदात्मभवक्षोभक्षतधीरताधनं रभसात् ।
विगलितकुचयुगलावृतिरालिंगति मालती धन्यम् ॥ ५७१ ॥

काम की व्याकुलता से बेचैनी बनी—कामातुर स्तनों की चोली को हटाकर मालती किसी भाग्यवान् का ही दृढ आलिंगन करती है ॥ ५७१ ॥

निर्दयतरौष्ठखण्डनसव्यथहुंकारमूर्छितं सुरते ।
अहहेति वचस्तस्या अपुण्यभाजो न शृण्वन्ति ॥ ५७२ ॥

सम्भोग के समय आवेश में किये निर्दय ओष्ठदंश से उत्पन्न पीड़ा के साथ किये हुए मालती के हुँकार को अशुभ कर्म करने वाले नहीं सुन सकते ॥५७२॥

स्मृतिजन्मजनितविकृतिप्रततिच्छन्नं करोति संसारम् ।
आबद्धसुरतसंगरविमर्दसंक्षोभिता दयिता ॥ ५७३ ॥

प्रवर्त्तित रतियुद्ध में अंगों के निष्पीडन से बेचैन बनी प्रियतमा, काम से उत्पन्न नाना प्रकार की क्षोभ रूपी लताओं से संसार को ढाँप लेती है। सुरत काल जनित क्षोभ से रमणीय बनी प्रिया को देखने से कामुक को सारा संसार शृङ्गारमय ही दीखता है ॥५७३॥

---

1 कवि ने कहा भी है—

किं कौमुदी शशिकला सकला विचूर्ण्य संयोज्य चामृतरसेन पुनः प्रयत्नात् ।
कामस्य घोरहरहुङ्कृतिदग्धमूर्त्तेः संजीवनौषधिरियं विहिता विधात्रा ॥

(ख) पंचदशी में—कुमारादिवद्देवाय ब्रह्मानन्दैकतत्परः ।
स्त्रीपरिष्वक्तवद्वेद न बाह्यं नापि चान्तरम् ॥ ११।५४

(ग) तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्—
बृहद् ४।३।२१

(घ) प्रज्ञानघन एवानन्दमय —माण्डू ५
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म बृहद् उप ३।९।२८,

गाढतराश्लिष्टवपुर्भजते कान्ता प्रमोदसम्मोहम् ।
शिथिलीकृता तु किंचिद्विविधविकारं समुच्छ्वसिति ॥ ५७४ ॥

गाढतर—अतिशय बल पूर्वक आलिंगित कान्ता आनन्द से बेहोश हो जाती है, आलिगन के थोडा ढीला करने पर नाना प्रकार के विकारों को [सचारी आदि भावों (ग्लानि-क्रोध आदि) को] प्रगट करती है ॥५७४॥ ·

सन्त्यन्या अपि सत्य पुरुषोचितकर्मपण्डिता प्रमदा ।
सृष्टाऽनया तु नियतं विपरीतरतक्रियागोष्ठी ॥ ५७५ ॥

यह सत्य है कि पुरुषोचित कर्म में—विपरीत रति में पण्डिता—दूसरी स्त्रियाँ भी हैं, परन्तु विपरीत सम्भोग सम्बन्धी चर्चा का प्रारम्भ तो इसी मालती ने किया है; इसकी सबसे बड़ी मालती पण्डिता ही है[1] ॥५७५॥

तन्त्रीवाद्यविशेषान् प्रोद्दामानङ्गमनसस्तस्याः ।
कुहरितरेचितकम्पितसम्पादननैपुणं करोति जडान् ॥ ५७६ ॥

रतिकाल में प्रचण्ड कामवेग वाली मालती के गले से निकली कोकिल ध्वनि, श्वास, कम्पन, आदि की निपुणता, वीणा बजाने वालों को भी नीचा दिखाती है, उनको भी मूर्ख बनाती है ॥५७६॥

ललितांगहारजृम्भितवलितस्मितवेपनानि मालत्याः ।
पश्यञ्जहाति कामो रतिमोहनचेष्टितेषु बहुमानम् ॥ ५७७ ॥

मालती के अंगों का सुन्दर चालन—हिलना चलाना, जम्भाई लेना, वलित—मुड़ना-तुड़ना, स्मित—मुसकराना, वेपन—हर्ष त्रास क्रोध आदि से होने वाले कम्पों को देखकर कामदेव, अपनी पत्नी रति की चित्त हरने वाली चेष्टाओं को भी भूल जाता है, उनमें भी अधिक श्रद्धा नहीं करता[2] ॥५७७॥

न ग्राम्यं परिहसितं, नाविभ्रमतरलिताक्षिविक्षेपः ।
सुरतानुयोगविधौ दोहददानं न पुष्पचापस्य ॥ ५७८ ॥

मालती के हँसने में गँवारपन नहीं, उसका चचल कटाक्ष विलास रहित नहीं । मालती की सम्भोग में काम की प्रवृत्ति दोहद दान के बिना नहीं होती[3] ॥५७८॥

---

१. पुरुषायित—नायकस्यानुमत्या वा स्वमनीषिकयाऽथवा ।
पुंवत् स्त्री रमते रागात् पुरुषायितमुच्यते ॥

२. वलित—सुकुमारतयाऽङ्गानां विन्यासो ललितं भवेत्, वलित—लास्यविशेष ।

३. दोहद—विशेष वृक्षों में पुष्प आदि संवृद्धि के लिए जो दान दिया जाता है, वह दोहद दान है—यह दोहद दान दस वृक्षों के लिए प्रसिद्ध है, यथा—
स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति, बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्,
पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।

नार्थपरो नयनरसो, न पराशयवेदने विचक्षणता ।
नासौष्ठव प्रसगे, न चान्यगुणकीर्तनेषु भारत्या ॥ ५७९ ॥

मालती की स्नेह भरी दृष्टि धन की लोभी नहीं, उसमें दूसरे के अभिप्राय को जानने की कुशलता नहीं, प्रसग—समयोचित कार्य में असौष्ठव नहीं, दूसरे के गुणों की प्रशसा करने में उसकी वाणी में ग्राम्यपन नहीं ।।५७९।।

नापरपुरुषश्लाघा, न त्याग कालदेशवेषस्य ।
वैदग्ध्यजन्मभूमेर्गुरुजघनभरेण मन्दयातायाः ॥ ५८० ॥
(विशेषकम्)

मालती नायक को छोड़कर दूसरे पुरुष की प्रशसा नहीं करती,कालोचित एव देशोचित वेष का कभी त्याग नहीं करती, काल और देश के अनुसार आभूषण वेष आदि धारण करती है। विदग्धता चातुर्य का तो वह उत्पत्ति स्थान ही है। भारी जघनों के भार से वह सदा मन्द गति से चलती है, गजगामिनी है[1]।।५८०।।

चक्राङ्कपरिष्वञ्जन हससमाश्लेषनकुलपरिरम्भम् ।
पारावतावगूहनमाचरति सुमध्यमा यथावसरम् ॥ ५८१ ॥

नाना प्रकार के आलिंगन—शोभन मध्यम भाग (नाभि प्रदेश से निचला उदर भाग) वाली मालती समय को देखकर चक्रवाक के समान हस के समान, नेवले की भाँति एव कबूतर के समान आलिंगन करती है[2] ।।५८१।।

तद्वक्त्रवचनहास्यव्यवहृतिहृतमानसस्य जायन्ते ।
अनुकूलसुन्दरा अपि भरणीया केवल दाराः ॥ ५८२ ॥

मन्दारो नर्मवाक्यात्, पटु मृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात् ,
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ॥

१ भारी जघन—
किं विभ्रमत्र जघन परमुद्वहन्त्या मन्दीभवन्ति यदि ते गतयो वरांगि ।
यद्वीक्षयेऽपि गतधैर्यगुणा युवानो, गन्तुं मनागपि पुनर्नहि शक्नुवन्ति ॥

२ चक्रवाक पक्षियों की भाँति—शरीर का परस्पर रगड़ना, हंसालिंगन—हंसों की भाँति अलग होना और फिर मिलना इस प्रकार बार-बार करना, नकुलालिंगन—नकुल की भाँति जोर से एवं देर तक गात्र में चिपटाना, यथा—योगवाशिष्ठ (६।१०६।१३–१४) में—

गाढमह घनस्नेह मुग्धदुग्धाप स्फुरत्स्पृहम् ।
आलिलिंग चिर कान्ता नकुलो नकुलीमिव ॥

पारावत की भाँति आलिंगन—सामने से परस्पर मुख मिलाना ।

मालती की वक्रोक्तियों से, हास्य से, वचनों से, मुस्कराते हुए निकले वचनों से प्रतारित ठगे-मन वाले पुरुष के लिये अनुकूल एवं सुन्दर स्त्रियाँ केवल पोषणीय ही रहती हैं, उनको खाना कपड़ा ही मिलता रहता है (प्रेम नहीं) ॥५८२॥

सूचयति पृथक्करणं भ्रातॄणां, वक्ति विषमशीलत्वम् ।
विवृणोति गृहविसंस्थामभिनन्दति पितृकुलाय गुणवत्ताम् ॥५८३॥

घर की पत्नी भाईयों से अलग होने की शिक्षा देती है, भाईयों के बुरे व्यवहार की शिकायत करती है, सखियों के बीच में घर की दुर्व्यवस्था को कहती है, अपने पितृ कुल के बड़प्पन का बखान करती है ॥५८३॥

अन्यसुतपक्षपातं कथयति मातुस्तिरस्करोति पतिम् ।
पार्श्वनिमग्नां जायामानयति विमुच्यकार्मुकं मदनः ॥ ५८४ ॥
(युग्मम्)

ज्येष्ठ या देवर के पुत्र को अधिक स्नेह करने की सास की शिकायत करती है, प्रसंग या अप्रसंग पर पति का तिरस्कार करती है, कामदेव अपने धनुष के बिना ही पार्श्व में लेटी पत्नी को अनुकूल कर देता है (स्त्री को प्रेरित करने के लिये कामदेव को अपने धनुष की आवश्यकता नहीं होती) ॥५८४॥

एवं कृतेऽपि सुन्दरि यदि तिष्ठति नायकः प्रकृत्यैव ।
इत्थं पथि परिमोषत्वसख्या नैपुणेन वक्तव्यः ॥ ५८५ ॥

हे सुन्दरि ! इतना सब करने पर भी यदि नायक अपने स्वाभाविक स्वभाव में बना रहे, तब, रास्ते में अपनी सखी के साथ, नायक को ठगने के लिये होशियारी से इस प्रकार बातचीत करनी चाहिये ॥५८५॥

गृहकार्यव्यग्रतया चित्तग्रहणाय वा कुलस्त्रीणाम् ।
नायाते भवति, सखी प्रावृड्घनकलुषिते दिशां चक्रे ॥ ५८६ ॥

घर के काम में व्यस्त होने से, अथवा कुलीन पत्नी के चित्त के प्रसन्न करने में लगे रहने पर, आप के न आने से हे सखि ! मेरे लिये तो सब ओर अन्धेरा हो गया ॥५८६॥

प्रसीदकशयनगता स्फारीभवदात्मसम्भवविकारा ।
त्वद्वर्त्मनिहितनेत्रा गीतामन्येन गीतिकामशृणोत् ॥ ५८७ ॥

प्रासाद-महल में बिस्तर पर पड़ी मुझमें कामजन्य विकार के उत्पन्न होने से; आपके ही रास्ते में आँखें गड़ायें मैंने; दूसरे से कहीं यह गीतिका सुनी ॥५८७॥

यदि जीवितेन कृत्यं संभावय विरहिणि प्रियं तूर्णम् ।
घनरसितस्य हि पुरतः कदलीदलकोमलः कुलिशपातः ॥ ५८८ ॥

हे विरहिणि ! यदि तुमको जीने की चाह है, तो जल्दी से उसका अभिसरण करो उसके पास जाओ। बादलों की गड़गड़ाहट के आगे, वज्र का गिरना भी केले के पत्ते के समान कोमल होता है[1] ॥५८८॥

आकर्ण्य मामवादीद्धन्यास्ता युवतयः सखि कठोराः ।
या विषहन्ते दीर्घं प्रियतमविरहानलासारम् ॥ ५८९ ॥

इसको सुनकर उसने मुझसे कहा, हे सखि ! जो कठोर हृदयवाली तरुणियाँ प्रियतम की विरहाग्नि के प्रसार को देर तक सहन करती हैं, वे धन्य हैं, (मैं तो अभागी हूँ)[2] ॥५८९॥

मम तु दिनान्तरितेऽपि प्रेयसि लब्ध्वा सहायसामग्रीम् ।
विदधाति मकरकेतन उत्कलिकाविधुरितं हृदयम् ॥ ५९० ॥

मेरे लिये तो प्रियतम का एक दिन का भी व्यवधान पड़ने पर कामदेव अपनी कामोद्दीपक सामग्री को लेकर मेरे हृदय को उत्कण्ठित करने लगता है ॥५९०॥

उत्कण्ठयति नितान्तं समीरणो बकुलकुसुमसन्नाहः ।
प्रत्यावयन्ति धैर्यान्मधुरध्वनिभिः कलापभृतः ॥ ५९१ ॥

कामोद्दीपकसामग्री—मौलसरी के फूलों की गन्ध से भरी वायु अतिशय बेचैन करती है, मोरों की मीठी वाणी मेरे धैर्य को नष्ट कर देती है ॥५९१॥

सतडिन्मिलद्बलाकामसिताम्बुधरावलीं समुद्यन्तीम् ।
उत्सहते सा वीक्षितुमविरलमालिंगितो यया कान्तः ॥ ५९२ ॥

जिन स्त्रियों ने अपने प्रियतम का निरन्तर गाढ़ आलिंगन किया हुआ होता है, वे स्त्रियाँ उठती हुई विद्युत वाली काले बादलों की घनघोर घटा की ओर जाती हुई बलाकाओं को देखने के लिये उत्साहित होती हैं[3] ॥५९२॥

---

१ मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः,
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ मेघदूत
विरहमविरहं वा नानुरुन्धन्ति मेघाः सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ।
बालरामायण ५–१८

२ अतसीपुष्पसंकाशं खं वीक्ष्य जलदागमम् ।
ये वियोगेऽपि जीवन्ति न तेषां विद्यते भयम् ॥

३ मेघदूत में—गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥

मृच्छकटिक में—गर्जद्भिः सतडिद्बलाकशबलैर्मेघैः सशल्यं मनः— ॥५–१८॥
गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे ।
अभिससार न वल्लभमंगना न चकमे चकमे करसं रहः ॥ माघ ६ ३६

स्वेच्छागमनलघुत्वं बहुलापायं निशासु पन्थानम् ।
न विचारयन्ति महिला अभीष्टजनसंगमोत्सुका ॥ ५६३ ॥

बिना बुलाये अपने आप जाने में हल्कापन, रात्रि में मार्ग के विघ्नों को (साँप बिच्छू आदि के भय को) भी इच्छित पुरुष से मिलने के लिये बेचैन स्त्रियाँ नहीं सोचतीं ॥५६३॥

क्रियतां भूषणशोभा त्वरयति मे मानसं मनोजन्मा ।
रञ्जयति मनो नितरां कलधौतनिवेशितं रत्नम् ॥ ५६४ ॥

आभूषणों से मेरे शरीर को अलङ्कृत करो, कामदेव मेरे मन को बेचैन कर रहा है। सोने में लगा हुआ रत्न मन को बरबस खींचता है ('रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन') ॥५६४॥

घनजलदावृतककुभि प्रदोषसमये प्रदोषगमनाय ।
विदधानया कुबुद्धिं रागान्धे किमिदमारब्धम् ॥ ५६५ ॥

प्रेम में पागल बनी तूने, दिशाओं के बादलों से घिरा होने पर, रात्रि के समय, फिसलन-काँटे आदि दोष युक्त रास्ते से जाने में कुबुद्धि से विचार करके यह क्या किया'[1] ॥५६५॥

वचनप्रपञ्चसारं जायाश्रितमन्यदेशसम्बन्धम् ।
पुरुषमभिगन्तुकामा नवेयमभिसारिका दृष्टा ॥ ५६६ ॥

मिथ्या प्रिय बोलने वाले, पत्नी आश्रित, दूर रहने वाले (दूरवर्ती), पुरुष के लिये अभिसरण करने वाली यह नई ही अभिसारिका देखा'[2] ॥५६६॥

जलधौततिलकरचना गलदम्भोलुलितकेशान्ताम् ।
लिम्पत्तनुलीनावृतिचण्डानिलसलिलपातरुष्टरसिताम् ॥ ५६७ ॥

माथे पर लगाया तिलक पानी से धुल गया, गिरते हुए पानी से सिर के सुन्दर बाल उलझ गये, केश रचना बिगड़ गई, गीला होने से वस्त्र शरीर के साथ चिपक गया, प्रचण्ड वायु एवं पानी की बौछार से शरीर में रोमाञ्च उत्पन्न हो गया ॥५६७॥

अविभावितसमविषमा भग्नलदङ्घ्रि सङ्कायस्खलमाम् ।
पुरतोऽध्वनः प्रमाणं मुहुर्मुहुः साध्वसेन पृच्छन्तीम् ॥ ५६८ ॥

---

१. न पश्यति मदोन्मत्तो स्वार्थी दोषं न पश्यति ।
न पश्यति च जन्मान्ध कामान्धो नैव पश्यति ॥

२. अभिसारिका—
उद्दाममन्मथमहाम्बरवेपमाना, रोमाञ्चकण्टकितगात्रलता बहुश्री ।
चिन्ताकिनी भवति या प्रियसंगमाय सा नायिका निगदिता त्वभिसारिकेति ॥

वर्षा के कारण ऊँची नीची जगह का भेद मिट जाने से बार बार पैर फिसलने में सहायक का हाथ पकड़े हुए बार-बार बेचैनी से रास्ते की दूरी पूछती हुई कितना और बाकी है पूछती हुई जाती है ॥५९८॥

अन्यस्त्रीषु च पत्यौ व्यग्रं कृच्छ्रेण कथमपि प्राप्ताम् ।
तत्कालयोग्यपरिजननिवेदितामितिविकल्पसदर्शविधौ ॥ ५९९ ॥

किसी प्रकार कठिनाई से घर में पहुँचकर वह देखती है कि पति अपनी स्त्री में व्यग्र है, अपने आने की सूचना अन्तःपुर में किस प्रकार से दी जाये, इस चिन्ता में वह परेशान है ॥५९९॥

किं प्रेम्णोऽयं महिमा किमुतानन्त्यं धनप्रलोभस्य ।
किंवाऽन्यतः प्रवृत्ता प्रवेपिता वातवर्षेण ॥ ६०० ॥

क्या यह प्रेम से खींचकर आई है, क्या बहुत अधिक धन की लालच में आई है, अथवा वायु और वर्षा से ताड़ित होकर यहाँ आ गई है ॥६००॥

"सन्निहितकलत्राणामनुचितमि" ति बाह्यलोकसंवदनात् ।
अन्यस्मिन्नुदवसिते विसर्जितामिष्टमालतीकेन ॥ ६०१ ॥

नायक के एक स्त्री के पास में होने पर दूसरी स्त्री का नायक के पास जाना अनुचित है, ऐसी सामान्य जनों की बात चीत सुनकर, मालती इच्छित कामुक के घर से निकल गई ॥६०१॥

लोकेन हास्यमाना बिभ्राणा वाससी जलक्लिन्ने ।
रूपमदमुत्सृजन्तीं वैलक्ष्याद्विहसितेन नतवदनाम् ॥ ६०२ ॥

वापिस जाती हुई मालती पर लोग फिर हँसने लगे, जल से भीगे वस्त्रों को धारण किये, रूप का मद उतर जाने से, सफलता न मिलने के कारण लोगों के हँसने से लज्जित होकर मुख को नीचा किये मालती घर से निकली ॥६०२॥

पश्चात्तापपरीता कण्टकदर्भाग्रभिन्नपादतलाम् ।
अस्मद्वच स्मरन्तीं द्रक्ष्यन्त्यभिसारिका सुकर्माणः ॥ ६०३ ॥

पीछे मानसिक दुःख से दुःखी, काटे और दाभ से क्षत विक्षत पैरों वाली, हमारी कही बातों को याद करती हुई, ऐसी तुच्छ अभिसारिका को शुभकर्मा पुण्यात्मा मनुष्य ही देखेंगे ॥६०३॥

इति परमर्मभिदधाना मातरमवधीर्य युष्मदभ्याशम् ।
चौरहृतरत्नं व्रजन्तीं चिद्राचितरक्षिण सखी मुमुचु ॥ ६०४ ॥

(महाकुलकम्)

इस प्रकार कठोर वचन बोलती हुई माता की भी बात को न मानकर आपके पास आती हुई सखी मालती के आभूषणों को लेकर-चोर रक्षक दूर भाग गये ॥६०४॥

एषा प्रपंचरचना यदि भवति वृथा पुरस्तस्य।
वणिगिदमुपेत्य वक्ष्यति सहायसंचोदितो भवतीम् ॥ ६०५ ॥

यदि यह कपट रचना भी निष्फल निकल जावे, तब नायिका के सहायक चेटी आदि से सिखाया वणिक्-नायक सामने हो नायिका को कहेगा[1] ॥६०५॥

"पूर्वं दत्तस्योपरियुक्ताहारस्य केदाराख्रिरात्।
परिचारिकया नीता अन्यानपि मृगयते वयस्यकृते ॥ ६०६ ॥

पहले गिरवी रखी मुक्तामाला के ऊपर तीस केशर तुम्हारी दासी ला चुकी है, अब वह तुम्हारे प्रिय के लिये उस पर और भी माँग रही है ॥६०६॥

यत्तु घनसारकुंकुमचन्दनधूपादि मुक्तकं दत्तम्।
तत्संपुटके लिखितं शृणु पिण्डलिकां करोमि ते पुरतः ॥ ६०७ ॥

तेरे लिये कपूर, केसर, चन्दन, धूप आदि जो खुले हाथ से आज तक देता रहा हूँ, वह सब बही में लिखा हुआ है, आज तेरे सामने उन सबको जोड़ता हूँ, सुनले ॥६०७॥

एतावन्तं कालं नावसरेऽभ्यर्थिता मया त्वमसि।
रिक्तं भाण्डस्थानं सांप्रतमिति याचनं क्रियते" ॥ ६०८ ॥

इतने समय तक मैंने आवश्यक कार्य होने पर भी तुम से नहीं माँगा, अब तुम्हारा रखा सब धन समाप्त हो गया, इसलिये माँग रहा हूँ ॥६०८॥

एवं वादिनि तस्मिन्किंचिल्लज्जानतेक्षणं दृष्ट्वा।
प्रियपूर्वं प्रश्रितया वाचा वाच्यः सवैलक्ष्यम् ॥ ६०९ ॥

वणिक् के इस प्रकार से कहने पर, कुछ लज्जा से आँख नीची करके, देखते हुए, पहले से समान मधुर एवं दीन वाणी से लज्जा के साथ कहना चाहिये ॥६०९॥

"हारस्तवैव तिष्ठतु मध्यस्थस्थापितेन मूल्येन।
शेषं ततो यदन्यत्तद्दिवसैः पूरयिष्यामि" ॥ ६१० ॥

मध्यस्थ व्यक्ति द्वारा ते किये मूल्य से हार तुम ही रख लो। बाकी जो रहेगा उसको भी थोड़े दिनों में दे दूंगा ॥६१०॥

इयमपि कपटप्रथना पूर्वसमा चेत्तदेदमभिधेयम्।
आशंकन्तेऽनिष्टं कातरहृदया हि योषितः प्रायः ॥ ६११ ॥

यदि यह भी कपट रचना पहले की भाँति व्यर्थ निकल जाये, तब कहना चाहिये, कि मुझे किसी अनिष्ट का भय है, क्योंकि प्रायः स्त्रियाँ डरपोक होती हैं ॥६११॥

---

1. वणिज कृतसकलस्य नायकमध्ये दर्शनं कर्तव्यं, येनाय नान्यस्याः किमपि वस्तुक्रिमपि विक्रेतुमारभ्य इति प्रपञ्चकृति ॥ उत्तमकला टीका।

अपटुशरीरे स्वामिनि विज्ञप्ता भगवती मया गत्वा ।
भवतु निरामयदेहो जीवितनाथस्तव प्रसादेन ॥ ६१२ ॥

मैंने स्वामिनी भगवती अम्बादेवी से प्रार्थना की है कि रोगग्रस्त मेरा प्रियतम आपके अनुग्रह से रोगमुक्त हो जाये ॥६१२॥

सम्पन्नवाञ्छितार्था वल्युपहारेण पूजयिष्यामि ।
सामग्रीविरहेण तु न वितीर्णं तत्र मे शङ्का" ॥ ६१३ ॥
(विशेषकम्)

मनेरथ सिद्ध होने पर आपका बलि उपहार से पूजा करूँगी । परन्तु सामग्री न जुटने से वह पूजा अभीनहीं हुई, इसी का भय है कि कहीं देवता कुछ अनगल न करें ॥६१३॥

अस्मिन् व्यर्थीभूते रिक्तीकृतशून्यवेश्मनो दाहम् ।
उत्पाद्य मन्दगामिनि सर्वविनाशं प्रकाशमुन्नेय ॥ ६१४ ॥

यदि यह चाल भी व्यर्थ जाये, तो घर को खाली करके आग लगा दे । और धीमे धीमे शोक में चलते हुए सब कुछ नष्ट हो जाने का प्रचार करना चाहिये ॥६१४॥

स्निग्धत्वमल बुद्ध्वा सहभोजनशयनवसनलिंगेन ।
एभिरुपायद्वारैः कान्तो रिक्तस्त्वया कार्यः ॥ ६१५ ॥

एक साथ में भोजन, शयन, वस्त्र आदि से अतिशय उत्पन्न स्नेह जानकर (वश में हुआ जान कर) बताये हुए इन उपायों से तुझे प्रियजन को भीखमँगा बना देना चाहिये ॥६१५॥

वार्धुषिककदर्थनया भोगध्वंसात् सहायवचनैर्वा ।
अवधारितेऽपि निपुणं वरगात्रि विलुप्तसारत्वे ॥ ६१६ ॥
परुषवचोनिर्धारणमायत्यामहितोपघातीति ।
यत्नादमी विधेया गम्यस्य विमोक्षणोपायाः ॥ ६१७ ॥
(युग्मम्)

हे शोभनगात्रि ! सम्पूर्ण धन निचोड लेने का विश्वास होने पर भी वृद्धावस्था की पीड़ा से, खान पान-वस्त्र आदि की कठिनाई से, अथवा चेरी आदि सहायकों के कहने से भी यदि वह घर को न छोड़े तब—यह समझकर कि कठोर वचन कहना पाछे से हानिकारक होता है, इसलिये उससे छूटने के लिये कामुक को निकालने के लिये ये उपाय बरतने चाहिये ॥६१६–६१७॥

पृथगासननिर्देशः, प्रत्युत्थानादिकेऽपि शैथिल्यम् ।
सासूयसोपहासा आलापाः मर्मवेधि परिहसितम् ॥ ६१८ ॥

अपने से अलग आसन पर बिठाये-दूर रखे, उसके प्रति आदर दिखाने में शिथिलता बरते, निन्दा एवं उपहास करते हुए बातचीत करे, उसके दिल को दुखाने वाला हास्य करे[1] ॥६१८॥

तत्प्रतिपक्षश्लाघा, तदधिकगुणरागकीर्तनावृत्तिः ।
यदृति प्रियमाभीक्ष्ण्यं बहुप्रलापित्वदूषणाख्यानम् ॥ ६१९ ॥

उसके प्रतिपक्षी शत्रु की प्रशंसा करे, कामुक से अधिक गुणों एवं स्नेह का बार-बार वर्णन करे, अनेक बार मीठी बात करने पर वाचालता का दोष निकाले ॥६१९॥

वचनान्तरोपघातैस्तत्प्रस्तुतसंकथासमाक्षेपः ।
तद्व्यवहारजुगुप्सा, सव्यपदेशात्तदन्तिकत्यागः ॥ ६२० ॥

यदि कामुक कोई बात प्रारम्भ करे तो दूसरे प्रसंग की बात लाकर उसकी बात में विघ्न पैदा करे। उसके व्यवहार में घृणा दिखाये, कोई बहाना करके उसके पास से छटक जाये ॥६२०॥

---

1. विरक्त नायिका के लक्षण—

वदनमभिमुखं नैव संयोगेऽप्यतीव सीदति ।
मलीमसनेत्रवेदना, स्पृष्टाङ्गं विधुनोति च ॥१॥
करोत्युच्चा कथाभंगं, पृष्टा वदति निष्ठुरम् ।
नान्यसक्ता करोत्यर्थं, सम्मानितं च नेच्छति ॥२॥
अस्थाने कुरुते रोष, वदनं मार्ष्टि चुम्बिता ।
धत्ताङ्ग कान्तस्पर्शे, रते चेष्टामुपैति न ॥३॥
शेते पराङ्मुखी पूर्वं पश्चादुत्तिष्ठते ध्रुवम् ।
कृतं न मन्यते किञ्चित् दुष्कृतं च प्रयुञ्जति ॥४॥
शिक्षापवचन सूते दोषान् वक्ति मत्सरः ।
स्वपने सुप्तमात्रोऽपि प्रयाणे तु प्रहृष्यति ॥५॥
अभिप्रेतगुणे प्रीतिं मित्रे द्वेष्यमुदीरयत् ।
विरक्ता लक्षणैरेभिर्ज्ञेया योषिद् विचक्षणैः ॥६॥
पराङ्मुखी या शयनं करोति तनोति पीडां सुरते प्रयोगम् ।
निष्कारणं कुप्यति गर्वयुक्ता विरक्तभावा वनिता मता सा ॥७॥

व्याजेन कालहरणं, स्वापावसरे विवर्तनं शयने।
निद्राभिभवस्थापनमुद्वेग सम्मुखीकरणे ॥ ६२१ ॥

किसी बहाने से सम्भोग या उसके पास जाने के समय को निकाल दे, साथ में सोने पर मुख फेर कर सोये। यदि वह हठ से अपना मुख सामने करे तो नींद का बहाना करे, नींद की बेचैनी बताये—नींद आ रही है ऐसा कहे ॥६२१॥

गुह्यस्पर्शनिरोधः, स्वभावसंस्थापनाऽनुयोगेषु।
चुम्बति वदनविकम्पनमालिंगति कठिनगात्रसंकोचः ॥ ६२२ ॥

गुह्य भाग के स्पर्श करने में बाधा करे, राजी खुशी पूछने में कहे कि तुम कौन होते हो पूछने वाले, तुम्हारा क्या मतलब मेरी तन्दरुस्ती से, चुम्बन लेने में मुख को हिलाये—चुम्बन नहीं लेने दे, आलिंगन करने लगे तो शरीर को कठिन बना ले और सकुचित कर ले ॥६२२॥

असहिष्णुत्व प्रहरणकररुहदशनक्षतिप्रसंगेषु।
दीर्घरतौ निर्वेदः, स्वपिहीति रताभियोजके भूयः ॥ ६२३ ॥

नायक द्वारा ताड़न, नखाघात, दश आदि करने के समय में असहिष्णुता दिखाये, लम्बे सम्भोग में ग्लानि या उदासीनता बरते, पुनः सम्भोग प्रारभ करने में सो जाओ, ऐसा कहना—सोने के लिये कहना ॥६२३॥

तदशक्तावनुबन्धो, वैदग्ध्यविकासने तथा हासः।
रात्र्यवसानस्पृहया पुनः पुनर्यामिकप्रश्नः ॥ ६२४ ॥

नायक के सम्भोग में अशक्त होने पर उससे सम्भोग के लिये आग्रह करना या उसमें दोष बताना, कामुक के चतुरता दिखाने में हँसी करना, रात जल्दी समाप्त हो जाये, इसकी चाह करना, बार-बार पहरेदार से पूछना कि अब क्या समय, कितनी रात बाकी है ॥६२४॥

निःसरणं वासगृहादुषसि समुत्थाय तल्पतस्त्वरया।
सरभसमुदीरयन्त्या निशा प्रभाता प्रभातेति ॥ ६२५ ॥

प्रातःकाल होने पर बिस्तर से जल्दी में उठ कर सवेरा हो गया, सवेरा हो गया, जोर से कहते हुए घर से निकल जाना ॥६२५॥

उभयेच्छया प्रवृत्तं निरुपाधि प्रेम भवति रमणम्।
अन्योन्यसमासक्तौ संस्थानमिवाभिजातमणिहेम्नोः ॥ ६२६ ॥

बिना किसी कपट के नैसर्गिक स्वाभाविक, दोनों की इच्छा से प्रवृत्त प्रेम रमणीय होता है, जो प्रेम नायक और नायिका दोनों में भली प्रकार रहता है, वही प्रेमउत्तम कुलोत्पन्न मणि और स्वर्ण के संयोग की भाँति निश्छल होता (निर्दोष) है ॥६२६॥

यस्त्वेकाश्रयरागः परिभवदौर्बल्यदैन्यनाशानाम् ।
स निदानमसन्दिग्धं सीतां प्रति दशमुखस्येव ॥ ६२७ ॥

जो प्रेम एक के आश्रित रहता है; वह बिना सन्देह के परिभव-तिरस्कार, निर्बलता, दीनता और नाश का कारण बनता है, जैसे कि रावण का प्रेम सीता के प्रति एकतरफा था ॥६२७॥

यानि हरन्ति मनांसि स्मितजल्पितवीक्षितानि रक्तानाम् ।
तान्येव विरक्तानां प्रतिभान्ति विवर्तितानीव ॥ ६२८ ॥

अनुरक्त पुरुषों में मुस्कराना, बातचीत, देखना आदि जो भाव मन को हरते हैं, वे ही मुस्कराना, बातचीत आदि भाव विरक्त मनुष्यों में प्रतिकूल-बदले हुए दीखते हैं ॥६२८॥

यद्ग्राहतु किमपि, कथमपि निगृह्यमाणा मुहूर्तमासिष्ये ।
इति यत्र मनः स्त्रीणां रमन्त एव तत्र पशुतुल्याः ॥ ६२६ ॥

किसी प्रकार पकड़ी हुई मुझसे कुछ भी करे, क्षण भर के लिये सब सह लूँगी। इस प्रकार का स्त्रियों का जहाँ मन होता है, वहाँ पर भी पशुतुल्य मनुष्य रमण करते ही हैं ॥६२६॥

यत्र न मदनविकाराः सद्भावसमर्पणं न गात्राणाम् ।
तस्मिन्मुद्रितभावे पशुकर्मणि पशव एव रज्यन्ते ॥ ६३० ॥

जहाँ पर सम्भोग में रति इच्छा सूचक सिसकार-ओष्ठ स्फुरण आदि नहीं, प्रीति पूर्वक अंगों का समर्पण नहीं, इस प्रकार के अविकसित काम विकार वाले पशुकर्म-सम्भोग में पशु ही रस लेते हैं[1] ॥६३०॥

अवधीरणयोपहतः प्रतिदिवसं हीयमानसद्भावः ।
अभिमानवान् मनुष्यो योषितमूढामपि त्यजति ॥ ६३१ ॥

निरन्तर तिरस्कार मिलने से, आत्मसम्मान के नष्ट होने पर, स्वाभिमानी मनुष्य अपनी विवाहित पत्नी को भी छोड़ देता है ॥६३१॥

---

1. मदनविकार—

घोणाग्रं स्फुरतीक्षणे विचलनः कपोदरे मस्स्यवद्,
धम्मिल्लः कुसुमाञ्चिता विगलितः प्राप्नोति बन्ध पुनः ।
प्रच्छन्नौ भवतः स्तनौ प्रकटतां कोषोवटं दृश्यते,
नीवीं च स्लथयति स्थिताऽपि सुदृढ कामेङ्गित योषिताम् ॥

रतिरहस्य ४।२६।

साचिनिकोच सख्या पाणितलं पाणिना समाहत्य ।
यन्नरमुपहसति स्त्री ददातु तस्मै मही रन्ध्रम् ॥ ६३२ ॥

आँख मटका कर अपनी सखी के हाथ पर ताली देते हुए जिस मनुष्य पर स्त्री हँसती हो, उस पुरुष के लिये तो भूमि में समा जाना ही अच्छा है ॥६३२॥

पुरुषान्तरगुणकीर्तनमन्योद्देशेन चात्मनो निन्दाम् ।
शृण्वन्नपि य स्वस्थ स्वस्थोऽसौ कालपाशबद्धोऽपि ॥ ६३३ ॥

जो मनुष्य दूसरे पुरुष के गुणों की स्तुति तथा दूसरे के बहाने अपनी निन्दा सुनकर भी निश्चिन्त होकर जीता है, वह यम के पाशों से बधा होने पर निर्भय है —उसे मृत्यु का भी भय नहीं ॥६३३॥

अवगम्याभिप्राय स्वामिन्या परिजनोऽपि य पुरुषम् ।
अवसहति तिरस्कार्यं तस्य न मूल्य वराटिका पञ्च ॥ ६३४ ॥

अपनी मालकिन का अभिप्राय जानकर भृत्य नौकर चाकर भी जिस पुरुष पर तिरस्कार भरी दृष्टि से हँसते हैं, ऐसे पुरुष का मूल्य पाँच कौड़ी भी नहीं॥६३४॥

तत्त्वातत्त्वसमुत्थव्यवहृत्योर्योऽन्तर न जानाति ।
स्थान भवति स पशुपतिरपसरणयमर्धचन्द्रलाभस्य ॥ ६३५ ॥

जो मनुष्य तत्त्व-वास्तविक, अतत्त्व अवास्तविक कपटमय, व्यवहार या क्रियाओं एवं वचनों का भेद नहीं समझ सकता, वह पशुपति मूढ गलहत्था देकर निकालने योग्य है। (पशुपति महादेव के सिर पर अर्ध चन्द्रमा है, उसी प्रकार यह भी पशुपति अर्धचन्द्र देकर निकालने योग्य है) ॥६३५॥

क्रमगलितगौरवांशो रिक्ततया लाघव परापतित ।
अप्राप्तपरिच्छेद प्लवतेऽसौ युवतिसरिति कुमनुष्य ॥ ६३६ ॥

क्रमश गौरव-अभिमान के कम हो जाने से, खाली होने से हल्कापन आ जाने पर सहारा न मिलने पर कुत्सित मनुष्य युवती रूपी नदी में तैरता है[1] ॥६३६॥

यत्नेन कपटघटिता शृंगारोद्दीपनार्थमनुभावान् ।
रतिशिल्पजीविकाभिर्मूढास्तत्त्वेन गृह्णन्ति ॥ ६३७ ॥

सभोग कला में ही जिनकी जीविका है, ऐसी वेश्यायें, शृंगार-काम को उद्दीप्त करने के लिये, कोशिश के साथ झूठे बनावटी स्मित हास्य, भ्रूविक्षेप कटाक्ष आदि अनुभावों को करती हैं, मूर्ख आदमी इनको वास्तविक समझते हैं ॥६३७॥

---

1. रिक्त सर्वो भवति लघुता पूर्णता गौरवाय —मेघदूत

या धनहार्या नार्यो निर्मर्यादाः स्वकार्यतात्पर्याः।
सह ताभिरपीहन्ते बत मन्दाः संगतमजर्यम् ॥ ६३८ ॥

जो स्त्रियां केवल धन से वश में की जा सकती हैं,[1] उल्लंघित आचार-नियमशाली, अपने मतलब के ही सिद्ध करने में लगी हैं, ऐसी वेश्याओं के साथ मूढ मनुष्य ही कभी न टूटने वाली संगति चाहते हैं ॥६३८॥

अपरोक्षधनो गम्यः श्रीमानपि नान्यथेति निर्दिष्टम्।
कन्दर्पशास्त्रकारैः, कुत कथा लुप्तविभवस्य ॥ ६३९ ॥

कामशास्त्र के बनाने वालों ने प्रत्यक्ष अर्थात् तुरन्त धन देने वाला पुरुष वेश्याओं के लिये सेवनीय कहा है, परन्तु ऐश्वर्यवान् भी तुरन्त न देने वाला असेवनीय कहा है। जिसका धन नष्ट हो चुका है, उसकी तो कोई बात ही नहीं ॥६३९॥

व्यासमुनिनाऽपि गीतौ द्वावेव नराधमौ लोके।
योऽनाढ्यः कामयते कुप्यति यश्चाप्रभुरनयुक्तोऽपि ॥ ६४० ॥

व्यासमुनि ने भी लोक में दो ही मनुष्य सबसे अधम कहे हैं, पहला वह, जो निर्धन होकर सम्भोग की कामना करता है और दूसरा असमर्थ होने पर भी जो क्रोध करता है[2] ॥६४०॥

क्षीणद्रव्ये देहिनि दारा अपि नादरेण वर्तन्ते।
किमुतादानैकरसाः शरीरपण्यवृत्तयो दास्यः ॥ ६४१ ॥

धन नष्ट हो जाने पर निवाहित स्त्री भी पुरुष के प्रति आदर के साथ नहीं बरतती। आदान—लेना ही जिनका अकेला मुख्य धर्म है, शरीर बेचना ही जिनका धधा है, उन वेश्याओं की फिर क्या बात ॥६४१॥

अविदितहेयादेयास्तिर्यञ्चोऽपि त्यजन्ति पीतरसम्।
कुसुमं, किमु कार्यविदो वेश्या नरमात्तसर्वस्वम् ॥ ६४२ ॥

हेय-त्याज्य और उपादेय-ग्राह्य बुद्धि से रहित भ्रमरी भी रस पिये फूल को छोड़ देती है, फिर हेय और उपादान बुद्धि वाली वेश्यायें सम्पूर्ण धन खींच कर मनुष्य को क्यों न छोड़े दें ॥६४२॥

उत्पादयति सदानो रागं रागात्मको यथा नियतम्।
निर्दानोऽपि सदा नो निःसन्देह तथैव मनुजन्मा ॥ ६४३ ॥

---

१. वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरम्—मृच्छकटिक, १।३०.

२. द्वाविमौ पुरुषौ लोके सुखिनौ न कदाचन।
अधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ महाभारत उद्योग ३३।५१.

जिस प्रकार से अनुरक्त मनुष्य का दान (उदारता से धन का व्यय) निश्चित रूप में प्रीति को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार से उदारता से धन का खर्च न करना निःसन्देह प्रीति को उत्पन्न नहीं करता ॥६४३॥

यद्दत्तं तद्दत्तं, भाविनि लाभे च नास्ति बहुमानः ।
तत्कालहस्तनिपतितमनियतपुंसां मुदे वित्तम् ॥ ६४४ ॥

जिन पुरुषों की (वेश्याओं की) धन प्राप्त अनिश्चित है, ऐसी स्त्रियों (वेश्याओं) में जो धन दिया गया, वह तो दिया जा चुका, भविष्य में दूसरा मिलेगा इसका कोई विश्वास नहीं। तत्क्षण जो धन पहले हाथ में आता है, वही धन वेश्याओं की प्रसन्नता के लिये होता है ॥६४४॥

पीडितमधु मधुजालं तुच्छीभूतं च मन्मथग्रस्तम् ।
मुंचन्ति मदनशेषं क्षुद्राश्च प्रकटरामाश्च ॥ ६४५ ॥

मधु निचोड़े शहद के छत्ते को, काम से पीड़ित व्यक्ति तुच्छ-खाली हो जाने पर केवल मदन के (छत्ते में केवल मोम तथा मनुष्य में केवल काम) शेष रहने पर शहद की मक्खियाँ और वेश्यायें छोड़ देतीं हैं ॥६४५॥

एकः क्रीणात्यद्य, प्रातर्भविता तथा परः क्रेता ।
अन्यवशे क्षणमेकं, न विक्रयः शाश्वतोऽस्ति वेश्यानाम् ॥ ६४६ ॥

आज रात के लिये वेश्या को एक आदमी खरीदता है, प्रातः काल होने पर दूसरा खरीददार आयेगा। वेश्या थोड़ी देर के लिये ही एक के अधीन होती है, वेश्याओं की स्थायी खरीददारी या बिक्री नहीं होती[1] ॥६४६॥

संदर्शितपरमार्थं भ्रूक्षेपकटाक्षदष्टहसितादि ।
शृण्वन्ति ये सकर्णास्तत्कृतमन्यत्र संक्रान्तम् ॥ ६४७ ॥

जो चतुर व्यक्ति वेश्याओं के दिखाये भ्रूक्षेप-कटाक्ष-हसित आदि को सच्चे अर्थों में वास्तविक समझते हैं, वे बुद्धिहीन मनुष्य अन्त में विनष्ट हो जाते हैं ॥६४७॥

यदि नाम निराकरणे न समर्था छिन्नकार्यबन्धेऽपि ।
काचिन्महानुभावा बोद्धव्यं तदपि चेतनावद्भिः ॥ ६४८ ॥
तेनार्थेनोपकृतं तयाऽपि तस्य स्वदेहदानेन ।
तच्चातीतं सम्प्रति, निरर्थकः शुष्कशृंगारः ॥ ६४९ ॥

---

1. वेश्यानामनेकैः सह रमणक्रीडोचिता ।
निर्यात्येको विशत्यन्यः परो द्वारि प्रतीक्षते ॥

यदि कोई अति उदारचेता मनुष्य यह समझे कि वेश्या को देहदान तथा पुरुष के अर्थ दान रूपी कार्य के पूरा हो जाने पर भी नायक को घर से नहीं निकालना चाहिये तो भी बुद्धिमान मनुष्य को सोचना चाहिये कि नायक ने धन देकर वेश्या का उपकार किया, वेश्या ने भी अपना शरीर देकर उसका भला किया, यह तो अब गत चुका, इसलिये अब उसका यह शृंगार-संभोगेच्छादि रूप शृंगार या हास्य कटाक्ष भ्रूक्षेप आदि शृंगार निरर्थक है या झूठा है॥६४८-६४६॥

अवधीरणा रसायनमपमानो भवति यस्य परितुष्टये ।
योग्योऽसौ पुरुषखर खरतरनिर्भर्त्सनोच्चिलगुडानाम् ॥ ६५० ॥

जिस मनुष्य के लिये तिरस्कार रसायन का काम करे,[1] अपमान से जो प्रसन्न हो, ऐसा गधा पुरुष कठोर भर्त्सना वाक्य रूप के ही योग्य है ॥६५०॥

दीपज्वालाललने प्रयत खलु निर्वृतिं तयोर्भिन्नयान् भेद ।
प्रथमा स्नेहेन विना, तथा परा स्नेहयोगेन ॥ ६५१ ॥

दीप की ज्वाला और ललनाएं दोनों ही निर्वृति निर्वाणावस्था को पहुँचते हैं, परन्तु इन दोनों में इतना भेद है, कि दीप स्नेह-तेल के बिना निवृत्ति (समाप्ति) को प्राप्त होता है, और कामिनी स्नेह के प्रेम के योग से निवृत्ति आनन्द का अनुभव करती है ॥६५१॥

धर्मः कामादभिनवगुणशालिनि रसस्य मदनरोगवत ।
अर्थोऽर्थवतोऽभिगमात्, कामः समरतनरोपभोगेन ॥ ६५२ ॥

कामातुर, निर्धन व्यक्ति को निःस्वार्थ रूप में सतोष करने से (इच्छा पूरी करने से), वेश्या को धर्म पुरुषार्थ पूरा होता है, धनवान् से धन लेने से अर्थ पुरुषार्थ होता है, समान रत वाले पुरुष के उपभोग से काम पुरुषार्थ होता है[2] इस प्रकार वेश्या के तीनों पुरुषार्थ पूर्ण होते हैं ॥६५२॥

---

1. रसायन —सब इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला द्रव्य—
    यज्जराव्याधिविध्वंसि वयसः स्तम्भकं तथा ।
    चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद् रसायनम् ॥
२ समरत —समप्रमाणाभिलाषयोः स्त्रीपुंसयो रतं समरतम् ।
  समरत में सुख अनुभव होता है—दोनों काम संतुष्टि और आनन्दानुभव होता है—
    यथा कुचकलशकरद्वयन मन्मथगृहे,
    प्रमथाम मन्द विशति यदि रेतविरहितम् ।
    तदस्तस्य मा तं विपरीतरतमुष्म च जानके,
    धन्दुत सा न मदनसदन तत्र कुरुत ॥ शृंगार दीपिका २।१४

यस्तु न धर्मप्राप्त्यै नार्थाय न कामसाधनोपायः ।
स पुमान्सच्चरितधनैः पर्यनुयुक्तः किमाचष्टे ॥ ६५३ ॥
(संदानितम्)

इसके विपरीत वेश्या के उपभोग से पुरुष का कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वेश्या सेवन में प्रायश्चित्त बताया है, इस लिये पुरुष को धर्म नहीं होता[1], वेश्या सेवन से धन की हानि है, इसलिये अर्थ भी नहीं मिलता, वेश्या सेवन में सच्चा काम भी पुरुष को नहीं मिलता, इस प्रकार वेश्या सेवन में कोई भी पुरुषार्थ पुरुष का पूरा नहीं होता। सदाचार धन वाले पुरुषों से पूछा जाने पर वेश्या सेवन करने वाला पुरुष क्या कहेगा–कुछ भी नहीं ॥६५३॥

कामोद्वेगगृहीतं धूर्तैरपहस्यमानशृंगारम् ।
दारिद्र्यहतं यौवनमबुधानां केवलं विपदे ॥ ६५४ ॥

काम के कारण व्याकुल बेचैन बने, धूर्त विट जिस शृंगार रतिरस पर हँसते हों, दरिद्रता से मारे बुद्धू मूर्खों का वेश्यागमन आपत्ति के लिये ही होता है[2] ॥६५४॥

व्यपगतकोपरागिणि याति लयं पानमात्रलाभहृता ।
क्षुद्रा मधुकरिकाब्जे न तु गणिकाचिन्तितस्वार्था ॥ ६५५ ॥

क्षुद्र-तुच्छ बुद्धिहीन भ्रमरी मधुपान के लोभ से हो विकसित कमल के राग से खिंचकर सायंकाल उसी में बन्द हो जाती है, परन्तु अपने मतलब का ध्यान रखने वाली गणिका कोप-खजाना खाली हुए निर्धन मनुष्य में राग के कारण आसक्ति नहीं करती, उसे छोड़ देती है[3] ॥६५५॥

कण्डूतेरसतीकरात्पुलिंगविमर्दनात् ।
न द्रवन्ति न तृप्यन्ति योषितो मोचमेहने ॥
उच्चैऽपि मृदुगुह्यान्तः संपीडा मन्मथे हृदि ।
न द्रवन्ति न तृप्यन्ति मनःतत्त्वोद्धि मन्मथः ॥ शृंगारदीपिका ३।१९ •

१. पशुवेश्याभिगमने...प्राजापत्यव्रतं चरेत्–पाराशरस्मृति –१०।१६,
(ख) वेश्याऽसौ मदनज्वालारूपेन्धनसमेधिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥

२. मूर्खो द्विजातिः, स्थविरो गृहस्थः, कामी दरिद्रो धनवान्तपस्वी ।
वेश्या कुरूपा, नृपतिः कदर्यो, लोके षडेतानि विडम्बनानि ॥

३. हुताशज्वालाभे स्थितवति रथाङ्गस्तशिखरे,
पिपासुः किंजल्कं प्रविशति सरोजं मधुकरः ।
तदन्तः सरोधं गच्छति न सद्यागमयत्नं,
जनोऽर्थी नापायं विमृशति फलैकान्ततृषितः ॥

यासां कार्यापेक्षा सकटाक्षनिरीक्षणेऽपि वेश्यानाम् ।
दर्शनमात्रक्षुभितैर्वञ्च्यन्ते ता कथं पुरुषैः ॥ ६५६ ॥

जिन वेश्याओं का कटाक्ष—आँख टेढ़ी करके देखना भी स्वार्थ से खाली नहीं होता, वे वेश्यायें अपने दृष्टिपात से ही चंचल चित्त वाले पुरुषों को बेचैन बना देती हैं फिर वे स्वयं इन पुरुषों से कैसे ठगी जा सकती हैं ॥६५६॥

क्लेशाय दुर्भगानां मानस्तुतिगात्रसंगविन्यासम् ।
गणिकाभिनयचतुष्टयमाकृष्ट्यै स्वापतेययुक्तानाम् ॥ ६५७ ॥

वेश्या का मान, स्तुति, गात्र विन्यास और अंग विन्यासरूपी चार प्रकार का अभिनय[1] अभागे निर्धनों को कष्ट देने के लिए होता है, और यही चार प्रकार का अभिनय धनस्वामी धनियों के आकर्षण के लिये होता है ॥६५७॥

किं धक्ष्यति भीमोऽपि ज्वलनः खलु तादृशं कुलागारम् ।
यो दह्यते न निरसः चिरक्रमासीतिरस्कारैः ॥ ६५८ ॥

जो निर्धन निरस वेश्या के तिरस्कार से भी नहीं जला, ऐसे निरस (शुष्क) कुलांगार को प्रचण्ड भी अग्नि क्या जलायेगा ? वह भी नहीं जला सकती ॥६५८॥

गृहमेतदीश्वरगणाः कान्तारं दुष्प्रवेशमन्येषाम् ।
पृष्टस्त्वमिह सुभुजया, न मालती कामसत्रदानपरा ॥ ६५९ ॥
(महाकुलकम्)

वेश्याओं का घर धन से सम्पन्न पुरुषों के लिए घर होता है, निर्धनों के लिये दुष्प्रवेश्य बीहड़ जंगल है। कन्या से किया हुआ यह तिरस्कार है, मालती का कामसत्र दान नहीं खुला हुआ है, जो चाहे यहाँ से दान ले जाये ॥ ६५९ ॥

इति चोदितगृहचेटी निगदति कटुकाक्षराण्युद्वलद्या ।
आकर्णयतो वाचा टङ्कोपहतस्य मर्मभिदः ॥ ६६०॥

एवमभिधीयमानो बुध्यति यदि नो पशुर्नराकारः ।
तदिदं सुन्दरि वाच्यं प्रश्नितवचसा त्वया कामी ॥ ६६१ ॥

स्वामिनी से प्रेरित गृहदासी द्वारा अन्य को लक्ष्य बनाकर इस प्रकार कहे मर्मभेदी-कठोर कटुए वचन सुनकर भी टंक से मारा हुआ मनुष्यरूपी पशु यदि

---

1 अभिनय—भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः ।
आंगिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्विकस्तथा ॥ सा० द० ६।१
इनमें मान अभिनय सात्विक, स्तुति वाचिक, गात्रभंग आंगिक और गात्र विन्यास अभिनय आहार्य अभिनय है ।

न समझे, तब हे सुदरि, तुझे कोमल वचनों में इस प्रकार से उसे कहना चाहिये[1] ॥ ६६०–६६१ ॥

प्रीयत एव तवोपरि हृदय मे, किन्तु गुरु जनाधीना ।
मातृवचोऽतिक्रमणं न समर्था सविधातुमहम् ॥ ६६२ ॥

मैं तुझको हृदय से प्रेम करती हू, परतु मैं गुरुजनों के अधीन हूँ, मैं माता के वचनों का अतिक्रमण नहीं कर सकती, उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती ॥ ६६२ ॥

अर्हसि तावदतस्त्व गन्तुमित कतिपयान्यपि दिनानि ।
पुनरपि भवतैव सम भोक्तव्य जीवलोकसुखम् ॥ ६६३ ॥

इसलिये तुम्हारा यहाँ से कुछ दिनों के लिये चले जाना ही अच्छा है। फिर भी इसके पीछे आपके ही साथ जीवन का सुख भोगूँगी ॥ ६६३ ॥

निर्वासितेऽथ तस्मिन् य कामी पूर्वमुज्झितो भुक्त्वा ।
तस्य प्राप्तविभूतेर्युक्तिरिय भिन्नसधाने ॥ ६६४ ॥
उपवनलीलाविहरणहावोज्ज्वलमजुलस्य सह तेन ।
वर्णनमितिवृत्तस्य स्मरभावविकाराश्च, वीक्षिते तस्मिन् ॥ ६६५ ॥

इसके निकाल देने पर—पहले जिस कामुक को भोग करके—चूस करके छोड दिया हो, उसने यदि पुन धन प्राप्त कर लिया हो, तो उस टूटे हुए को मिलाने म यह चातुरी बरते[2]। कामुक दिखाई देने पर उसके सामने उपवनों में किया लीला विहार (पिकनिक खेल) हाव शृगार सूचक विकारों से सुन्दर बने, मनो हर, स्थायी और व्यभिचारी रूपी शृगारज विकारों का तथा पिछली बातों का वर्णन करे ॥ ६६४–६६५ ॥

---

१ हेमन्तमार्जार इवातिलीन स चेन्न निर्याति निरस्यमान ।
तदैव कार्यंगनुमर्मभेदी प्रवर्धमानः परुषोपचार ॥
क्लीवस्य यस्याहिन न भोगसपत्न किं युवतिश्यामवने करोति ।
न यस्य हस्तेवरमूल्यमस्ति स किं समारोहति नाथमग्रे ॥
प्रक्षीणवित्तेन निरुद्यमेन किं रूपयुक्तेन करोति वेश्या ॥
समयमातृका ८।७९, ८५ ८६

२. क्षीण निरस्त पुनराप्तवित्त भजेत यत्नाहृतवित्तमन्यम् ॥
प्राप्ते कान्ते कथमपि धनादानपात्रे च वित्ते,
त्व मे सर्वं त्वमसि हृदय जीवित च त्वमेव ।
दृष्ट्वा त्व क्षपितविभव कञ्चुकाभ भुजङ्गी,
त्यक्त्वा गच्छसघनमपर वैशिकोऽय समाप्त ॥ समयमातृका ८८-८९

इदमुपवनमतिधन्यं निर्भरमालिंगितं सुरभिलक्ष्म्या ।
मत्कण्ठाश्रितपाणिर्विभ्राम स यत्र जीवितायीशः ॥ ६६६ ॥

वसन्त शोभा से अतिशय रूप में आलिंगित यह उपवन अति भाग्यशाली है, यहाँ पर मेरे प्राणेश्वर मेरे गले में हाथ डाले घूमते थे ॥ ६६६ ॥

सख्य इतो भ्रमरकुलत्रासितया प्रियतमो मया सहसा ।
धनीभवत्पयोधरमुपगूढो धीरसीत्कारम् ॥ ६६७ ॥

मित्र ! यहीं पर भ्रमरों से डरी मैंने मुककर मन्द सीत्कार करते हुए स्तनों के साथ प्रियतम का सहसा आलिंगन किया था¹ ॥ ६६७ ॥

रणदिन्दिन्दिरवृन्दे कूजत्कलकण्ठरावरमणीये ।
अत्रातिमुक्तकगृहे सरदीरणविधुतकुसुमसंछन्ने ॥ ६६८ ॥
मयि जाताधिकरागो बलवति मदने सहायसामग्र्या ।
कान्तः पल्लवशयने नो तृप्तिमगाद्विविक्तकार्येषु ॥ ६६९ ॥
(युगलकम्)

गूँजते हुए भ्रमर समूह के, कोयल के सुन्दर कुहकते हुए, बहती हुई वायु से कम्पित फूलों से ढँपे इसी वासन्तीलता कुञ्ज में, उद्दीपन अनुभावरूपी सहायक सामग्री से काम के बलवान् होने पर मुझमें अतिशय प्रेम उत्पन्न हो जाने पर, कान्त प्रेमी को कोमल किसलय की बनी शय्या पर एकान्त में करणीय कार्यों में तृप्ति नहीं हुई थी ॥ ६६८–६६९ ॥

प्रेंखाप्रहरणयुक्त्या विघ्यन्पार्श्वद्वयं नखैर्यूनः ।
चक्रे मां मदनमयीं अतविप्रेंखामिमां समारूढाम् ॥ ६७० ॥

इन सामने दीखने वाली लताओं के झूले पर चढ़े हुए प्रेमी ने; झूले को आन्दोलित करने के (पींग चढ़ाने के) बहाने; नखों से नोंचकर मुझको कामातुर बनाया था ॥ ६७० ॥

स्पृहणीयोऽयमशोकः स्पृष्टो यो वल्लभेन हस्तेन ।
अस्मदवतंसनार्थं नूतनदलपल्लवान् विदारयता ॥ ६७१ ॥

यह अशोक अत्यन्त भाग्यशाली है, जिसमें प्रियतम के हाथ से छूने पर मेरे कर्णफूल के लिये, इसके कोमल पत्त फूट आते हैं ॥ ६७१ ॥

अस्मिन्सहकारतले तस्योत्संगे सलीलमासीना ।
अशृणवमहमिति वाचः पठन्ती विलसितानि तरुणानाम् ॥ ६७२ ॥

---

१. कोपप्रशमने भीतो रुष्टोतो पुनरागमे ।
संभोगे च समादिष्टौ विशेषेण मुग्धारतः ॥

इसी आम्र वृक्ष के नीचे प्रियतम की गोद में विलास के साथ बैठे हुए मैंने तरुणों की विलास क्रीडा को देखते हुए कानमें पडनेवाली इन बातों को सुना था ॥ ६७२ ॥

उत्थापय मानरसे दयितं चरणाग्रनिपतितं तूर्णम् ।
अत्याकृष्टं त्रुट्यति सुदृढमपि प्रेमबन्धन मूढे ॥ ६७३ ॥

बातें जो सुनी—हे अभिमानिनि ! पैरों में पड़े प्रियतम को जल्दी से उठा।[1] हे मूढे ! सुदृढ प्रेमबन्धन भी बहुत अधिक खींचने पर टूट जाता है ॥ ६७३ ॥

तिष्ठन्नपि यातसमः किं तेन निवारितेन सखि पशुना ।
यामीति निष्पकम्पा यिनि सृता यस्य साऽधरे वाणी ॥ ६७४ ॥

हे सखि ! जिसके मुख से मैं जाता हूँ, यह कठोर वचन बिना किसी दया के निकल गये, वह नर पशु बैठा हुआ होने पर भी गये हुए के समान ही है, उसको रोकने से कोई लाभ नहीं ॥ ६७४ ॥

आयु सारं यौवनमृतुसारः कुसुमसायकवयस्यः ।
सुन्दरि जीवितसारो रतिभोगरसामृतस्वादः ॥ ६७५ ॥

आयु का सार तो यौवन है, ऋतुओं का सार वसन्त है। हे सुन्दरि ! जीवन का सार तो रति भोग-रसामृत का स्वाद है[2] ॥ ६७५ ॥

रम्यं कुसुमस्तबकं कुरु मे प्रिय कैंकिरातमवतंसम् ।
तिष्ठतु वा किमनेन प्रत्यग्रमशोककिसलयं चारु ॥ ६७६ ॥

हे प्रिय ! मेरे लिये किंकिरात के सुन्दर फूल के गुच्छे का कर्णफूल बना दो। अथवा इसको छोड दो, अशोक का टटका कोमल पत्ता सुन्दर है, उसका कर्णफूल बनाओ ॥ ६७६ ॥

आस्तामास्तामेतत् प्रापय मां सिन्दुवारमभिरामम् ।
नहि नहि, राजति सुतरां चूतद्रुममंजरी कर्णे ॥ ६७७ ॥

---

१. मोदायुक्ताऽपि या योषिदतिरुष्टाऽपि या भवेत् ।
पादे पतन्तं पुरुषमनुवर्तेत सर्वदा ॥

२. यौवन—दृष्टिश्यामासहनो मत्तेभस्येव मत्तता ।
विधरो युवभावो यस्तद्यौवनमुदाहृतम् ॥

(ख) यत्र मदनः प्रगल्भव्यापारश्चरति हृदि मुग्धस्य वपुषि—मालती-माधव. १।२१.

(ग) गीतायें—मासानां मार्गशीर्षोऽहं ऋतूनां कुसुमाकरः ।

इसको भी छोड़ो—मुझे रमणीय सिन्दुवार के पास ले चलो। नहीं नहीं, आम्रवृक्ष की मंजरी कान में सुन्दर लगती है ॥ ६७७ ॥

> धिक्तारुण्यमकान्तं धिक्कान्तं यौवनेन रहितं च ।
> धिग्द्वयमपि मन्मथशास्त्रविकासं विना सुरतम् ॥ ६७८ ॥

कान्त प्रियतम के बिना तरुणावस्था को धिक्कार है, यौवन से रहित प्रियतम को धिक्कार है, कान्त और प्रियतम दोनों को धिक्कार है यदि सम्भोग कामशास्त्र के प्रयोगों के बिना होता है[1] ॥ ६७८ ॥

> जनितोऽप्यपराधशतैर्वामे तस्मिंश्चिरप्ररूढोऽपि ।
> अधिगतमधुना सख्या न वसन्तमतीत्य वर्तते मानः ॥ ६७९ ॥

हे वामे सुन्दरि ! अपर स्त्री गमन आदि सैंकड़ों अपराधों से उत्पन्न, देर से बढ़ता हुआ भी मान वसन्त समय के आने पर उसमें नहीं टिक सकता, इस बात को मैंने आज सखी से जाना ॥ ६७९ ॥

> वर्षशतस्य हि सारः काललवः प्रथममेलकस्थानम् ।
> सचकितमागच्छन्ती सोत्कलिका यत्र दृश्यते रमणी ॥ ६८० ॥

सैंकड़ों वर्षों का सार वह काल क्षण है, जिस क्षण में रमणी उत्कण्ठित होकर प्रिय के साथ मिलने के संकेत स्थल में चकित, विस्मय, भय, कम्प के साथ आती हुई देखी जाती है ॥ ६८० ॥

> किं निर्मितोऽसि धात्रा नवोऽपरः किमु वसन्तगुण एषः ।
> कुसुमशरापूर्णतूणः किमुताभवदन्य एव कन्दर्पः ॥ ६८१ ॥

किसी सुन्दर व्यक्ति के प्रति उक्ति—क्या ब्रह्मा ने यह नया ही बनाया है, अथवा क्या वसन्त गुण—मत्त कोकिल की कूहक आदि से भिन्न दूसरा गुण है, अथवा कामदेव से अलग पुष्पबाणों से भरे तूणीर वाला दूसरा कामदेव है[2] ॥ ६८१ ॥

> नो पश्यसि यदि चक्षुः प्रचुरोद्गलकुसुमसुरभिरमणीया ।
> परभृतकूजनमिश्रं न शृणोषि यदि द्विरेफझंकारम् ॥ ६८२ ॥

---

१. नारी पतिविरहिता न्यवरहसाप्यचालैर्विहीनसुरतं रसहीनकाव्यो ।
   कुम्भागुरुधूमपिकस्मुखरराद्धना धिग्धेनानि पवनवनर्गवर्तं वृथा स्युः ॥
   शृङ्गाराष्टी पद्य ३।५.

२. दृष्टेऽप्यकुत्सिते दोषानुरागे पंचसायके ।
   नवं विनिर्मिते कामसूत्रान प्रमाणतः ॥ समयमातृका ७।४.

गन्धं यदि च न लमसे वासितदिग्व्योम सुमनसां हृद्यम् ।
अनुभवसि यदि स्पर्शं नो शीतलदाक्षिणात्यपवनस्य ॥ ६८३ ॥
रसनेन्द्रियैकशेषः परसंचार्यो जनेन परिभूतः ।
नार्हसि ततोऽपि मुक्त्वा निजाश्रमं गन्तुमन्यतो नितराम् ॥६८४॥
(कुलकम्)

बहुत से विकसित फूलों की सुगन्ध से भरी दिशाओं को यदि नहीं देखती, कोयलके कूहक से मिली भ्रमरों की झंकार को यदि नहीं सुनती, पुष्पों की दिशाओं में फैली मनोहर सुगन्ध को यदि नहीं सूंघती, शीतल दक्षिण पवन के स्पर्श का यदि अनुभव नहीं करती, तो केवल जिह्वा इन्द्रिय के वश में होकर-पराधीन बनकर अपने आश्रम निवास स्थान को छोड़कर; लोगों से तिरस्कृत होकर अन्यत्र जाना योग्य नहीं ॥ ६८२-६८४ ॥

अस्मिन् सरसि सलीलं करयन्त्रविनिर्यदम्बुधाराभिः ।
दयितेन ताडिताऽहं, मयाप्यसावाहतो मृणालिकया ॥ ६८५ ॥
इसी तालाब में हाथों से बनाई पिचकारी द्वारा जल फेंककर--लीला-विलास युक्त चेष्टा करते हुए प्रिय ने मुझे मारा था, मैंने भी मृणालिका--कमलनाल से उसे मारा था ॥ ६८५ ॥

पुनरन्तर्जलमग्नां मामुपगम्याविभावितः सहसा ।
उच्चिक्षेप सहासं हासितसन्निहितपरिवारः ॥ ६८६ ॥
फिर जल में गोता लगाकर--मेरे बिना जाने सहसा मेरे पास में आकर हँसते हुए मुझे ऊपर उठा लिया, इसको देखकर पास में बैठे सब सम्बन्धी जन हँसने लगे ॥ ६८६ ॥

संसक्तार्द्रावरणं जघनं ननु पश्यतस्तदा तस्य ।
प्रथमाकांक्षाकृतं भेजे संभोगशृंगारम् ॥ ६८७ ॥
शरीर के साथ सटे--चिपके हुए गीले वस्त्रों वाले जघन प्रदेश को देखते हुए; उसमें प्रथम चाह सूचक, संभोग शृंगार उत्पन्न हो गया ॥ ६८७ ॥

काल-प्रदेश-वेष-व्यापार-स्थितिविशेष-घटनाभिः ।
चिररूढोऽपि हि यूनां नवत्वमुपनीयते रागः ॥ ६८८ ॥
युवाओं का पुराना हुआ स्नेह--काल वसन्त, वर्षा आदि समय, प्रदेश-उद्यान, विहार आदि देश, वेष-पतले महीन वस्त्रों के परिधान, व्यापार-शृंगार चेष्टा, स्थिति-अंगादि विक्षेपण अवस्था आदि के कारण फिर से नया हो जाता है ॥ ६८८ ॥

सादरमर्पयतोऽब्जं गोत्रस्खलनापराधिनस्तस्य ।
सस्पृहं स्मरामि सहसा विलक्षताक्लिष्टहसितस्य ॥ ६८९ ॥

मानपूर्वक मुझको कमल भेंट करते हुए गल्ती से मेरे नाम के स्थान पर दूसरी सखी का नाम लेने के अपराध के कारण सहसा लज्जा आ जाने पर, आनन्द से हँसते हुए नायक का उत्कण्ठा पूर्वक मैं स्मरण करती हूँ[1] ॥ ६८८ ॥

प्रत्यग्रनखव्रणितस्तनान्तरे क्षिपति लोचने स्पृहया ।
प्रेयसि तच्छादनकमकरत्वमहमब्जिनीपत्रम् ॥ ६९० ॥

स्तनों के बीच में नूतन किये नखक्षतों को ललचाई आँखों से देखते हुए प्रियतम के, मैंने उनको ढाँकने के लिए अपने हाथों से ही लीलाकमलदल का काम लिया–हाथों से उनको ढाँपा[2] ॥ ६९० ॥

क्षिप्त्वा तर्कितमम्भो गर्भितनलिनीपलाशपुटभावात् ।
आहतया यद्विरुतं स्वस्थधिया नैव शक्यते कर्तुम् ॥ ६९१ ॥

प्रियतम के नलिनीपत्रों के बने सम्पुटों में जल भरकर सहसा बिना मेरी जानकारी के जल से चोट मारने पर जो शब्द निकला, वैसा शब्द स्वस्थ अवस्था में मुझसे नहीं किया जा सकता ॥ ६९१ ॥

सुश्लिष्टो हावविधिर्मदनालसगात्रजृम्भितं ललितम् ।
गूढस्थानप्रच्छादनमंगुलिविस्फोटनं, स्मितं सुभगम् ॥ ६९२ ॥
नीवीबन्धविमोक्षो, मुहुर्मुहुः केशपाशविश्लेषः ।
स्वाधरदशनग्रहणं, बालकपरिचुम्बनं, रतोत्सुकता ॥ ६९३ ॥

भली प्रकार करती हावविधि (हाव प्रयोग), काम के कारण अलसाये अंगों से सुन्दर जम्भाई लेना, वस्त्र ठीक करने के बहाने से स्तन बाहुमूल-नाभि जघन आदि गुह्य अंगों को छिपाना, अँगुलियों का चटकाना, मनोहर मुस्कान, बँधी हुई नीवी को ढीला करने के लिए गाँठ खोलना, बँधे हुए जूड़े को पुनः बाँधने के बहाने बार बार खोलना,

---

1. विहसित—विकसितकपोलान्तमुत्फुल्लामललोचनम् ।
किञ्चिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं तद्विदो विदुः ॥
2. नखक्षत काल—माने नवीनसुरते विरहे प्रवासे,
क्रुद्धप्रसन्नेऽपि विरतौ च मदे प्रयोज्यः ॥
[कुचद्वये–उदरपीठस्य श्रोणामलविज्ञस्य वा स्पन्दनकाले]

अपने निचले ओठ को दाँतो से काटना, गोद में लिये बालक का चुम्बन—ये रतोत्सुका कामिनी के लक्षण हैं[1] ॥ ६६२-६६३ ॥

साकाङ्क्षितं क्षिपन्त्यास्तरलायतलोचने मुहुः कान्ते।
उद्दिश्य तद्वयस्यकमिति शोकग्रस्तवर्णगिरः ॥ ६६४ ॥
(कुलकम्)

प्रियतम को चाहभरी दृष्टि के साथ चचल दीर्घ आँखों से बार बार देखती हुई, उसीको लक्ष्य करके, उसके मित्र के साथ शोकग्रस्त वाणी से बात करती है ॥ ६६४ ॥

एकीभावं गतयोर्जलपयसोर्मित्रचेतसोश्चैव ।
व्यतिरेककृतौ शक्तिर्हंसानां दुर्जनानां च ॥ ६६५ ॥

पानी और दूध की भाँति एक बने आप दोनों मित्रों के हृदय को अलग करने में, फाड़ने में हंस और दुर्जन ही समर्थ हैं ॥ ६६५ ॥

येन तदा मामूचे परिजनमुत्सार्य विवृतनयमन्युः ।
दर्शितहितस्वरूपः परपीडाकरणपण्डितः प्रखलः ॥ ६६६ ॥

हमारा प्रेम स्थिर हो जाने पर इस दुर्जनता के कारण ही नौकर चाकर आदि को हटाकर—नवीन क्रोध को दिखाते हुए, मेरे प्रति सुहृद्भाव प्रगट करते हुए आपका मित्र मुझे कहने लगा—क्योंकि अतिशय दुष्ट व्यक्ति दूसरे को दुःखी करने में पण्डित होते हैं ॥ ६६६ ॥

अतिकोमलमतिपरिमितवर्णं लघुतरमुदाहरति शठः ।
परमार्थतः स हृदयं दहति पुनः कालकूटघटितं इव ॥ ६६७ ॥

धूर्त मनुष्य बहुत ही कोमल एवं बहुत ही थोड़े शब्दों में एवं संक्षेप से कहता है, वह वचन कालकूट महाविष की भाँति वास्तव में हृदय को जलाता है[2] ॥ ६६७ ॥

अविदितगुणान्तराणां नो दोषः प्राप्तदेशवासानाम् ।
स्वाधीनकुङ्कुमा अपि यद्विदधति बहुमतिं नीले ॥ ६६८ ॥

---

१ स्त्री कान्तं वीक्ष्य नाभिं प्रकटयति मुहुर्विक्षिपन्ती कटाक्षान्,
दोर्मूलं दर्शयन्ती रचयति कुसुमापीडमुत्क्षिप्तपाणिः ।
रोमाञ्चस्वेदजृम्भाः श्रयति कुचतटस्रंसि वस्त्रं विधत्ते,
सोत्कण्ठं वक्ति, नीवीं श्लथयति, दशत्योष्ठमङ्गं भिनत्ति ॥
(ख) पंचसायक (४।३०) और अनंगरंग (४।२८) में ये लक्षण दिये हैं।

२ मधुरिमरुचिरं वचः खलानाममृतमहो प्रथमं पृथु व्यनक्ति ।
अथ कथयति मोहहेतुमन्तर्गतमिव हालाहलं विषं तदेव ॥

दूसरे देश में रहने वालों को दूसरे के गुणों का यदि ज्ञान न हो तो इसमें कोई दोष नहीं। जिन काश्मीरियों को केशर सुलभ है, वे भी नील की चाह करते हैं[1] ॥ ६९८ ॥

क्व महीतलरम्भा त्वं न्यक्कृतचन्द्रप्रभा स्वदेहरुचा।
चित्रलता क्व वराकी नीचैरुपसेवितारोहा ॥ ६९९ ॥

कहाँ तुम पृथ्वी की रम्भा, जिसने अपनी देह की कान्ति से चन्द्रमा की ज्योत्स्ना को भी नीचा दिखा दिया। कहाँ दीन चित्रलेखा जो नीचों से उपसेवित है। (रम्भा-रम्भा नामक अप्सरा और कदली, चित्रलेखा नामक अप्सरा एवं मंजिष्ठा-मजीठ की लता, आरोह ऊपर चढ़ना और नितम्ब) ॥ ६९९ ॥

यस्यार्थे न विगणितः महात्मानो महाधनाः कुलजाः।
सोऽद्य हृदयेन तस्यां, त्वयि तिष्ठति बाह्यवृत्तेन ॥ ७०० ॥

जिसके लिए तुमने आसक्ति से नम्र बने, कुलीन एवं अतिशय धनवान् मनुष्यों को भी छोड़ दिया, वही कामुक आज हृदय से दूसरी सपत्नी को चाहता है, तुम्हारे लिये तो केवल बाहरी दिखावे से बरतता है ॥ ७०० ॥

तामेव समाचरणं सद्भावेन प्रवर्तितं निपुणाः।
विन्दन्ति यत्र कुशलाः स्नेहविकल्पे प्रभेदेन ॥ ७०१ ॥

उसके सद्भाव-प्रेम आदि के दिखावे पर विलास आदि चिह्नों से मैंने इस बात को जाना है; जिस प्रकार कि प्रेम के न रहने पर व्यवहार की भिन्नता से कुशल व्यक्ति प्रेम की न्यूनता जान लेते हैं, उसी प्रकार निपुण व्यक्ति विलास आदि लक्षणों से प्रेम को भी जान लेते हैं ॥ ७०१ ॥

भवतु, विरूढप्रेम्णः सत्कर्मविवेचने मनोवृत्तिः।
नारोहतीति सर्वं निवेदितं परिचितत्वेन ॥ ७०२ ॥

ठीक है, रहने दो, क्योंकि प्रेम के अंकुरित हो जाने पर सत्कर्म के विवेचन में मनोवृत्ति नहीं लगती, मैंने तो यह बात केवल परिचित होने के सम्बन्ध से ही कही है ॥ ७०२ ॥

इति दुर्जनाहिनिःसृतवाग्विषदूषितसमस्तवपुषो मे।
ईर्ष्यारुष- प्ररूढास्थिरस्फुटप्रणयखण्डनप्रभवाः ॥ ७०३ ॥

इस प्रकार साँप की भाँति दुर्जन के मुख से निकली विष दूषित वाणी से मेरा सारा शरीर जल गया, इससे चिरस्फुट प्रणय के टूटने के कारण ईर्ष्या से उत्पन्न कोप उत्पन्न हो गया ॥ ७०३ ॥

---

1. स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा।
निजांगना यद्यपि रूपराशिस्तथापि लोकः परदाररक्तः ॥

लघुहृदयतया तस्माद्दुर्भाषितवज्रपातविहतानाम् ।
वक्तृविशेषवितर्को न स्पृशति प्रायशो मनः स्त्रीणाम् ॥ ७०४ ॥

इसलिये दुष्टों के वज्ररूपी कपट वचनों से चोट खाई स्त्रियाँ, हृदय के छोटा होने के कारण कहने वाले की बात को बहुत अधिक ध्यानपूर्वक नहीं करतीं॥७०४॥

प्रियमपि वदन् दुरात्मा क्षिपति विपत्सागरे दुरुत्तारे ।
आसाद्य प्राणभृतो मृतये परिलेढि जिह्वया खड्गः ॥ ७०५ ॥

दुष्ट आदमी मीठा बोलते हुए अति दुस्तर आपत्तियों के समुद्र में गिरा देता है। मनुष्य के पास पहुँची तलवार स्पर्श मात्र से ही मृत्यु का कारण बनती है[1] ॥ ७०५ ॥

हितमधुराक्षरवाणी व्यवहारमनुप्रविश्य तल्लीनाम् ।
सरला दुराशयानामुपघातफलेन विन्दन्ति ॥ ७०६ ॥

दूषित मन वाले मनुष्यों की हितकारी एवं कर्णप्रिय मधुर वाणी के वशीभूत, उसी में पूर्ण विश्वास रखने वाले सरल हृदय वाले मनुष्य, विनाश के परिणाम से ही उसको पहचानते हैं[2] ॥ ७०६ ॥

परसन्तापविनोदी यत्राहनि न प्रयाति निष्पत्तिम् ।
अन्तर्मना असाधुर्न गणयति सदायुषो मध्ये ॥ ७०७ ॥

दुष्टव्यक्ति जिस दिन दूसरे को दुःखी देखकर प्रसन्न नहीं हो लेते, व दुःखित मन से आयु के दिनों में उस दिन की गणना नहीं करते ॥ ७०७ ॥

दिवसास्तानभिनन्दति बहु मनुते तेषु जन्मनो लाभम् ।
ये यान्ति दुष्टबुद्धेः परोपतापाभियोगेन ॥ ७०८ ॥

दुष्ट व्यक्ति के जितने दिन दूसरों को दुःखी करने में जाते हैं, उतने ही दिनों को वह सफल दिन मानता है, उन्हीं दिनों में अपने जीवन को धन्य समझता है ॥ ७०८ ॥

विकसितवदनः पिशुनः प्रोत्फुल्लविलोचनो यथा भ्रमति ।
मन्ये तथा न जातः सदहितकरणश्रमो वन्ध्यः ॥ ७०९ ॥

---

१ स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः ।
हसन्नपि च वेताळो मानयन्नपि दुर्जनः ॥

२ को वेत्ति गुणविभागं, हस्तेन कथं पराध्यते जातिः ।
दुर्ज्ञेयं कुटिलानां चेष्टितमन्यद् वचश्चान्यत् ॥ समयमातृका ८।४८

(ख) प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ।
किरात १।३०.

कपटी व्यक्ति प्रसन्न मुख और आँखों को विकसित करके जिस प्रकार से घूमता है, इससे मैं अनुमान करता हूँ, सज्जनों को अहित करने में उसका प्रयत्न निष्फल नहीं गया ॥ ७०९ ॥

शठमृगयुः कुसृतिशरैरज्ञातप्रतिविधानसाधुमृगान्।
अभ्यस्तलक्ष्यवेधो निघ्नन् न परिश्रमं व्रजति ॥ ७१० ॥

धूर्त व्यक्ति बाण चलाने में सिद्धहस्त व्याध की भाँति, प्रतिरोध के उपाय को न जानने वाले साधु पुरुषों को मृगों की भाँति अपने उपजाप (भेदनीति) आदि दूषित नाराचों से मारते हुए थोड़ा भी श्रम अनुभव नहीं करता ॥ ७१० ॥

अनुकूलवरपुरन्ध्रीषु पुरुषाणां बद्धमूलरागाणाम्।
नयति मनो दुःशील: कुसुमास्त्रो हीनपात्रेषु ॥ ७११ ॥

अनुकूल—चित्त के अनुसार बरतने वाली, सुन्दर, स्त्रियों में अतिशय स्नेह रखने वाले पुरुषों के मन को भी, दुष्ट स्वभाव वाला कामदेव नीच स्त्रियों में ले जाता है ॥ ७११ ॥

सावसरं व्रजतोऽन्यां कौतुकदृष्ट्या प्रसङ्गतो दयितान्।
बुद्ध्वाऽपि विदग्धधियो वर्तन्ते नाट्यधर्मेण ॥ ७१२ ॥

कुतूहल दृष्टि से अन्य स्त्री से गुप्त रूप में प्रसंगवश मिलते हुए अपने प्रियतमों को दूसरों से जानकर भी, चतुर बुद्धिवाली स्त्रियाँ, नाट्य धर्म से—बाह्य दिखावे से पूर्व की भाँति उनसे बरतती हैं ॥७१२॥

सत्यं प्रेमणि वृद्धे व्यथयति हृदयं मनागपि स्खलितम्।
अवधृतनिजमाहात्म्यास्तदपि न धीरा विमुह्यन्ति ॥ ७१३ ॥

प्रेम के अतिशय बढ़ने पर, हृदय में उत्पन्न थोड़ी सी भी शंका, अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न करती है, यह सत्य है। तथापि उदार चित्त वाले धीर मनुष्य इसमें भी विक्षिप्त नहीं होते[1] ॥ ७१३ ॥

स्वच्छन्दं पिबतु रसं भ्रान्त्वा नानावनानि कुसुमेषु।
अनुभूतगुणविशेषः पुनरेष्यति मालतीं मधुपः ॥ ७१४ ॥

भ्रमर अनेक वनों में घूमकर इच्छानुसार फूलों का रस भले ही पीता रहे, फिर भी अनुभव किये गुणविशेष के कारण वह मालती पर ही फिर लौटेगा[2] ॥ ७१४ ॥

---

१ यथा रत्नावली में—अकृतस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति—३।१५.
२ (क) नवं नवं गुणरागी प्रायशो जीवलोकः—
(ख) भ्रमर कौतुकास्वादमात्रो नवनवान्मुख—समयमातृका ३।२२
(ग) कुसुमस्तवकैर्नम्रा सन्त्येव परितो लताः।
तथापि भ्रमरभ्रान्ति हरत्येकैव मालती ॥

मालत्या गुणवार्तां नो सम्यग्वेत्ति मधुकरस्तावत्।
अनुभवमेति न यावत् सुमनोन्तरसगमास्वाद ॥ ७१५ ॥

मालती के गुणों को भ्रमर तब तक ठीक प्रकार से नहीं जानता, जब तक वह दूसरे फूलों के रस को नहीं चख लेता[1] ॥ ७१५ ॥

कोमलमानकटुत्व भजमानो भजति दीप्ततामधिकाम्।
सचाल्यमानदारु पावक इव सुप्रभ स्नेह ॥ ७१६ ॥

थोड़ा सा तीखा रस खा लेने पर उत्तम स्नेह अधिक तेज बन जाता है (नमक के साथ घी की मात्रा अधिक खाई जाती है) जिस प्रकार कि लकड़ियों के हिलाने से अग्नि अधिक तीव्र हो जाती है[2] ॥ ७१६ ॥

य पुनरतिकोपानलसन्तापवशेन दूरमाकृष्ट।
काचमणि खलु स यथापरिणाम खण्डखण्डमुपयाति ॥ ७१७ ॥

अतिशय कोपाग्नि के सताप के कारण जो बहुत दूर हो गया है,—वह स्नेह अवश्य टूट जायेगा, जिस प्रकार कि अग्नि की उष्णिमा से काचमणि—काच टुकड़े टुकड़े हो जाता है ॥ ७१७ ॥

वेतनलाभाद्बहव सेव्यन्ते सौष्ठवेन पचजना।
विश्राम्यति यत्र मन स तु दुष्प्राप सहस्रेषु ॥ ७१८ ॥

वेतन—धन के लाभ की दृष्टि से बहुत से मनुष्य भलीप्रकार सेवा करते हैं। परन्तु मन को जहाँ शान्ति मिले, ऐसा मनुष्य हजारों में विरला ही कोई होता है ॥ ७१८ ॥

मन्वादिमुनिवरैरपि कालत्रयवेदिभि सुदुर्ज्ञेयम्।
तत्सुकृत यस्य फल रभसागतवल्लभाश्लेष ॥ ७१९ ॥

भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालों की बात जानने वाले मनु आदि मुनियों से भी वह शुभ कर्म दुर्विज्ञेय है, जिसका फल प्रेमी का उत्कण्ठापूर्वक आकर प्रियतमा का आलिंगन होता है ॥ ७१९ ॥

---

१ दूराद्दुर्गति चम्पक, न च भज यंभोजराजीरजो,
नो जिघ्रयति पाटलापरिमल, चूते न धत्त रतिम्।
मन्दारेऽपि न सादरो विचकिलामोदेऽपि सन्तप्यते,
तन्मन्ये मदचिद्र भृगतरुणेनास्वादता मालती ॥

२ (क) मन्मथो नेर्ष्यया विना,
(ख) लवणोपहिता स्नेहा स्नेहयन्त्यचिरान्नरम् ॥ चरक सू अ १३।९८

यातेऽपि नयनमार्गे प्रेयसि यस्या स्मृतिर्व्यलीकेषु ।
मन्ये ता प्रतिनियतं कुण्ठितशरपचको मदन ॥ ७२० ॥

प्रियतम के दिखाई पड़ने पर जिस स्त्री का स्मृति उसके अपराधों में जाती है, मैं मानती हूँ कि अवश्य उसके प्रति कामदेव के सब बाण निष्फल हो गये हैं ॥ ७२० ॥

जीव्यत एव कथंचिद्वृत्तिमिमा महद्भिरवगीताम् ।
विजहाति यन्नगणिका सद्वाञ्छितरमणलाभलोभेन ॥ ७२१ ॥

किसी प्रकार से जीना है, इसी कारण रूपाजीवा-वेश्या अतिशय गर्हित इस वृत्ति को स्वीकार किये हुए हैं, फिर भी इस निन्दनीय वृत्ति को वेश्या जो नहीं छोड़ती, उसका एक ही कारण है, वह समझती है कि शायद भाग्य से कोई इच्छित मन पसन्द कामुक मिल जायेगा' ॥ ७२१ ॥

कण्टकित कटुरसान् करीरखन्रादिविटपतम्गुल्मान् ।
उपभुञ्जाना करभी दैवात्प्राप्नोति मधुरसमधुजालम् ॥ ७२२ ॥

ऊँटनी काटे एव कटु रस वाले करील, बर आदि वृक्ष, झाडी आदि को खाते हुए भी भाग्यवश शहद के छत्ते को प्राप्त कर ही लेती है ॥ ७२२ ॥

का स्त्री न प्रणयिवशा, का विलसितयो मनोभवविहीना ।
को धर्मो निरुपशम, किं सौख्य वल्लभेन रहितानाम् ॥ ७२३ ॥

ऐसी कौन सी स्त्री है जो भत्ता के अधीन नहीं ? (सब भत्ता के अधीन है), काम से रहित विलास कौन से हैं (सब विलास कामयुक्त होते हैं), जिसम शान्ति नहीं ऐसा कौन सा धर्म है (सब धर्मों म शान्ति है), प्रिय स रहित कौन सा सुख (सब सुख प्रिय के साथ में ही) है ॥ ७२३ ॥

स्वाच्छन्द्यफल बाल्य, तारुण्य रुचिरसुरतभोगफलम् ।
स्थविरत्वमुपशमफल, परहितसपादन च जन्मफलम् ॥ ७२४ ॥

बाल्यावस्था का फल ही स्वच्छन्दता है, तरुणावस्था का फल सुन्दर सम्भोग, वृद्धावस्था का फल शान्ति और जन्म का फल दूसरों का हित करना है[2] ॥ ७२४ ॥

---

१ पराधीना निद्रा परपुरुषचिन्तानुसरणम्
सुखशून्य हास्य रुदितमपि शोकेन रहितम् ।
पणे न्यस्त काय करजदशनैर्भिन्नवपुषा—
महो कष्टा वृत्तिर्जगति गणिकानां बहुखया ॥ चारुचर्याविचार

२ कामसूत्र में कहा है—
काम च यौवने (२।१।२।३), स्थविरे धर्ममोक्षं च, (२।१।२।४) ।

अभिदधतीमिदमालीमवकर्ण्य गृहीतयेव भूतेन ।
यौवनसुखेन सार्धं मयैव यूय परिच्छिन्ना ॥ ७२५ ॥

सखी से कही उपर्युक्त आर्या को सुनकर मानों मुझमें भूत का आवेश हो गया हो मैंने आपके साथ में यौवन सुख का अनुभव किया ॥ ७२५ ॥

अधुनाऽनुतापपावकमध्यगता पच्यमानसर्वाङ्गी ।
निष्फलजन्मप्राप्तिर्जीवाम्युच्छ्वासमात्रेण ॥ ७२६ ॥

अब विरह काल में पश्चात्ताप रूपी अग्नि के बीच में पूर्ण रूप में जलती हुई, निष्फल जीवन से केवल श्वास लेती हुई जी रही हू ॥ ७२६ ॥

स्थानेषु येषु युष्मत्सङ्गत्या क्रीडितं चिरं धृत्या ।
तानि खलु वीक्षमाणा भवामि कण्ठस्थितप्राणा ॥ ७२७ ॥

आपके साथ जिन स्थानो मे मन संतोष के साथ देर तक आनन्द किया था, उन स्थानो को देख देखकर गले में प्राणों को रोके हुए हूँ ॥ ७२७ ॥

अन्यवशेन विसंज्ञा कृतभूषा यन्त्रसूत्रसञ्चारा ।
दारुमयीव प्रतिमा विदधामि विडम्बना बह्वी ॥ ७२८ ॥

निश्चेष्ट होकर दूसरो के द्वारा की हुई वेशभूषा से यन्त्र सूत्र से हिलती डुलती कठपुतली की भाँति मैं बहुता की हँसी का पात्र बनी हुई हूँ ॥ ७२८ ॥

यदि नामोदरभरणप्राप्त्यै कुरुतेऽन्यपुष्पसंश्लेषम् ।
तदपि न पुष्टिर्भृङ्गया अपिबन्त्या अ (अ) रविन्दमकरन्दम्॥७२६॥

यद्यपि भृंगी केवल पेट भरने के लिये ही दूसरे पुष्पो का आलिंगन करती है, तथापि उसका संतोष तो कमल के मकरन्द के पीने से ही होता है ॥ ७२९ ॥

आस्तामपरो लोकः क्रीडापेक्षी परापदि प्रीतः ।
व्यसनार्णवे पतन्ती न वारिता परिजनेनापि ॥ ७३० ॥

दुनिया तो तमाशा देखती है तथा दूसरों के दुःख में प्रसन्न होती है। दुःख में गिरती हुई मुझको सम्बन्धी जनों ने भी नहीं रोका, औरों की बात छोड़ दो ॥ ७३० ॥

किं वा बहुभिः कथितैः, सम्प्रति हि मयाऽपि नियमिता बुद्धिः ।
स्थास्यामि सन्नियुक्ता भवद्गृहे प्रेष्यभावेन ॥ ७३१ ॥

अधिक कहने से क्या लाभ ! अब मैंने भी दृढ निश्चय कर लिया कि आपके घर में ही नौकर बनकर रहूँगी[1] ॥ ७३१ ॥

---

1. 'पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्'—शाकुन्तल ५।२७

इति नेत्रादिविकारवशमुपनीतं प्रलीनधैर्यास्त्रम् ।
मारग्रहाभिभूतं परिमृष्टप्राङ्निराकृतिस्मरणम् ॥ ७३२ ॥

इस प्रकार नेत्र विक्षेप आदि अनुराग सूचक-मोहोत्पादक विलासों से उसके धैर्य रूपी अस्त्र को व्यर्थ बनाकर, अपने वश में ले आये। कामदेव से पीडित होने पर वह पहले किया हुआ सब अपमान भूल जायेगा ॥ ७३२ ॥

प्रादुर्भूतरिरंसं क्षणे क्षणे जघनदेशगतदृष्टिम् ।
पक्वाम्रमिव विमोक्ष्यसि पूर्ववदाचूष्य सुभ्रु निःशेषम् ॥ ७३३ ॥
(युग्मम्)

हे सुभ्रु ! रमणेच्छा के उत्पन्न हो जाने पर, थोड़ी थोड़ी देर में जघन देश पर दृष्टिपात करते हुए, उसको, पके हुए आम की भाँति पहले की तरह चूसकर निर्धन हो जाने पर निकाल देगी[1] ॥ ७३३ ॥

स्वशरीरामिषदिग्धं वक्रस्मितदृष्टिपातवाग्बडिशम् ।
प्रक्षिप्याकृष्य जडं स्फुरणेन विवर्जितं सुपरिपुष्टम् ॥ ७३४ ॥
हस्तद्वयान्तरागतमुपचारपरिव्ययेन संस्कृत्य ।
भुक्त्वा यावन्मांसं त्यक्ष्यसि चर्मास्थिशेषितं मत्स्यम् ॥ ७३५ ॥

अपने शरीर रूपी मांस को [बंसी में] लगाकर, उपहास सूचक मुस्कराना, वक्र दृष्टिपात—कटाक्ष, एवं वक्रोक्ति रूपी बडिश को फेंककर—मूर्ख, गति रहित, अतिशय पुष्ट मछली कामुक को खींचकर दोनों हाथों के बीच में पकड़कर (कामुक का छाती से आलिंगन करके); अनुकूल आचरण से, बेशुमार मसाले से बनाकर (कामुक को अनुकूल आचरण-व्यवहार आदि से वश में करके), मांस को सम्पूर्ण रूप में खाकर (कामुक का सब धन लेकर), चर्म और अस्थि मात्र रहने पर (कामुक के निर्धन होने पर) फेंक देगी (कामुक को निकाल देगी[2] ॥ ७३४–७३५ ॥

शृणु सुश्रोणि यथाऽस्मिन् रमटेश्वरपादमूलमंजर्या ।
प्रवराचार्यदुहित्रा राजसुतश्चर्वितश्च मुक्तश्च ॥ ७३६ ॥

---

1. जघन—भगस्य भाल जघनं विस्तीर्णं तुङ्गमांसलम् ।
मृदुलं मृदुरोमाढ्यं दक्षिणावर्तमीरितम् ॥
2. विस्तारितमकरकेतनधीवरेण स्त्रीसंज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ ।
येनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्यमत्स्यान् विकृष्य विपचत्यनुरागवह्नौ ॥
शृंगारशतक ५२.

हे सुन्दर नितम्ब वाली! सुनो, प्रवर आचार्य की कन्या एवं कमलेश्वरपाद नामक किसी मठाधीश से उत्पन्न मंजरी ने इसी वाराणसी में राजपुत्र का भोग करके सब धन लेकर धक्का दे दिया था। (कमलेश्वर पाद से उत्पन्न एवं प्रवर आचार्य की कन्या के नाम से प्रसिद्ध व्यभिचार से उत्पन्न होने के कारण वह भी व्यभिचारिणी थी—यह सूचित किया) ॥ ७३६ ॥

आसोच्छ्रीसिंहभटो नाम्ना नृपतिर्महीयसां श्रेष्ठः।
तस्यात्मजोऽधितस्थौ (ष्ठौ) निवेशनं देवराजसंबद्धम् ॥ ७३७ ॥

महान् पुरुषों में श्रेष्ठ सिंहभट नामक एक राजा था, उसका पुत्र समर भट देवराज से सम्बद्ध (पाठान्तर में देवराष्ट्र–देवगिरि के पास) सेना शिविर में रहता था ॥ ७३७ ॥

स कदाचिद्वृषभध्वजदिदृक्षया परिमितात्मपरिवारः।
अनुवर्तमान आगात्तारुण्योद्दीर्णवेषचरितानि ॥ ७३८ ॥

समरभट कभी वृषभध्वज शिवजी की पूजा देखने की इच्छा से, थोड़े से विश्वसनीय साथियों के साथ, युवावस्था के योग्य खिलते हुए वेष–मनोहर वस्त्र अलंकार आदि धारण करके, युवावस्था के योग्य अवलोकन प्रलोभन आदि कार्यों को करते हुए, काशी विश्वनाथ मन्दिर में पहुँचा ॥ ७३८ ॥

मूर्धत्रिभागसंस्थितगृहल्म्बरचीरकेशसंयमनः।
अल्पाच्छगात्रागो घनकुंकुमलिप्तकर्णकेशाग्रः ॥ ७३९ ॥

समर भट का वेष—एक बड़े भारी रूमाल से कानों के ऊपर शिर का १/३ भाग बँधा हुआ था, शरीर पर थोड़ा और स्वच्छ अंगराग पुता था, बालों के सिरों पर तथा कान में गाढ़ा केसर लगा हुआ था ॥ ७३९ ॥

धृतवेत्रदण्डकूर्चकपरिवेष्टितसासिधेनुखड्गश्च ।
मृदुतरपटिकावरणः शब्दोल्वणचुर्चुरांगत्राणः ॥ ७४२ ॥

हाथ में बेंत की छड़ी थी; जिसका शिरोभाग कमर में बँधे वस्त्र में लगा था; कमर में कटारी और तलवार लटक रही थी। कोमल छोटा वस्त्र—उत्तरीय दुपट्टा ओढ़ा हुआ था; पैरों में चुर-चुर करने वाला जूता पहने हुए था ॥७४२॥

विश्वनाथ मन्दिर में आते हुए विटों की बात-चीत :—

गम्भीरेश्वरदास्यां लग्नः किल तव वयस्यको वीरः ।
प्राप्स्यति सोऽपि दुराशां वर्षत्रितयेन यन्मया प्राप्तम् ॥ ७४३ ॥

वीर नामक तेरा मित्र गम्भीरेश्वर नामक वेश्या (अथवा गम्भीरेश्वर नामक देवालय की देवदासी) में आसक्त हुआ है, पर उसी प्रकार से निष्फल होगा—जैसे मैं तीन साल तक उसके लिए कोशीश करके निष्फल हुआ हूँ ॥७४३॥

दर्शयति दिशः फलिता अमृतगभस्तिं करेऽवतारयति ।
सुरदेवि चन्द्रवर्मा निर्वस्तुकवाक्प्रपंचेन ॥ ७४४ ॥

हे सुरदेवि ! चन्द्रवर्मा व्यर्थ की बातों का जाल फैला कर दिशाओं को फलवाली दिखाता है और चन्द्रमा को हाथ में लाता है; सरसों हाथ पर उगाता है, बातें ही बनाता है-उनमें कुछ सार नहीं ॥७४४॥

त्वामनुयान्तं सम्प्रति पश्यामि कुरंगि वसुषेणम् ।
सुनिरूपिता भविष्यति विषमा गुडजिह्विका तस्य ॥ ७४५ ॥

हे कुरङ्गि ! वसुषेण को तुम्हारे पीछे लगा अब देखती हूँ; उसकी मीठी वाणी कैसी झूठी है, यह तुझे भी पता लग जायेगा ॥७४५॥

वंचयति जनं योऽसौ हरिणि हरो धूर्त्ताभिमानेन ।
लिखति शतं दशवृद्ध्या स निमग्नस्तरलिकावर्त्ते ॥ ७४६ ॥

हे हरिणि ! धूर्त्तता के अभिमान से जो यह हर मनुष्यों को एक सौ के स्थान पर एक सौ दस लिखकर ठगता है; वह तरलिका के भँवर में-चक्कर में फँस गया ॥७४६॥

गृह्णासि यत्पटान्ते मम पश्यत एव मन्द मदिराक्षीम् ।
अत आवयोरवश्यं सा वक्ष्यति नोचमन्तरं भक्ता ॥ ७४७ ॥

मेरे देखते हुए जो तू मदिराक्षी का आँचल पकड़ता है; हे मूर्ख ! हम दोनों की गोपनीय बात को वह अवश्य कहेगी[1] ॥७४७॥

---

१. आघूर्णमानमध्या या क्षामा चाञ्चिततारका ।
दृष्टिर्विकसितापांगा मदिरा तरुणे मदे ॥

योऽयं गृहीतवृसिकः कुशकर्णो विधृतदण्डकाषायः।
लोकस्पर्शाशंकी कृतापसारो विलोकयन् पार्श्वौ ॥ ७४८ ॥
कुर्वाणो मौनव्रतमुत्पादितसकलवैष्णवप्रीतिः।
हरिशासनं प्रपन्नस्त्रिपुरान्तकदर्शनापदेशेन ॥ ७४९ ॥
स्त्रैणं पश्यति युक्त्या साकांक्षं वर्जितान्यजनदृष्टिः।
कुमुदिनि मम हृदयगतं भवितव्यं व्याजलिंगिनाऽनेन ॥ ७५० ॥
(अन्तर्विशेषकम्)

सन्यासियों का आसन लिये, कानों में कुशा लाये; दण्ड और काषाय-गेरुआ वस्त्र धारण किये; मनुष्यों से स्पर्श न हो जाये इसलिए लोगों को दूर हटाकर-दायें-बायें देखते हुए; मौनव्रत धारण करके सब वैष्णवों का श्रद्धा-भाजन बना, मोक्ष की प्राप्ति के लिए विष्णु के शरण में पहुँचा है, वह यह दण्डी [अथवा कुशकर्ण नामक साधु] महादेव के दर्शन के बहाने से, दूसरे मनुष्यों से आँख बचाकर बड़े चाव से स्त्रियों के समूह को देख रहा है, हे कुमुदनी! इस कपट वेषधारी साधु से अवश्य मेरी मनोकामना पूरी होनी चाहिए ॥ ७४८–७५० ॥

पश्यत्यदृश्यमानो, निरीक्षितो वीक्षते परां ककुभम्।
गृहे किंचित्सस्पृहमभियुक्तो भवति कीलितध्वानः॥ ७५१ ॥

अभियुक्त व्यक्ति स्त्री को देखते हुए कोई न देखे, इस प्रकार से आँख बचाकर देखता है; पकड़ा जाने पर खाली दिशाओं को (इधर-उधर) देखने लगता है, अस्पष्ट अभिलाषा सूचक बात करता है, पूछने पर भर्राई आवाज में बात करता है (या मौन धारण कर लेता है) ॥७५१॥

न जहाति सभासन्नं, नोत्सहते पार्श्वगोचरे स्थातुम्।
एष मनुष्यो मन्ये निष्प्रतिभः साभिलाषश्च ॥ ७५२ ॥
(अन्तर्युगलकम्)

पास में बैठा होने पर उठना नहीं चाहता, समीप में खड़ा होना पसन्द नहीं करता, ऐसा मनुष्य प्रतिभा (सूझ) रहित एवं रमणी समागम के लिये इच्छुक होता है, ऐसा मैं मानती हूँ ॥७५२॥

तेऽतीताः खलु दिवसाः क्रियते नर्म त्वया सर्म येषु।
अधुनाऽऽचार्यानी त्वं पाशुपताचार्यसंबन्धात् ॥ ७५३ ॥

वे दिन चले गये, जिन दिनों में तुम्हारे साथ हास-परिहास किया जाता था। पाशुपत आचार्य से सम्बन्ध होने के कारण तुम भी अब आचार्यानी हो गई॥७५३॥

भ्रमसि यथेष्ट तावत् कुर्वाणो युवती पल्लवग्रहणम्।
लोलिकदास न यावन्नरदेवी पानिका भवति ॥ ७५४ ॥

हे लोलिक दास! जब तक नरदेवी प्याऊ पर नहीं जाती, तब तक तुम युवतियों के आंचल को पकड़ कर इच्छानुसार घूमते रहते हो ॥७५४॥

एवंप्रकारवाच्यप्रोक्तविटचेटिकासमाकीर्णम्।
सेवाचतुरपुरःसरविजनीकृतवर्त्म देवकुलम् ॥ ७५५ ॥
(आदिमहाकुलकम्)

इस प्रकार की सारी बातें सुनते हुए विट और चेटिका-दासियों से भरे, नौकरों द्वारा खाली बनाये मार्ग से मन्दिर में पहुँचा ॥७५५॥

सपादितहरपूजो निष्ठुरयाष्टीकनियमिते लोके।
त्वरितनियोगिस्थापितमासनमध्यास्त समरभटः ॥ ७५६ ॥

निष्ठुर दण्डधारियों द्वारा जन-समूह के रोक दिये जाने पर, महादेव की पूजा करके, सेवकों द्वारा जल्दी से बिछाये आसन पर समरभट बैठ गया ॥७५६॥

अग्रोपविष्टनर्तकवंशिकगातृप्रकाशयुवतिगणः।
श्रेष्ठिसमुत्सर्पणिगजनढौकितताम्बूलकुसुमपटवासः ॥ ७५७ ॥

उसके सामने में नर्तक, वेणु-वादक, गायक, वेश्यायें बैठ गईं। प्रमुख सेठ तथा वणिक् समूह पान, सुगन्ध-फूल, इन आदि सुगन्ध लकर आये ॥७५७॥

विविधविलेपनखचितचक्रधरखड्गधारिणा शून्य।
पृष्ठत आत्तकृपाणे शरीररक्षेश्च निरस्ते ॥ ७५८ ॥

नाना प्रकार के अनुलेपनों से चित्रित, चक्र (अंगुली पर घुमा कर फेंका जाने वाला अस्त्र) तलवार का धारण किए, तलवार खींचे विश्वासपात्र अङ्गरक्षक उसके पीछे खड़े थे ॥७५८॥

ताम्बूलकरङ्कभृता सन्दशगृहीतवीटिकाग्रहणे।
ईषत्स्पृष्ट कुर्वन् मन्दं सटकमुखेन वामेन ॥ ७५९ ॥

ताम्बूल की पिटारी का धारण करने वाले के हाथ से पान का बीड़ा लेने के लिए अंगूठा और अगली दो अंगुलियों को मिलाकर सुन्दर रूप में धीमे से थोड़ा सा छूते हुए उसने पान लिया[1] ॥७५९॥

---

1 सदश-चिमटा—उसके आकार में—सदंश का लक्षण—

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगाग्रयोरास्य यदा भवेत्।
अङ्गुष्ठतलमध्यस्थ स सदंश इति स्मृत ॥

पार्श्वावस्थितनर्मप्रियसचिवन्यस्तपूर्वतनुभागः ।
पप्रच्छ कुशलवार्तां स वणिग्जननर्तकप्रभृतीन् ॥ ७६० ॥
(कुलकम्)

अपने बगल में बैठे नर्म प्रिय सचिव (जिसके साथ खुले रूप हास परिहास हो सकता था) की गोद मे शरीर के ऊपर के भाग —शिर को रखे हुए— वणिग्जनों एवं नर्त्तकों से कुशल मगल पूछने लगा ॥७६०॥

अथ वैतालिक उच्चैरुपसंहृतलोककलकले धीरम् ।
अभितुष्टाव तमित्थं प्रसन्नगम्भीरया वाचा ॥ ७६१ ॥

इसके पीछे जन-समूह का शोर शान्त हो जाने पर; स्वस्थ मन वाले राजपुत्र को वैतालिक ने प्रसन्न (विमल-कोमल) एव अर्थ से भरी ऊँची आवाज से इस प्रकार से प्रसन्न किया[1] ॥७६१॥

जय देव परबलान्तक गुरुचरणाराधनैकक्रतचित्त ।
परवनिताजनमोहन दारिद्र्यतमःप्रचण्डकरजाल ॥ ७६२ ॥

हे देव आपकी जय हो, आप शत्रु सैन्य के लिए मृत्यु रूप हो, गुरुजनो की सेवा में एकाग्र चित्त रखने वाले है, सुन्दर वनिताओं को मोहने वाले, निर्धनों की अन्धकार रूपी दरिद्रता को नष्ट करने मे सूर्य की भान्ति हैं ॥७६२॥

रणवीर-वंशभूषण गुरु-वसुधादेव-पूजन-प्रह्व ।
शरणागताभयप्रद हितबान्धवबन्धुजीवमध्याह्न ॥ ७६३ ॥

रणवीरों के वंश के भूषण ! गुरु-ब्राह्मणों की पूजा में नम्र, शरणागत को अभय देने वाले, हित चिन्तक, सम्बन्धीजन, मित्रों के लिए दुपहरिया के फूल की भाँति हो ॥७६३॥

तादृक् प्रतापदहनः स तावको व्याप्तगगनदिक्चक्रः ।
दृष्टो जलायमानो रिपुवनितातिलकशोभासु ॥ ७६४ ॥

आपका सम्पूर्ण दिशाओं में फैला प्रताप ऐसा है कि उससे शत्रु स्त्रियों की तिलक भी पानी मे घुल सा गया है—पोंछ गया है, वे विधवा हो गई हैं ॥७६४॥

कटकामुख - कटकामुख—तर्जनीमध्यमामध्ये पुंखोऽङ्गुष्ठेन पीड्यते ।
यस्मिन्ननामिकायोगः स हस्तः कटकामुखः ॥

पुंख—शरस्य पक्षपाली ।

1. वैताल—बसन्तप्रहरयोग्ये रागैस्तत्कालवाचिभिः श्लोकैः ।
सरसमनेक विशालं गायन् वैतालिको भवति ॥

एष विशेषः स्पष्टो वह्नेश्च त्वत्प्रतापवह्नेश्च ।
अंकुरति तेन दग्धं दग्धस्यानेन नोद्भवो भूयः ॥ ७६५ ॥

अग्नि और आपके प्रतापाग्नि में यह अन्तर देखने में आता है, कि अग्नि से जली वनस्पति फिर अंकुरित हो जाती है, परन्तु आपके प्रतापाग्नि से जली वस्तु फिर अंकुरित नहीं होती ॥७६५॥

श्रीफलभुक् पत्रवृतो विग्रहरसिको विमुक्तशस्त्ररतिः ।
राज्यस्थितिं न मुंचति हृतलक्ष्मीकोऽपि तव विपक्षगणः ॥७६६॥

साम्राज्य सुख का उपभोग करनेवाला, वाहनों से युत, युद्ध का प्रेमी, शस्त्र का त्याग करने वाला शत्रुसमूह, लक्ष्मी ऐश्वर्य का हरण हो जाने पर भी राज्यस्थिति को नहीं छोड़ता। (बिल्व फल को खाने वाला, पत्तों से युक्त, शरीर की रक्षा में प्रेम करने वाला; शस्त्र त्याग करके शत्रुगण लक्ष्मी का हरण होने पर भी राज्यस्थिति को नहीं छोड़ता) ॥७६६॥

ददतो वाञ्छितमर्थं सदाऽनुरक्तस्य तव गृहं त्यक्त्वा ।
स्त्रीचापलेन कीर्तिर्नग्नासक्ता गता ककुभः ॥ ७६७ ॥

इच्छित वस्तु का दान करने के कारण, सदा स्नेह रखने वाले आपके घर का त्याग करके; स्त्री स्वभाव की चपलता से ही कीर्ति नग्नियों—स्तुति करने वालों के द्वारा सब दिशाओं में फैल गई ॥७६७॥

भवतो भवतो धैर्यं, तेन हि भिन्नोऽन्धको रिपुः प्रणतः ।
मुक्तास्त्वया तु बहवो रिपवोऽपि प्रेक्षकाः समरे ॥ ७६८ ॥

आप में शिव से भी अधिक धैर्य है, क्योंकि शिव ने अतिशय नम्र बने अपने शत्रु अन्धक का भी वध किया था। आपने तो युद्ध में बहुत दर्शक शत्रुओं को भी छोड़ दिया (लड़ने वाले शत्रुओं को तो क्षमा कर ही दिया) ॥७६८॥

अटता जगतीमखिलामिदमाश्चर्यं मया परं दृष्टम् ।
धनदोऽपि नयननन्दन परिहरसि यदुग्रसम्पर्कम् ॥ ७६९ ॥

हे आँखों को आनन्द देने वाले! सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण करते हुए मैंने यह आश्चर्य देखा कि धन देने वाले होने पर भी आपका उग्र पुरुषों के साथ सम्बन्ध नहीं। (धनद=कुबेर, उग्र=महादेव, कुबेर और महादेव की मैत्री प्रसिद्ध है, यथा—'मन्या देव धनपतिसखः यत्र साक्षाद् वसन्त'—मेघदूत—७६; 'कुबेरस्य त्र्यम्बकसखो'—अमरकोश) ॥७६९॥

इदमपरमद्भुततमं युवतिसहस्रैर्विलुप्यमानस्य ।
वृद्धिर्भवति न हानिर्यत्तव सौभाग्यकोषस्य ॥ ७७० ॥

यह भी बहुत बडा आश्चर्य है कि तुम्हारे सौभाग्य कोष का हजारों युवतियों द्वारा उपभोग करने पर भी उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं होता, अपितु और भी अधिक वृद्धि होती है ॥७७०॥

अपर विस्मयजनन धवलत्व नायाति यद्भवत ।
ललनालोचनकुवलयदलत्विषा शबलितम्यापि ॥ ७७१ ॥

यह दूसरा आश्चर्य है स्त्रियों के नेत्रकमलो की काति से कर्बुरित होने पर भी तुम्हारी श्वेतिमा लुप्त नहीं होती, वैसा की वैसी बनी रहती है ॥७७१॥

हृदयेषु कामिनीनामेकोऽनेकेषु वससि येन त्वम् ।
जनक कुसुमास्त्रभृत्त पुरुषोत्तम तेन विश्वरूपोऽसि ॥ ७७२ ॥

क्योंकि तुम एक होने पर भी बहुत सी स्त्रियो के हृदयो म रहते हो, इसलिए तुम कामदेव के जनक, पुरुषोत्तम, विश्वरूप नारायण हो। (पुरुषोत्तम कृष्ण, कुसुमास्त्रभृत् प्रद्युम्न, कृष्ण प्रद्युम्न के पिता हैं, आप भी काम का उद्दीप्त करते हैं, इसलिए आप भी कृष्ण नारायण हैं) ॥७७२॥

किं वहसि वृथा गर्व प्रियोऽहमिति योपिता नराधीश ।
कामयन्ति स्म मुरारिं षोडशगोपीसहस्राणि ॥ ७७३ ॥

हे राजन्! किसलिए व्यर्थ का यह अभिमान करते हो कि मैं स्त्रियों का प्रिय हूँ—मुझे स्त्रियाँ चाहती हैं, यह व्यर्थ का अभिमान किसलिए करते हो। कृष्ण को सोलह हजार गोपियाँ प्रेम करती थीं[1] ॥७७३॥

कार्पण्येन ययाचे मखसमये यो बलि हृषीकेश ।
न स भवति समो भवता दानैकनिपण्णहृदयेन ॥ ७७४ ॥

यज्ञ क समय दीनता से विष्णु ने बलि से जो भिक्षा माँगी थी, उसके कारण वह निरन्तर दान करने वाले आपके समान नहीं हो सकता ॥७७४॥

भूमिभृतामुपरिस्थित उन्नतये सकलजीवलोकस्य ।
दृष्ट सन्तापहरो मेघवदासारदानदक्षस्त्वम् ॥ ७७५ ॥

सम्पूर्ण ससार की उन्नति क लिए आप सब राजाओं के ऊपर स्थित हैं। मेघ की भाँति धारा रूप में दान की वृष्टि करके आप ससार के सन्ताप दुःखों को दूर करते हैं ॥७७५॥

बहुमार्गो भद्रयुत कुसृतिपरो गोत्रभेदकरणपटु ।
गगाजलप्रवाह पुण्यवशात्केवल तव समान ॥ ७७६ ॥

1. दण्डमारचरित में—षडानन्मस्य पादाग्रसहस्रान्त पुरविहार —इत्यादि।

बहुत मार्गों वाला, कल्याणकारी, पृथ्वी पर फैलने वाला, पर्वतों के तोड़ने वाला गंगाजल ही पुण्यशाली होने से आप के समान है। आपके बहुत से मार्ग-व्यवहार रीति हैं, आपके पास भी भद्र जाति के हाथी हैं, आप भी पृथ्वी पर फैले हैं (कुसति शठता, दुष्टों से शठता करते हैं), कुलों के नष्ट करने में चतुर हैं[1] ॥७७६॥

दुर्व्यवहारोत्पत्तिर्मौग्ध्यप्रसरो विवेकिताप्रसहः।
एकस्त्वं दोषज्ञः कृती कृतो येन कलिकालः॥ ७७७॥

अकेले आप ही ऐसे दोषज्ञ-दोषों को जानने वाले एवं निवारण करने वाले पण्डित हैं, जिनके कारण दुष्ट क्रियाओं का जनक, मूढ़ता को फैलाने वाला, अविवेकी कलिकाल-कलियुग भी सत्ययुग बन गया ॥७७७॥

सुगतोऽपि नाजिविमुखो, वृषध्वजोऽपि न विषादितायुक्तः।
उद्यतशस्त्रोऽपि रिपौ कथमसि सन्नासिको जातः॥ ७७८॥

सुगत—शोभन मति वाला होने पर भी अति शूर होने के कारण युद्धों से मुख नहीं मोड़ते, धर्मप्रधान होने से विषाद अनुताप से युक्त नहीं, आप उत्तम नासिकायुक्त हैं। (सुगत-बौद्ध दयाशील होने के कारण युद्ध से विमुख रहते हैं, वृषध्वज महादेव, विष को खाने वाले हैं, शत्रु के शस्त्र उठाने पर आप किस लिए तलवार को रोके हुए हैं-सन्नः प्रतिरुद्धः असिः-विरोधालकार) ॥७७८॥

सन्मणिरनेकभोगो गुरुभारसहः स्थिरात्मतास्थानम्।
नरदेव चित्रमेतद्यदशेषगुणैस्त्वमाश्लिष्टः॥ ७७९॥

हे नरदेव! यह आश्चर्य है कि आप में शेषनाग के सब गुण उपस्थित हैं, शेषनाग में उत्तम मणि है, उसके हजारों फण हैं, पृथ्वी के भार को उठाये हुए हैं, अपने स्थान पर स्थिर है, आप के पास भी उत्तम श्रेष्ठ मणि हैं, अनेक प्रकार का—नाना प्रकार का भोग-सुख प्राप्त है, पृथ्वी का आप पालन करते हैं, धैर्य-स्थिरता दृढ़ता के स्थान हैं, इस प्रकार से शेषनाग के सब गुण आप में हैं ॥७७९॥

प्रकृतिलघोर्येन कृता जघन्यवर्णस्य गौरवापत्तिः।
जघनचपला यदार्या स पिंगलस्ते कथं तुल्यः॥ ७८०॥

जिसने स्वरूप से लघु (हीन जाति) बनाया, अन्तिम वर्ण (ब्राह्मणादि वर्णमें अन्तिम एवं अक्षर) शूद्र को गौरव दिया (अन्तिम अक्षर को गुरु किया)

---

1. यथा सुश्रुत में—महतां पविपर्णानां प्रसुतानामनेकधा।
कुशराणां सहस्रस्य बलं समधिगच्छति॥
सु. चि. अ. २९।१६

वह पिंगल (छन्दशास्त्र के कर्त्ता) जघनचपला (व्यभिचारिणी स्त्री, एवं जघन चपला नामक आर्या छन्द) के बराबर कैसे हो सकते हैं[1] ॥७८०॥

कस्य न जातिर्नात्मा नार्थज्ञानं न मानसे प्रशमः ।
भवसि भवसाररत्न तेनाद्वयवादिना सदृशः ॥ ७८१ ॥

भगवान् बुद्ध से पृथक् करके स्तुति करता है—आप किसके सजातीय बन्धु नहीं हैं, किसके मित्र नहीं हैं, आपसे किसको धन का लाभ नहीं होता, आप किसके मन में नहीं हो, [आप सबके सजातीय बन्धु हो, सबको आप से धन मिलता है और सबके मन में रहते हो] इससे आप संसार के उत्तम रत्न हो, इस कारण आप अद्वयवादी विज्ञानवादी बुद्ध के असमान हैं। आपके साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती[2] ॥७८१॥

तत्रापि वृद्धियोगस्तस्मिन्नपि पुरुषगुणगणख्यातिः ।
परिभाषा तत्रापि व्याकरणान्नातिरिच्यसे तेन ॥ ७८२ ॥

व्याकरणशास्त्र में भी वृद्धि का योग रहता है, व्याकरणशास्त्र में पुरुषों के गुणों के गणों की प्रसिद्धि है, व्याकरण में परिभाषा नियम भी है, इस प्रकार आप व्याकरण से भी अधिक नहीं हैं [आप में वृद्धि–उत्कर्ष है, आपमें पुरुष के शौर्यादि गुणों का समूह रहता है, आप में भी परिभाषा–नियम है, इसलिये व्याकरणशास्त्र से भिन्न नहीं है। व्याकरण में आदैच् को वृद्धि कहते हैं, व्याकरण में प्रथमादि पुरुष, गुण नामक संज्ञा, भ्वादि आदि गण रहते हैं, व्याकरण में परिभाषा नियम है, यथा 'इको गुणवृद्धी' यह परिभाषा व्याकरण

१ जघनचपला—आर्याछन्द का भेद है—देखिये ३११ आर्या की टीका, इसका लक्षण—
लक्ष्मैतत्सप्तगणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ।
षष्ठो जश्च न लघु वा प्रथमार्धे नियतमार्यायाः ॥

२. अद्वयवादी—विज्ञानवादी बौद्ध के मत में सबके मिथ्या होने से जाति आदि कुछ नहीं है, आप न सब हैं। बुद्ध के पक्ष में जाति, आत्मा, अर्थ ज्ञान-पदार्थों का ज्ञान, मन में प्रशम नहीं अर्थात् शान्ति अर्थ है, बौद्धों के अनुसार न जाति है, न आत्मा है, क्षणिक एवं मिथ्या होने से पदार्थों का ज्ञान भी नहीं, मनमें शान्ति है। उनके मत में बुद्ध धर्म और संघ ये तीन रत्न हैं, (बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि), रत्न शब्द दोनों में समानार्थक है।

में लागू होती है—जिस प्रकार से ये बातें व्याकरण में उसी प्रकार आप में भी हैं—इसलिये आप व्याकरण से पृथक् नहीं हैं] ॥७८२॥

निर्व्याजस्तवनोऽपि त्यक्ताक्षेपो निरुपमानोऽपि।
सद्रूपकजातिगुणैर्नाथ त्वं गामलङ्कुरुषे ॥ ७८३ ॥

हे स्वामी आप! कपट रहित स्तुति द्वारा, मिथ्या निन्दा का त्याग करने से, अनुपमेय होने से, उत्तम रूप, जन्म जात शौर्यादि उत्तम गुणों के कारण पृथ्वी को एवं वाणी को शोभित करते हैं (गाम् का पृथ्वी और वाणी दोनों अर्थ हैं—वाणी कपटरहित स्तुति करती है, मिथ्या निन्दा नहीं करती, अनुपमेय है, उत्तम रूप, माधुर्य प्रसाद आदि जन्म जात गुणों वाली है[1] ॥७८३॥

अन्यैव वर्णनैषा दूरात्लोकोत्तराऽस्तिता काऽपि।
वामो यथैव शत्रुषु मित्रेषु तथैव वामोऽसि ॥ ७८४ ॥

यह आगे कही जाने वाली स्तुति अतिशय विलक्षण (सब लोकों से विलक्षण) है, आप जिस प्रकार शत्रुओं से विपरीत हैं, उसी प्रकार मित्रों में भी वाम-सुन्दर हैं (शत्रु और मित्र दोनों में वाम हैं—यही विलक्षणता है) ॥७८४॥

पूजयसि येन गुरुजनमभिनन्दसि येन साधुचरितानि।
प्रीणयसि येन विप्रान्नृपनन्दन तेन वृषभस्त्वम् ॥ ७८५ ॥

क्योंकि आप गुरुजनों की (माता पिता ज्येष्ठ भाई की) पूजा करते हैं, साधुओं के—सज्जन पुरुषों के आचरणों की प्रशंसा करते हैं, ब्राह्मणों को तृप्त करते हैं, हे नृपनन्दन! इसलिये आप वृषभ—धर्म एवं श्रेष्ठ हैं। (वृषभ का अर्थ धर्म और श्रेष्ठ दोनों है) ॥७८५॥

दैन्यमिदं यच्छ्लाघा क्रियते ते रक्षसाऽपि न समस्य।
न स बलमकरोद्योषिति भवांस्तु भुङ्क्ते प्रसह्य रिपुलक्ष्मीम् ॥ ७८६ ॥

राक्षस राज रावण के पराक्रम की जो स्तुति मनुष्य करते हैं, वह भी आपके पराक्रम के समान नहीं है, अपितु उससे कम ही है, क्योंकि—रावण ने परस्त्री सीता के लिये पराक्रम नहीं किया था, आप तो शत्रुओं की लक्ष्मी—उनका ऐश्वर्य बलपूर्वक उपभोग करते हैं ॥७८६॥

रमणीय चाटुवचनस्तवनं यल्लाभहेतुरस्माकम्।
तत्पततिं ते स्वरूपे, यामि, नमः सन्तु सौख्यानि ॥ ७८७ ॥

---

1 व्याजस्तुति, आक्षेपालङ्कार, उपमालङ्कार, ये अलङ्कार श्लेष प्रसाद समता माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारत्व, ओज, कान्ति और समाधि ये दस गुण आपकी वाणी में जन्मसिद्ध हैं।

हे रमणीय ! श्लाघा परक वचनों से स्तुति करने में हमारा जो धनादि प्राप्त करना लाभ है, वह आप में मिथ्या नहीं, अपितु आप वास्तव में उस स्तुति के योग्य ही हैं। हम जाते हैं, नमस्कार, आप सब प्रकार से सुखी हों ॥७८७॥

श्रुत्वोत्तरमथदत्त वन्दिनमभिनन्द्य साधुवादेन ।
आस्व किमाकुलता ते, यास्यसि तुष्टो मया प्रहित ॥ ७८८ ॥

स्तुति या सुनने के पीछे प्रशसा करने वाले वदी का साधुवाद देकर अभिनन्दन किया, और कहा बैठो, क्या जल्दी है, मुझसे दिये पारितोषिक आदि से प्रसन होकर, मेरे कहने पर जाओगे ॥७८८॥

पुनरपि पठ तद्युगल गीतिकयोर्यस्त्वया पुरा पठितम् ।
कक्षान्तरितेन मम स्थितस्य कुलपुत्रिकारामे ॥ ७८९ ॥

कुलपुत्रिका (कुलकन्यका के लिये बनाया घर का उपवन, पीछे इसी नाम स प्रसिद्ध) उपवन में मेरे रहने पर ड्योढी में स्थित होकर पहले तुमने जो दो गीतिकायें पढी थीं, उनको एक बार फिर से पढो ॥७८९॥

त्वयि वदति साधुवादं वागियमुन्मुद्रिता बुधसमाजे ।
अभिधायेति पपाठ त्रिस्थानविशुद्धनादेन ॥ ७९० ॥

वन्दी ने कहा—इस विद्वद्गोष्ठी में आपके दिये साधुवाद से मेरी यह वाणी फिर से विकसित हुई (आपसे मुझे नया प्रोत्साहन मिला)। यह कहने से मुझे नई प्रोत्साहना मिली। उर-कण्ठ शिर इन तीन स्थानों से शुद्ध स्वर से वन्दी ने गीति पढी ॥७९०॥

एका खण्डनकुपिता, विरासाऽन्या प्रणयमगीलद्यात् ।
काचिन्निकटतरासनमप्राप्य बिभर्ति निर्वेदम् ॥ ७९१ ॥
अन्या कलहान्तरिता, नवपरिणयलज्जया परा सहिता ।
रमणीगणमध्यगत स्मरातुर किं करोतु बहुजानि ॥ ७९२ ॥

(सद्यानितकम्)

[नायक चतुर (दक्षिण) है वह अनेक स्त्रियों में समान प्रीति रखता है, उसकी] एक अन्त पुर रमणी निराकरण के कारण कुपित है[1]। दूसरी सुदरी प्रणय की माँग

---

1 खण्डिता नायिका—पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यभोग चिह्नित ।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ॥
सा द ३।७२

(ख) निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो
नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्ग ।
यस्या कुतोऽपि गृहमेति पति प्रभाते
सा खण्डितेति कथिता कविभि पुराणै ॥ रसमञ्जरी.

की अस्वीकृति से इष उत्सुकता आदि रहित है, अतएव कुपित है। तीसरी स्त्री पास में आसन न मिलने से दुःखी है। चौथी स्त्री प्रेमी से झगड़ा किये बैठी है[1]। अन्य स्त्री नया विवाह होने से शर्मायी हुई है। इस प्रकार बहुत सी स्त्रियों में बैठा, बहुत सी पत्नियों वाला कामातुर मनुष्य; क्या करूँ इस चिन्ता में पड़ा है ॥७९१–७९२॥

अभ्युपपत्त्यवबोधकमस्तकचलनं विधाय विकृतभ्रूः।
नृत्याचार्यमवादीदेतस्मिन्विन्नु संगीतम् ॥ ७९३ ॥

स्वीकृति सूचक रूप में सिर को हिलाकर, भ्रुओं को टेढ़ा करके नृत्याचार्य से पूछा–कि कहो; संगीत कैसा रहा ॥७९३॥

स उवाच ततो वणिजो नेतारो यत्र, यत्र पात्राणि।
शाठ्यायतनं दास्यस्तत्र कुतः सौष्ठवं नाट्ये ॥ ७९४ ॥

नृत्याचार्य ने कहा—जब नाटक में क्रय-विक्रय करने वाले; सौदा करनेवाले बनिये नेता बने; ठगाई धूर्तता का स्थान वेश्यायें जिसमें पात्र हों, ऐसे नाटक में सुन्दरता कहाँ से आ सकती है ॥७९४॥

काचिद्बलिना क्रान्ता, काचिन्न जहाति कामिनं रुचिरम्।
अन्या पानकगोष्ठ्यां नयति दिनं प्रीतकैः सार्धम् ॥ ७९५ ॥
नोत्सृजति सततमेका पुरुषागमनाशया गृहद्वारम्।
शूलापालः कथयति लब्धोत्कोचो रजस्वलामपराम् ॥ ७९६ ॥

कोई तो वेश्या बलवान्–अधिक प्रभुता वाले पुरुष से आक्रान्त है; उसके अधीन है। कोई वेश्या सुन्दर कामुक को छोड़ना नहीं चाहती; कोई दोस्तों के साथ मद्यपान गोष्ठी में बैठी समय व्यतीत करती है। एक जो है, वह कामुक के आने की आशा में घर की देहली छोड़ना नहीं चाहती। वेश्याध्यक्ष रिश्वत

---

१. कलहान्तरिता—चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा ॥ सा० द० ३।८१.

(ख) प्राणेश्वरं प्रणयकोमलमंजुवाग्भिर्या चाटुकारमचिरादवधीर्य याति।
संतप्यते मदनवह्निशिखापदग्धैर्व्याकुला कलहान्तरिता हि सा स्यात् ॥

(ग) इसी की भाँति प्रसिद्ध श्लोक—
स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता, वारोऽङ्गराजस्वसुः
द्यूते रात्रिरियं जिता कमलया, देवी प्रसाद्याऽद्य च।
इत्यन्तःपुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते,
देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः ॥

लेकर किसी को रजस्वला बता देता है (रजस्वला के लिये नृत्य निषिद्ध है)[1] ॥७९५-७९६॥

रंगगताऽपि लुब्धा शृणोति यदि परिचित गृहायातम् ।
उद्दिश्य चापि कार्यं व्रजति तत प्रकृतमुत्सृज्य ॥ ७९७ ॥

रंगशाला में आई हुई वेश्या यदि परिचित के घर में आने की खबर सुनती है, तो कोई बहाना बनाकर उपस्थित कार्य को छोड़कर घर की ओर भाग पड़ती है ॥७९७॥

आ तारुण्योद्भेदात्कान्ते हर्म्यैयया न्यस्ता ।
सामाजिकमध्यस्था कथमन्या समुपयाति परभागम् ॥ ७९८ ॥

जो वेश्या जवानी आने के समय से ही सुन्दर युवक में अनुरागवती हो गई है, वह सामाजिक जनों के बीच में किस प्रकार से अतिशय शोभनीय प्रशसनीय हो सकती है (उसका मन तो सुन्दर युवक को ढूँढने में ही लगा रहेगा, काम में मनोयोग नहीं करती ॥७९८॥

चेतोन्तरा न सत्त्व, सत्त्वे सति चारुता प्रयोगस्य ।
न भवति सा वेश्याना मद्यामिषपुरुषनिहितहृदयानाम् ॥ ७९९ ॥

असावधानता से मन एकाग्र नहीं होता मन के एकाग्र होने पर ही अभिनय में रमणीयता आती है । मद्य मांस एवं पुरुष में आसक्त मन वाली वेश्याओं से यह सम्भव नहीं ॥७९९॥

वयमपि देवनिकेतनमनङ्गहर्षे गते त्रिदिवलोकम् ।
आश्रितवन्तो गत्वा तीर्थस्थानानुरोधेन ॥ ८०० ॥

अनंग हर्ष (श्रीहर्ष) के स्वर्ग चले जाने पर हम भी तीर्थ स्थान के कारण यहाँ वाराणसी में आकर इस देवालय में ठहर गये हैं[2] ॥८००॥

---

१ (क) शूलति विक्र याति आत्मशरीर इति शूला पण्ययोषित्—
ता पाठयति इति शूलापाल, वेश्याधिपति ।
(ख) ग्रहशूला जनदा, शिवशूला द्विजालय ।
मन्दा कंशशूल वा, मतान्यत्र कशो युगे ॥ हरिवंश
अट्टशूलामति प्रोक्त शूलो विक्रय उच्यते ।
शिवा वेद इति प्रोक्त कशो मग इतीयते ॥

२ श्रीहर्ष के लिये अनङ्गहर्ष प्रसिद्ध है—रत्नावली के इस श्लोक के कारण श्रीहर्ष विद्वानों में अनङ्गहर्ष नाम से प्रसिद्ध है—
अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् ।
यदनेन न सम्प्राप्त पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥ रत्नावली १।२२

इह तु कदाचित् किंचिद्वृत्तिनिरोधाभिशङ्कया निरुत्साहा ।
रत्नावल्यामेता विदधाति करपादविक्षेपम् ॥ ८०१ ॥

यहाँ वाराणसी में जीविका के लिये ही, बिना उत्साह के रत्नावली नाटिका का अभिनय करते हुए हाथ पैरों का चालन करते हैं ॥८०१॥

वत्सेशभूमिकाऽस्या इयमनुकुरुते नरेश्वरवयस्यम् ।
वासवदत्ताचरितप्रयोगमेषा विडम्बयति ॥ ८०२ ॥

यह नटी वत्सेश्वर उदयन का अभिनय करती है, यह नटी राजा के नर्म सचिव वसन्तक का यह नटी वासवदत्ता के चरित्र का अभिनय करने में वासवदत्ता को भी पीछे छोडती है ॥८०२॥

उद्यमसाहित्यवशाच्छोभातिशयेन मद्नुबन्धेन ।
अनया प्रसिद्धिरामा सिंहलराजात्मजानुकृतौ ॥ ८०३॥

प्रयाग में परिश्रम एवं सहभाव—स्वचित्तता के कारण एवं शोभा की अधिकता से तथा मेरे आग्रह से इसने सिंहल राजसुता रत्नावली का अनुकरण करने में प्रसिद्धि पाई है ॥८०३॥

विविधस्थानकरचनापरिक्रमं गात्रवलनलालित्यम् ।
काकुविभक्तार्थगिरो रसपुष्टिं वासनास्थैर्यम् ॥ ८०४ ॥
सात्त्विकभावोन्मीलनमभिनयमनुरूपवर्तनाभरणम् ।
मिश्रामिश्रे नाट्ये लयच्युतिं वर्णयन्ति मञ्जर्या ॥ ८०५ ॥

अनेक नाना प्रकार के स्थानों की रचना में किये पैरों के विक्षेप भ्रमण में, अंगों के मोड़ने में सौन्दर्य को, नाना प्रकार की कण्ठध्वनि से कहे जाने वाली भिन्न भिन्न अर्थ सूचक वाणी की अभिनय आदि द्वारा शृंगारादि रस का पोषण करने में नट एवं सामाजिक जनों की भावना को दृढ करने में, स्तम्भ-स्वेद आदि सात्त्विक भावों का विकास करने में, अभिनय के अनुरूप भूमिका के योग्य वर्तन अंग विक्षेप एवं आभरण उपचार धारण करने में, लयच्युति-तालद्रुति में, मिश्र-गेय नृत्यादि अमिश्र शुद्ध पठनीय नाटक में मञ्जरी की प्रशंसा करते हैं[1] ॥८०४-८०५॥

---

1. काकु—भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते, काकु वक्रोक्ति, यथा—

इति, त्वया कृतमहो निखिल मधुप,
न त्वादृशो परहितव्यवसायोऽस्ति लोके ।
भ्राम्यामि हन्त मृदुभाहि गता मदर्थं,
सिध्यन्ति कुत्र सुहृदामि विना प्रमेय ॥

एषाऽभिधानकीर्तनगुणितस्वशरीरकुसुमशररोषा ।
सहसोद्भिन्नमनोभवभावदशा सिन्दुवारविवरेण ॥ ८०६ ॥
पश्यन्ती वत्सेश्वरमनुकार्यानुकरणभेदपरिमोषम् ।
साधुध्वनिमुखराननसामाजिकजनमनःसु निदधाति ॥ ८०७ ॥
(युगलकम्)

यह मजरी उदयन का नाम सुनते ही अपने शरीर में कामदेव के कोप के बढ़ने से सहसा प्रकम्पित, काम जन्य भावदशा–चित्तवृत्ति विशेष के कारण सिन्दुवार वृक्ष के पत्तों में से या उसकी ओट में से वत्सेश्वर–उदयन को देखती हुई, अनुकार्य-रत्नावली का अनुकरण पूर्ण रूप में करके, सामाजिक जनों के मुखों से साधुवाद पाती है[1] ॥८०६-८०७॥

वत्सपतिमालिखन्ती कामावस्थाः क्रमेण भजमाना ।
वेपथुपुलकस्वेदैरानह्यति निसष्टुल हस्तम् ॥ ८०८ ॥

काम की प्रत्येक दशा का क्रमशः अनुभव करती हुई, उदयन का चित्र बनाने में–कम्पन, रोमाच, स्वेद होने के कारण इसका हाथ अस्थिर है ॥८०८॥

(ख) सात्त्विक भाव—
स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥
(ग) लय—ताला-तरालवर्ती यः कालोऽसौ लय ईरितः ॥
(घ) रस तीन प्रकार के हैं—
१ वाचिक रसानुरूपैराखापैः श्लोकैर्वाक्यैः पदैस्तथा ।
नानालङ्कारसंयुक्तैर्वाचिको रस उच्यते ॥
२–नेपथ्य—कर्मरूपवयोजातिदेशकालानुवर्तिभिः ।
माल्यभूषणवस्त्राद्यैः नेपथ्यरस उच्यते ॥
३–स्वाभाविक–रूप-यौवन लावण्यस्थैर्यधैर्यादिभिर्गुणैः ।
रसः स्वाभाविको ज्ञेयः स च नाट्ये प्रशस्यते ॥
(ङ) मिश्र गेय नृत्यादि सहित नाटक—यथा विक्रमोर्वशी,
अमिश्र-गेय रहित पठनीय मात्र–यथा मालतीमाधव ।

१ रत्नावली नाटिका में—तदनेन सिन्दुवारविटपेन अपवारितशरीरा भूत्वा प्रेक्षे-
२ यद्यपि मे अतिसाध्वसेन वेपते अयम् अतिमात्रम् अग्रहस्त, तथापि तस्य जनस्य अन्यो दर्शनोपायो नास्तीति यथा तथा आलिख्य एव प्रेक्षिष्ये ॥

सदृशेऽप्यनुभावगणे करुणरसं विप्रलम्भतो भिन्नम् ।
दर्शयति निरभिकांक्षितसौख्यं ननु गोचरापन्ना ॥ ८०९ ॥

अभिनय सूक्ष्म प्रदर्शन के कौशल से एक समान दिखाई पड़ने वाले, करुण रस और विप्रलम्भ शृंगार परस्पर भिन्न हैं, इनमें करुण रस संयोग सुख की आशा रहित होता है, (करुण रस में संयोग सुख की आशा नहीं रहती, विप्रलम्भ शृंगार में संयोग सुख की आशा बनी रहती है, यह दोनों में भेद है[1] । निःश्वास आदि अनुभाव दोनों में समान हैं) ॥८०९॥

अस्मिन्दर्शयतीत्थं मंजरिकां साभिलाषमवलोक्य ।
पस्पर्श राजपुत्रः किमसाविति वेत्रदण्डेन ॥ ८१० ॥

नृत्याचार्य द्वारा इस प्रकार मंजरी को दिखाने पर समरभट ने चाव के साथ मंजरी को देखकर; वेत्रदण्ड से छूते हुए पूछा कि "क्या यही है" ॥८१०॥

बुद्ध्वाथ तस्य भावं प्रसारयन्युवतिसंकथाकेलिम् ।
न्यक्कुर्वन्वारवधूः सचिवः प्रशशंस बन्धकीगमनम् ॥ ८११ ॥

राजपुत्र के मन के भाव को जानकर, मन्त्री ने अन्य युवती नायिकाओं की कथा का प्रारम्भ करके; वेश्याओं की निन्दा करते हुए, बन्धकीगमन परदार गमन की प्रशंसा की[2] ॥८११॥

दाररतिः संततये व्याधिप्रशमाय चेटिकाश्लेषः ।
तत्खलु सुरतं सुरतं दुष्प्राप्यं यदन्यनारीषु ॥ ८१२ ॥

सन्तानोत्पत्ति के लिये अपनी पत्नी के साथ सम्भोग किया जाता है, पित्त-

---

1. भवभूति ने करुणरस और विप्रलम्भ को एक ही कहा है—एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्—उत्तररामचरित ३।४७, जिस प्रकार आवर्त्त और बुद्बुद में बाहर के आकार में भेद है, परन्तु दोनों में एक ही जल के अंग हैं; उसी प्रकार करुण और विप्रलम्भ में आकार का भेद है, वास्तव में अन्तः भाव एक है। विप्रलम्भ चार प्रकार का है अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या और शापजन्य। कुछ शाप के स्थान पर कलह अन्य मानते हैं। दूसरे आचार्य, पूर्वानुराग मान, प्रवास, करुणात्मक चार प्रकार का विप्रलम्भ मानते हैं।
२. बन्धकी का अर्थ—कुलटा, मुक्ता, पुंश्चली, स्वैरिणी है, यह छै प्रकार का है—
विदग्धा, मुदिता चैवाऽनुशयानाऽथ लक्षिता ।
गुप्ता च कुलटा चेति षट्प्रकारोदिता बुधैः ॥

ज्वर आदि रोग शान्ति के लिये दासी का आलिंगन किया जाता है।[1] परस्त्रियों में कठिनाई से जो सम्भोग प्राप्त होता है, वही वास्तव में सु-रत सुन्दर रति है[2] ॥८१२॥

स्वव्यापारैकमतेः परचिन्ता नास्ति मे कदाचिदपि।
पश्यंत्यास्त्वामीदृशमद्य तु मे मानसं व्यथितम् ॥ ८१३ ॥

दूतिका या नायक को परनारी के लिये प्रलोभित करना अपने ही काम में लगे रहने से मुझे दूसरों के विषय में चिन्ता या सोच विचारने का जरा भी समय नहीं मिलता। आज तुमको ऐसा कमजोर देखकर ही मेरे मनको दुःख हो गया॥८१३॥

यदि वेद्मि तस्य वसतिं सामर्थ्यं यदि भवेत्ततोऽप्यधिकम्।
तद् गत्वा दग्धविधिं लगुडैः संचूर्णयाम्यधुना ॥ ८१४ ॥

यदि मैं उस ब्रह्मा के निवास स्थान को जान सकूँ और ब्रह्मा से अधिक शक्ति मुझमें आ जाये, तो अभी जाकर डण्डों से उस मुँह जले का सिर फोड़ दूँ ॥८१४॥

वपुरिदमनुपममीदृग् यदि विहितं तेन ते धात्रा।
अनुरूपरमणविरहात् किमिति कृतं वन्ध्यं जन्मफलम् ॥ ८१५ ॥

उस ब्रह्मा ने यदि ऐसा सुन्दर यह शरीर बनाया था, तो अनुकूल रमण-विलास लालसा के अभाव में जन्म-फल को निष्फल क्यों किया (सुन्दर शरीर के अनुरूप विलास भी देना चाहिये था[2]) ॥८१५॥

शैशवमस्तु जरा वा व्याधिर्वा स्त्रेन्द्रियप्रणाशो वा।
स्वाकारं तारुण्यं न तु कुपतिकदर्थनाग्रस्तम् ॥ ८१६ ॥

---

१. अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषारतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ मनु—९.२८
(ख) पेयं प्रियाया मुखमेव केवलं कोकिलस्वराजेन सहानुभूतम्।
(ग) कन्या कौतुकमात्रेण, विधवा संमर्दमात्रार्थिनी,
वेश्या वित्तसमीहया, स्वगृहिणी गत्यन्तराभावात्।
वाञ्छन्तीत्यमनेककारणवशात् पुंभिः स्त्रियः संगमं,
शुद्धस्नेहनिबन्धता परवधूः पुण्यैः परैः प्राप्यते ॥

२. लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महान् स्वीकृतः
स्वच्छन्दस्य सुखं जनस्य वसतश्चिन्ताज्वरो निर्मितः।
एषाऽपि स्वयमेव तुल्यरमणाभावाद् वराकी हता
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्व्यास्तनुं तन्वता ॥

नायिका के प्रति दूती का वचन—स्त्री को यदि योग्य-अनुकूल पति न मिले तो इससे यह कहीं अधिक अच्छा है कि उसका बचपन रहे, या बुढापा आजाये, अथवा उसकी किसी रोग या चेत्रिय रोग (राजयक्ष्मा आदि असाध्य रोग) से मृत्यु हो जाये, (सारे जीवन भर कुपति रूप पीडा से दुःखी होकर जीना सबसे अधिक बुरा है) ॥ ८१६ ॥

केलि प्रदहति मज्जा शृंगारोऽस्थीनि चाटव प्राणान्।
न करोति मनस्तुष्टिं दानमभव्यस्य गृहभर्तुः ॥ ८१७ ॥

जिसमें मन नहीं लगे ऐसे हीन पति की केलि शृंगारचेष्टा हास्य आदि मज्जा को जलाती है, शृंगार अस्थियों को, चाटुवाद-खुशामद प्राणों को जला देता है, उसका दिया दान भी मन को प्रसन्न नहीं करता ॥ ८१७ ॥

कुत आगताऽसि कस्मिन् वेलामियतीं स्थिता, किमर्थमिति।
पृच्छन्नस्वस्थमना जनयति गेही शिरःशूलम् ॥ ८१८ ॥

पत्नी के प्रति शंका—कहाँ से आई है, इतनी देर कहाँ लगाई, क्यों देर की, इस प्रकार शंकित मनवाला स्वामी पूछता हुआ शिर शूल (सिरदर्द) को उत्पन्न करता है ॥ ८१८ ॥

यदि भवति दैवयोगाच्चक्षुर्विषये समुज्ज्वलस्तरुणः।
तज्जात्मानं तापयति जाया च रटन् गृहस्वामी ॥ ८१९ ॥

यदि भाग्यवश कोई सुन्दर उज्ज्वल शरीर वाला युवा मनुष्य दीख जाता है, तो घर का स्वामी अपनी पत्नी को कोसता हुआ अपने माथे को पीटने लगता है [प्रतिदिन पत्नी से झगडा करता है][1] ॥ ८१९ ॥

सविवादे परलोके जनापवादे च जगति बहुवादे।
दैवाधीने प्रणये न विदग्धा हारयन्ति तारुण्यम् ॥ ८२० ॥

परलोक है या नहीं, इसके सन्दिग्ध होने से, संसार में अनेक प्रकार की लोक निन्दा होने से, प्रणय—प्रेम के दैव के अधीन होने से, चतुर स्त्रियाँ अपने यौवन को व्यर्थ नहीं खोतीं, वे इन बातों की चिन्ता नहीं करतीं ॥ ८२० ॥

दुर्भर्तृकरास्फालनमलिनीनियमाणशोभमनुदिवसम्।
तुगमपि पतितकल्पं स्तनशालिनि तत्पयोधरद्वन्द्वम् ॥ ८२१ ॥

प्रतिदिन दुष्ट पति द्वारा मार पड़ने से—भूमि पर खींची जाने के कारण, तेरा सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया है। हे सुन्दर स्तनोंवाली ! तेरे ये दोनों उन्नत-पीनस्तन भी सूख गये[2] ॥ ८२१ ॥

---

१. उज्ज्वलवपुषं पुरुषं कामयते स्त्री वरोऽपि तां दृष्ट्वा रतिरहस्य १३।१४.

२ गुणो दूषणतां याति दूषणं गुणतां क्वचित्।
यथाहि नम्रता दोषः स्तनयोः स्तब्धता गुणः ॥

पर्यंक स्वास्तरण पतिरनुकूलो मनोहर सदनम् ।
तुलयति न हि लक्षांशे त्वरितक्षणचौर्यसुरतस्य ॥ ८२२ ॥

सुन्दर बिछा पलग, अनुकूल पति, सुन्दर मनोहर घर भी जल्दी में सम्पादित चौर्यरत के लाखवें भाग की भी समानता नहीं कर सकता[1] ॥ ८२२ ॥

सहसा सकटवर्त्मन्यवितर्कितसमुपागतेनापि ।
अभिलषितेनोद्घृष्टकमनल्पशुभकर्मणा लभ्यम् ॥ ८२३ ॥

तग रास्ते में सहसा बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक सामने आ जानेपर इच्छित उद्घृष्टक आलिंगन मिलना बहुत बड़े शुभ कामों का ही फल होता है। [उद्घृष्टक-उत्सव या देवयात्रा में सहसा थोड़ी देर के लिये नायक और नायिका के अंगों का परस्पर रगड़ना-उद्घृष्टक आलिंगन है][2] ॥ ८२३ ॥

प्रीति किल निरतिशया स्वर्ग परलोकचिन्तकैर्गदित ।
तस्यास्तु जन्मलाभो हृदयेप्सितपुरुषसयोगात् ॥ ८२४ ॥

परलोक का विचार करने वालों ने निरतिशय [जिससे बढ़कर कुछ भी अधिक नहीं] प्रीति को स्वर्ग कहा है। यह निरतिशया प्रीति [स्वर्ग की प्राप्ति] मन चाहे पुरुष के साथ मिलने से ही मिलती है ॥ ८२४ ॥

अतटस्थस्वादुफलग्रहणव्यवसायनिश्चयो येषाम् ।
ते शोकक्लेशकृता केवलमुपयान्ति पात्रता मन्दा ॥ ८२५ ॥

अस्थिर दुर्ग्राह्य मीठे फल की प्राप्ति के लिये जिन्होंने दृढ सकल्प कर लिया है, ऐसे मूर्ख व्यक्ति केवल शोक और क्लेश को ही प्राप्त करते हैं, वे इसी के योग्य हैं ॥ ८२५ ॥

किं प्रतिकूला ग्रहगतिरत परिणतमात्मदुश्चरितम् ।
स्थानुष्ठानव्यसन किं वा तस्या मयोनिहतकस्य ॥ ८२६ ॥

नायिका की विरहावस्था का वर्णन करके दूती नायक के मन में संभोग की उत्कठा को उत्पन्न करती है—क्या यह ग्रहगति की प्रतिकूलता है, जो आप के साथ उसका अभी तक समागम नहीं हुआ, अथवा उसके अपने किये बुरे कर्मों का

---

१ अपथ्यभोगेषु यथाऽनुरागो स्पृहा यथाऽर्थेष्वतिदुर्गतानाम् ।
परोपतापेषु यथा खलानां स्त्रीणां तथा चौर्यरतोत्सवेषु ॥

२ उत्सवे देवयात्रायां महातिमिरसंकुले ।
विजने स्थानके वाऽपि गच्छतोश्च परस्परम् ॥
अङ्गावयवयो नातिचिरकाल तु यद् भवेत् ।
तदुद्घृष्टकमि याहुर्वात्स्यायनमहामुनि ॥ रतिरत्नप्रदीपिका १४।०४ ७८,

यह फल है, या दुष्ट ब्रह्मा का किया हुआ कार्य है जो अभी तक आपके साथ उसका मेल नहीं हुआ ॥ ८२६ ॥

येन तपस्वी स युवा स्पृशति समीरं त्वदंगसंस्पृष्टम् ।
त्वत्पादाक्रान्तभुवे स्पृहयति, ककुभं त्वदाश्रितां नमति ॥ ८२७ ॥

इसी कारण आप के अंगों से स्पर्श की हुई वायु का वह विचारी स्पर्श करना चाहती है,[1] जिस भूमि पर आप का पैर पड़ा होता है, उस भूमि पर वह भी चलना चाहती है या उसको देखना चाहती है। जिस दिशा में कार्यवश तुम जाते हो, उस दिशा को वह नमस्कार करती है ॥ ८२७ ॥

ध्यायति च त्वद्रूपं, त्वन्नामकवर्णमालिकां जपति ।
एकात्मीकृतचेतास्त्वदंगतः सौख्यसिद्धिमभिकांक्षन् ॥ ८२८ ॥
(अन्तर्युगलकम्)

वह आप के ही रूप का ध्यान करती है, आप के ही नाम के अक्षरों की माला जपती है। आप के साथ में सुरतानन्द सिद्धि की कामना करती हुई वह आप के अंगों के साथ में एकात्मभाव स्थापित करती है ॥ ८२८ ॥

उत्सृज्य सकलकार्यं तिर्यग्ग्रीवं विलोकयन् भवतीम् ।
कुरुते गृहाग्ररथ्यां यातायातैः शतावर्ताम् ॥ ८२९ ॥

सारे कार्यों को छोड़कर गवाक्ष (खिड़की) आदि में बैठकर, ग्रीवा को थोड़ा टेढ़ा करके, स्मित नेत्रों से आप को देखती रहती है। आपके घर के सामने के गली में हजारों बार आना जाना करती है—घर के सामने चक्कर काटती है ॥८२९॥

दृष्टोऽसि तया सुचिरं गेहाभ्याशे परिभ्रमन् स्पृहया ।
सन्देश एष दत्तः प्राभृतमेतत्तया ' दत्तम् ॥ ८३० ॥

घर के समीप में घूमते हुए आपको उसने बड़ी चाह के साथ देर तक देखा है। इसलिये उसने यह सन्देश भेजा है और यह उपहार [पान माला आदि] भी साथ में दिया है ॥ ८३० ॥

शुष्यति साऽलभमाना भवत्कृते वेश्मनिर्गमावसरम् ।
इति चतुरशठस्त्रीभिर्विलुप्यते त्वदपदेशेन ॥ ८३१ ॥
(अन्तर्युगलकम्)

घर से निकलने का अवसर न मिलने के कारण वह आपके लिये सूखती जाती है। इस प्रकार के अद्भुतसे बहानों द्वारा चतुर धूर्तस्त्रियां परदाराओं का चारित्र्य नष्ट किया करती हैं ॥ ८३१ ॥

---

१. मेघदूत में आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः,
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥ मेघदूत १०३.

किं वा कथितैरधिकैरस्थानाविष्टचेतसस्तस्या ।
अनुतिष्ठ यथायुक्तं त्वत्तो नाशश्च जीवरक्षा च ॥ ८३२ ॥

(दूतीवचन, महाकुलकम्)

अधिक कहने से क्या लाभ, आप जैसे कठिन हृदय वाले व्यक्ति में दिल लगाने वाली उसके लिये जो उचित समझें आप करें, आप से ही उसकी प्राणरक्षा है और आप से ही उसकी मृत्यु है—उसका जीवन-मरण आप के ही हाथ में है ॥ ८३२ ॥

कुलपतनं जनगर्हां नरकगतिं प्राणितव्यसन्देहम् ।
अङ्गीकरोति तत्क्षणमबला परपुरुषमभियान्ती ॥ ८३३ ॥

पर पुरुष के पास जाती हुई स्त्री कुलनिन्दा, लोकापवाद, नरकप्राप्ति, जीवन का भय, यह सब उस क्षण में स्वीकार कर लेती है[1] ॥ ८३३ ॥

स तु लिखति दासपत्रं त्यजति कुटुम्बं ददाति सर्वस्वम् ।
यावन्न भवति पुरतः परयुवतिः प्रोज्झितावरणा ॥ ८३४ ॥

आवरण रहित (निर्लज्जा), पराई युवती स्त्री के सामने आने पर मनुष्य दूसरे की दासता भी स्वीकार करने के लिये, अपने सगे सम्बन्धियों को भी छोड़ने के लिये और अपना सर्वस्व लुटाने के लिये तैय्यार हो जाता है।[2] [परस्त्री-समागम के लिये मनुष्य सब काम करने के लिये तैयार हो जाता है] ॥ ८३४ ॥

दृष्टं यद् द्रष्टव्यं व्यपयातं कौतुकं विदितमन्तः ।
इति याति मनसि कृत्वा विहितविधेयस्ततस्तूर्णम् ॥ ८३५ ॥

जिसे देखने की चाह थी, वह देख लिया, मनकी उत्सुकता भी समाप्त हो गई, अन्दर का भी अनुभव कर लिया, मन में यह सोच कर, परकीया रति सुख से कृतकृत्य होकर, कामुक जल्दी ही उस स्थान से हट जाता है ॥ ८३५ ॥

साऽपि च्छिन्ना च्छोटनगृहीतमुक्ता विलोकयन्त्याशा ।
विशति गृहं सत्रस्ता सर्वत आशङ्किता सवैलक्ष्यम् ॥ ८३६ ॥

---

१ मृच्छकटिक में—न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति—४।११.
कुलकूलद्वयावद्धां वधुबन्धनयन्त्रणाम् ।
न सहन्ते तरङ्गिण्यो रतिशीला हि योषितः ॥

२ तावत्प्राणपणेनापि चपला सकुलद्रुमा ।
परस्त्रियं प्रार्थयन्ति न यावद् वक्षमुज्झति ॥ क्षेमेन्द्र
(ख) पूर्णो तु परदाराणामभिप्रेत समागम । शिवपु॰ धर्मसंहिता १०।२१

वह छिनार भी चुटकी बजाने जितने समय में-थोड़ी समय में ही सम्भोग से छूटकर, चारों ओर देखती हुई, सब ओर से शंकित, डरी हुई सी, शर्माती हुई घरमें घुसती है ॥ ८३६ ॥

नवचारित्रभ्रशा सुरचितकुलटोदितेषु नो निपुणा।
पृष्टा क्व गताऽसि त्वं न क्वचिदिति संभ्रमाद् ब्रूते ॥ ८३७ ॥

नया-नया शील का नाश, कुलटाओं के अच्छी प्रकार बनाये उत्तरों के देने में अनिपुण, स्त्री से, 'कहा गई थी' पूछा जाने पर, भय से घबराती हुई वह कहती है कि 'कहीं नहीं गई थी' ॥ ८३७ ॥

मितदोषे बहुरोषा पुरुषा अपि चपलकौतुकप्राया।
त्वं च प्रहेण लग्ना कार्यविमूढाऽत्र तिष्ठामि ॥ ८३८ ॥

दूती का नायिका के प्रतिवचन-पुरुष भी चंचल और कुतूहल मन वाले होते हैं, थोड़े से अपराध पर बहुत क्रोध करते हैं, और तू जमीन पकड़े बैठी है, एक कदम भी आगे नहीं चलती, मैं यहां सोच में पड़ी हूँ कि क्या करूँ ? ॥८३८॥

इति दोलायितहृदया स्थिरीकृताऽभ्यस्तकर्मणा दूत्या।
दृष्टेति शङ्कमाना पदे पदे चलति पर्णेऽपि ॥ ८३९ ॥

इस प्रकार दूती के बार-बार कहने से चलने का निश्चय करके अस्थिर-शंकित मन से चलती हुई स्त्री कदम कदम पर पत्तों की खरखराहट से भी शंकित होती है[1] ॥ ८३९ ॥

अनु दिक्षु विक्षिपन्ती मुहुर्मुहुश्चकिततरलिते नेत्रे।
प्राप्ता संकेतभुवं शतगुणितमनोरथाकृष्टा ॥ ८४० ॥

बार-बार भयभीत और चंचल नेत्रों से चारों ओर देखती हुई, हजारों मनोरथों को लेकर संकेत स्थल पर पहुँचती है ॥ ८४० ॥

भयशृंगारव्रीडामिश्रीभूतानुभावसन्दोहम्।
जनयन्ती लोलांशुकदृष्टादृष्टाङ्गकुञ्चनाभिः ॥ ८४१ ॥

हिलते हुए वस्त्र के आंचल के कारण शरीर के कुछ दिखाई पड़ने एवं कुछ नहीं दिखाई पड़ने वाले अंगों से, संकोच, भय, शृंगार और लज्जा मिश्रित भ्रूभङ्गादि अनुभाव समूह को उत्पन्न करती है ॥ ८४१ ॥

नीवीश्लथनारम्भं निरन्धती कितव यामि यामीति।
निभृतास्फुटाभिधानैः पल्लवयन्ती स्मरस्य कर्तव्यम् ॥ ८४२ ॥

---

१ दूती—दौत्यं कृत्वा नयेद्यास्तं वल्लभां वा प्रियं प्रति।
सा दूती कथिता सद्भिर्मिथोऽनुनयकोविदा ॥

कामुक द्वारा नीवीबन्धन ढीला करना प्रारम्भ करने पर, उसको रोक्ती हुई थोड़े और सुस्पष्ट शब्दों में कहती है कि 'हे धूर्त! मैं जाती हूँ जाती हूँ'। इस प्रकार कहकर सम्भोग की चाह को और भी अधिक बढ़ावा देती है[1] ॥ ८४२ ॥

नयतीवान्तर्विलय सममममानेव सर्वगात्राणि।
सश्लिष्यतेऽन्ययोषा चित्त तस्यामृत पुरत ॥ ८४३ ॥

शरीर के सब अवयवों को अतिदृढ़ता से पकड़ने की भाँति मानों कामुक के अन्दर प्रविष्ट हो रही हो, इस प्रकार से परनारी आलिंगन करती है। इस आलिंगन के सामने उसे अमृत भी कड़ुआ लगता है—तुच्छ जचता है ॥८४३॥

नायिका का वचन—

न कृत तव रहसि पुरो बाष्पावृतकण्ठकुण्ठया वाचा।
गेहस्वामितिरस्कृतिनिष्पादितदुःखवेगनिर्वहणम् ॥ ८४४ ॥

घर के स्वामी द्वारा की हुई भर्त्सना से उत्पन्न दुःख की बात भी एकान्त में तुम्हारे सामने आसुओं से रुके गले से कुण्ठित बनी वाणी द्वारा मैंने नहीं कही ॥ ८४४ ॥

उपधानीकृत्य भुजावन्योन्य निर्विशङ्कभावाभ्याम्।
सवलितोरु न सुप्त शिथिलाग रतिविमर्दखिन्नाभ्याम् ॥ ८४५ ॥

सुरत श्रम से श्रान्त दोनो एक दूसरे की बाहु की तकिया बनाकर, बिना किसी शका के, अगों को ढीला किये एक दूसरे की ऊरु के ऊपर ऊरु रखकर हम नहीं सोये ॥ ८४५ ॥

आत्मगृहादानीत प्रच्छाद्य स्वादु भोजन विजने।
स्वकरेण मया दत्त निर्वृतहृदयेन नाशित भवता ॥ ८४६ ॥

अपने घर से (अपने हाथ का बनाया) वस्त्र से ढाप कर लाया (चोरी से लाया) भोजन एकान्त में, अपने हाथों से ही दिया, तुमने उसे भी शान्त चित्त से नहीं खाया ॥ ८४६ ॥

न कृता चरित्ररक्षा न च भुक्त त्वच्छरीरमपयन्त्रम्।
दृष्टादृष्टभ्रष्टा क्व यामि किंवा करोमि दुर्जाता ॥ ८४७ ॥

---

1 पराङ्गनानां सुरताभ्यनुज्ञा मन्दोदिता एव निषेधवाचः। मुकुन्दानन्दभाण-१३०
(ख) अधिकचिबुकगण्ड नासिकाग्र च चुम्बन्,
पुनरुपरिदशनोष्ठं तालु जिह्वा च भूय।
पुलकितजघन-नाभीमूलवक्षोरुहोरु,
श्लथयति दृढधैर्यं क्षोभयित्वाऽथ नीवीम् ॥ रतिरहस्य १०।३

मैंने तुम्हारे लिये अपने शील की भी रक्षा नहीं की, बिना किसी रुकावट या हिचकिचाहट के तुम्हारे शरीर का चुम्बन-आलिंगन द्वारा भोग भी पूरे तौर पर नहीं किया। दृष्ट विषयानन्द सुख, अदृष्ट पुण्य से भ्रष्ट मैं कहाँ जाऊँ, दोनों स्थानों से भ्रष्ट हो गई, फूटे भाग्यों वाली मैं अब कहाँ जाऊँ ॥ ८४७ ॥

अवगुण्ठनविनयरति स्वैरालापं च मन्दसंचारम्।
सम्प्रति मम पापाया करपिहितमुखा हसन्ति तत्त्वज्ञाः ॥ ८४८ ॥

कुलवधू के समान मुझ दुष्टा का घूँघट निकालना, नम्रता, प्रीति-स्नेह, धीमे से बातचीत करना, धीरता-गम्भीरता पूर्वक चलना देखकर, वास्तविक बात को जानने वाले व्यक्ति हाथों से मुख को ढाँपकर अब मुझ पर हँसते हैं ॥ ८४८ ॥

यासामासीत्सख्यं मया समं समवय:कुलस्त्रीणाम्।
ता वारयन्ति मत्तः कुसंग इति तन्नियन्तारः ॥ ८४९ ॥

समान वय एवं समान कुलवाली जिन स्त्रियों के साथ मेरी मित्रता थी, उनके गुरुजन अब मेरे साथ उठने बैठने-बातचीत करने से उनको रोकते हैं ॥ ८४९ ॥

धिग्वादान् परिजनतः सहमानाऽनुत्तरा ह्यधोवदना।
तिष्ठामि निरभिमाना निजनिर्मितदोषदौर्बल्यात् ॥ ८५० ॥

नीचे मुख किये, बिना किसी प्रकार का उत्तर दिये कुटुम्बी एवं पड़ोसी जनों के धिक्कारों को मैं सह लेती हूँ। अपने किये दोष की निर्बलता के कारण ही गर्वरहित होकर रहती हूँ ॥ ८५० ॥

सद्भिर्विधीयमानं प्रसंगपतितं पतिव्रतास्तवनम्।
हृदयेन दूयमाना मूढा सीदामि शृण्वन्ती ॥ ८५१ ॥

सज्जनों द्वारा प्रसंगवश की हुई पतिव्रता स्त्रियों की स्तुति को सुनकर हृदय में अतिशय दुःखी होती हुई मैं मूर्खा पीड़ित होती हूँ ॥ ८५१ ॥

आसन्न उपविशन्तीं मां दाक्षिण्यान्नियन्तुमसमर्थाः।
अन्योन्यमीक्षमाणा ज्ञातिजनाः संकुचन्ति भुञ्जानाः ॥ ८५२ ॥

ज्ञाति भोजन के समय मुझे पास में बैठती हुई देखकर, उदारतावश मुझे न हटाकर सम्बन्धी जन एक दूसरे को देखते हुए लज्जा अनुभव करते हैं ॥ ८५२ ॥

प्रकटीकृता त्वयैव क्षणमात्रममुंचता गृहोपान्तम्।
अस्मासु दशां मग्ना प्रेमस्निग्धामनुद्धरता ॥ ८५३ ॥

मेरे घर के पडोस को एक क्षण के लिये भी न छोड कर, तथा मेरे तुम्हारे सामने आने पर मुझ पर स्नेह भरी दृष्टि लगातार डालकर, तुमने ही यह रहस्य प्रगट किया है[1] ॥ ८५३ ॥

परगृहविनाशपिशुना सुभगमन्याभिरूप्यकृतदर्पा ।
कृकलासतुल्यरागा भवन्ति युष्मद्विधा एव ॥ ८५४ ॥

दूसरों के घरों को उजाडने वाले, परकीया स्त्रियों को मोहित करने में अपने को सौभाग्यशाली समझने वाले, अपने रूप सौन्दर्य का अभिमान करनेवाले, आप जैसे दुष्ट आदमी ही गिरगट के समान क्षण क्षण में रंग बदलते हैं[2] ॥८५४॥

अनभीष्टव्यवहारप्रभवरुषा पीडिताक्षरा इत्थम् ।
सोपालम्भा विजने धन्या शृण्वन्ति बन्धकीवाचः ॥ ८५५ ॥

इस प्रकार अनिच्छित व्यवहार से उत्पन्न क्रोध से भरी बन्धकी वेश्या की वाणी को, उपालम्भ के साथ भाग्यवान ही एकान्त में सुन पाते हैं ॥ ८५५ ॥

परतरुणीसद्भावस्नेहार्पितनयनभागदृष्टस्य ।
वेश्यारचितविलासा कथिता पुरतः पुराणतृणतुल्या ॥ ८५६ ॥

दूसरी युवती (परस्त्री) द्वारा निष्कपट प्रेम से समर्पित कटाक्षों के आगे वेश्याओं के किये हाव भाव पुराने तिनके के समान तुच्छ हैं ॥ ८५६ ॥

उपनयति रतिमहोत्सवमाराधितदेवताविशेषाणाम् ।
वचनमपि प्रेमार्द्रं स्वैरिण्या श्रवणमेति पुण्यवताम् ॥ ८५७ ॥

मन्त्र जप पूजा आदि द्वारा देवता का प्रसाद प्राप्त पुरुषों को रतिमहोत्सव सम्भोगरूपी महान आनन्द परस्त्री से प्राप्त होता है। स्वैरिणी का प्रेमपूर्ण वचन भी भाग्यशाली पुरुषों को ही सुनने में मिलता है[3] ॥ ८५७ ॥

---

१. आचारः कुलमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम् ।
वचनं श्रुतमाख्याति, स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥

२ क्षेमेन्द्रने समयमातृका में अस्सी प्रकार के राग बताये हैं, उनमें एक राग कृकलास राग भी है—
कृकलासाभिधानश्च स्त्रैणदर्शनचचल —२।३६

३. स्वैरिणी—पतिव्रता चैकपत्नी, द्वितीया कुलटा स्मृता ।
तृतीया वृषली ज्ञेया चतुर्थी पुंश्चली स्मृता ॥
वेश्या च पञ्चमे षष्ठे, युंगी च सप्तमेऽष्टमे ।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥ ब्रह्मवैवर्त पुराण

(२) नातश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदन्त्युत ।
अतः परं स्वैरिणी स्याद् बन्धकी पञ्चमं भवेत् ॥ महा०आदि १२३।७७

का गणना विषयवशे पुंसि वराके, वरांगना स्पृहया ।
व्याजेन वीक्षमाणा ध्यानधियां स्पृशति संतानम् ॥ ८८८ ॥

यदि वरांगना—उत्तम स्त्री-सुगात्री किसी बहाने से समागम की चाह के साथ देखती है, तब एकाग्रचित्त मुनियों का भी उत्तम ज्ञान चंचल हो जाता है, फिर भोग्यवस्तु के विषय में दीन पुरुषों की बात ही क्या ? ॥ ८८८ ॥

शिरसा रचितांजलयो दधति निदेशं त्रिविष्टपे गणिकाः ।
परदाररसाकृष्टस्तथापि भेजे शचीपतिरहल्याम् ॥ ८८६ ॥

स्वर्ग में वेश्यायें जिसकी आज्ञा को सिर झुकाकर स्वीकार करती हैं, उस इन्द्र ने भी पराई स्त्री के रस की ओर आकृष्ट होकर अहल्या का सेवन किया[1] ॥ ८८६ ॥

अप्सरसः किं न वशे वैदग्ध्यवतां च किं न धौरेयः ।
येन चकारासक्तिं गोविन्दो गोपदारेषु ॥ ८६० ॥

क्या कृष्ण के वश में अप्सरायें नहीं थीं, लौकिक विषयों में कुशल विद्वानों में क्या कृष्ण अग्रणी नहीं था ? फिर भी कृष्ण ने गोपवधुओं में आसक्ति की[2] ॥ ८६० ॥

त्रैलोक्यगता वेश्याः स्वाधीना यातुधाननाथस्य ।
तदपि जहार कलत्रं दशरथतनयस्य रामस्य ॥ ८६१ ॥

रावण के अधीन स्वर्ग की सब वेश्यायें थीं, तो भी उसने राम की पत्नी सीता का हरण किया ॥ ८६१ ॥

---

१. किं कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यः
त्रिदिवपतिरहल्यां तापसीं यत् सिषेवे ।
हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्नौ
उचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥

२. भेजे गौतमसुन्दरीं सुरपतिश्चन्द्रश्च भार्यां गुरो
धर्मोऽपि स्वयमेव पाण्डुनृपतेः पत्नीमयासीद् पृथाम् ।
गोपानां वनिता निशान्तसमयेदेवः स्वयं माधवो,
मूढाः पण्डितमानिनोऽभिदधिरे दोषं परस्त्रीरतौ ॥

(क हित्वाऽऽत्मकामं शमयेद् वशी यो नितम्बिनीनां मदनज्वरार्तिम् ।
कृपान्वितो मन्मथशास्त्रवेदी समाप्नुयात्स्वर्गसुखं स धीरः ॥
नागरसर्वस्व ११२.

(ख) नारी चोत्कटयौवनाऽभिलषितं कान्तं न चेद्यासुयाद्
उन्मादं मरणं च विन्दति तदा कन्दर्पसंमोहिता ।

अथ मंजर्या जननी निजपक्षसमर्थने कृतोत्साहा।
आक्षेप्तुमाचचक्षे नृपसुतसचिवाश्रिता वाचम्॥ ८६२॥

राज्य मंत्री की बात सुनकर पूर्ण उत्साह के साथ अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये और राजपुत्र के मंत्री के वचनों पर आक्षेप करने के उद्देश्य से मंजरी की माता कहने लगी॥ ८६२॥

घटयुवतिषु प्रगल्भो नागरिकादर्शनेन हृतपुंस्त्व।
ग्रामोषितो विदग्धो निन्दति गणिका भवद्विधोऽवश्यम्॥ ८६३॥

पनहारियों में धृष्ट, नागरिक शिक्षित विदग्ध चतुर स्त्रियों के देखने मात्र से मूढ़ बना नपुंसक बना, गवार, मूर्ख आप जैसा, अवश्य ही वेश्याओं की निन्दा करता है॥ ८६३॥

नार्द्रयति मनः पुंसामवगाहितमीनकेतुशास्त्राणाम्।
नखदशनक्षतिहीनं जीवत्पतिबन्धकीसुरतम्॥ ८६४॥

कामशास्त्र का भली प्रकार अध्ययन किये पुरुषों का मन, जीवित पति वाली पराई स्त्री के साथ नख दशन से हीन सम्भोग से प्रसन्न नहीं होता। [पति के भय से नखक्षत दन्तक्षत नहीं किये जा सकते]॥ ८६४॥

स्थापय घटकं तावत्, कुरु भूमितले तृणैः समास्तरणम्।
सुरतोपक्रमं ईदृग्ग्रामीणकतरुणमिथुनानाम्॥ ८६५॥

कामुक पनिहारी को रास्ते में देखकर गवार कहता है कि 'घड़े को उतार कर एक तरफ रख दे, पृथ्वी पर घास बिछाकर समान करले', गँवार स्त्री पुरुष इस प्रकार से सम्भोग करते हैं'॥ ८६५॥

सधिन्त्येति समागता परवधूः रत्यर्थिनी स्वेच्छया
गच्छेत्क्वापि, न सर्वदा सुमतिमानित्याह वात्स्यायनः॥
अनङ्गरंग ८।१३.

(ग) नहि कविना परदारा एष्टव्या नापि चोपदेष्टव्या।
कर्तव्यतयाऽन्येषां न च तदुपायोऽभिधातव्यः॥
किन्तु तदीयं वृत्तं काव्याङ्गतया स केवलं वक्ति।
आराधयितुं विदुषस्तेन न दोषः कवेरत्र॥ काव्यालङ्कार १४।१२-१३.

१ इसमें श्रीहर्ष की उक्ति अपवादरूप है—
साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले,
तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती।
शय्या वाऽस्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता,
भूमिर्वा हृदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम्॥

वहलोशीरविलिप्तस्थितजूटकलापमल्लिकामाल्यः ।
पामरनार्या दृष्टः स्मरोऽहमिति मन्यते चिटो ग्राम्यः ॥ ८६६ ॥

बालों पर खस का मोटा गहरा लेप करके, उनपर मोगरे की माला बाँधे, ग्रामीण युवक—ग्रामीण मूर्ख नीच स्त्री के कटाक्षपात से ही अपने को कामदेव समझने लगता है ॥ ८६६ ॥

गृहकर्मकृतायासां प्रस्विन्नां सलिलकार्यनिर्याताम् ।
उपपतिरपैति हर्षं निशागमे पामरीं प्राप्य ॥ ८६७ ॥

घर के काम से थकी, पसीने से तर, पानी लेने के लिये घरसे निकली ग्रामीण स्त्री को, रात्रि के पहले पहर में प्राप्त करके उपपति-जार अति प्रसन्न होता है ॥ ८६७ ॥

कूपक्षिप्तघटाया नार्यास्तत्काष्ठनिहितचरणायाः ।
वलितग्रीवं वीक्षितमुन्नमयति मानसं यूनः ॥ ८६८ ॥

घड़े को कुँए में डाले, एक पैर को घड़ा खींचने की चरख पर टिकाये, ग्रीवा को मोड़कर देखती हुई युवती को देखकर, युवा-व्यक्ति का मन आनन्द से खिल जाता है ॥ ८६८ ॥

लग्नोऽसि यत्र गात्रे कथमपि दैवेन देवयात्रायाम् ।
अद्यापि तन्न मुंचति पुलकोद्गमकण्टकं तस्याः ॥ ८६९ ॥

रथयात्रा या अन्य किसी प्रसङ्ग में भाग्यवश अचानक यदि कभी शरीर से ग्रामीण युवती के शरीर का स्पर्श हो जाता है, तो उसका स्मरण करके आज भी उसके शरीर में रोमाञ्च बना रहता है ॥ ८६९ ॥

उच्चेतुं कार्पासं प्रविष्टया गहनवाटिकां शून्याम् ।
टंकारितेन संज्ञा कृता तया त्वं च वेत्सि नो मूर्खः ॥ ८७० ॥

निर्जन घने कपास के खेत में कपास चुनने के लिये घुसी ग्रामीण वधू द्वारा पत्थर फेंककर, ताली बजाकर अथवा खखार कर दिये हुए सङ्केत को भी तू मूर्ख नहीं समझता—तू तो महामूर्ख है ॥ ८७० ॥

आलिंगितमुसलायास्त्वय्येव निविष्टचक्षुषस्तस्याः ।
आवृत्या भ्रमति पुरो जातः खलु शालिकण्डने विघ्नः ॥ ८७१ ॥

तेरे बार-बार उसके सामने आने जाने से, तेरे में ही आँख लगाये रहने के कारण, मूसल को हाथ से पकड़ रहने पर भी, धान कूटने में रुकावट अड़चन होने लगी ॥ ८७१ ॥

त्वा लोष्टमाक्षिपन्तं पार्श्वस्थैः स्तूयमानसामर्थ्यम् ।
गृहकर्तव्यं त्यक्त्वा पश्यति सा द्वाररन्ध्रेण ॥ ८७२ ॥

पक्षी उड़ाने के लिये या अन्य कारण से हाथ द्वारा या गोफण से पत्थर फेंकते हुए तुमको, समीपवर्ती मनुष्यों द्वारा की हुई तेरी प्रशंसा को सुनकर, घर का सब काम छोड़कर दरवाजे के छेद से वह तुमको देखती है ॥ ८७२ ॥

त्वयि मार्गनिकटवर्तिन्यविचिन्तितखेदया तया सुभग ।
प्रत्यासन्नगृहेष्वपि कृत. प्रसह्य स्मरातुरो लोक. ॥ ८७३ ॥

हे सुभग ! तेरे घर के समीप की गली में आने के लिये उसने मार्ग की धूप आदि दुःख की भी परवाह नहीं की। घरके समीप में खड़ी उसको देखकर-राहगीर भी कामातुर हो जाता है-[धूप के कारण उसका चेहरा और भी अधिक लाल सुन्दर बन गया है] ॥ ८७२ ॥

इति चतुरदूतिकोदित उपचितसौभाग्यगर्वपूर्णस्य ।
ऊर्मिसहस्रोल्लसितं भवति मनो ग्राम्यविटस्य ॥ ८७४ ॥

इस प्रकार चतुर दूती के कहे वचनों को सुनकर, बड़े सौभाग्य के गर्व से भरा ग्राम्य विट का मन बल्लियों उछलने लगता है-अतिशय प्रसन्न होता है ॥ ८७४ ॥

विनिवार्य तत्प्रवर्तितवाक्यविकासं नतोत्तमांगेन ।
श्रीसिंहभटतनयं तमुवाच वचोऽथ नर्तकाचार्य. ॥ ८७५ ॥

मजरी की माता द्वारा प्रस्तुत कथा को समाप्त करने के लिये सिर झुकाकर नर्तकाचार्य ने सिंहभट्ट के पुत्र-राजपुत्र से कहा ॥ ८७५ ॥

नायकभूमौ भरतः कुशीलवाः कोहलादयो मुनयः ।
अप्सरसः स्त्रीनाट्ये गान्धर्वे कमलजन्मतनस्तनयः ॥ ८७६ ॥
सुषिरस्वरप्रयोगप्रतिपादनपण्डितो मतंगमुनि. ।
यदि रंजयन्ति हृदयं भवतो, भूमिस्पृशां कुत. शक्तिः ॥ ८७७ ॥

नाटक की भूमिका में भरत के समान, तबला आदि बजाने में कोहल आदि मुनियों के समान, स्त्री पात्र में अप्सराओं के समान, गायन-वादन में ब्रह्मा के पुत्र नारद के तुल्य, बाँसुरी आदि बजाने में मतङ्ग मुनि के समान निपुण, अभिनय करनेवाले कुशीलव जहाँ आपके हृदय को प्रसन्न करते हैं, वहाँ पर हम जैसे सामान्यजनों की क्या सामर्थ्य है, हम आप का क्या मनोविनोद कर सकते हैं। [भूमिस्पृशा-मर्त्यानाम्] ॥ ८७६-८७७ ॥

अभ्यधिकं धृष्टत्वं प्रायेण हि शिल्पजीविनो भवति ।
आश्रित-नर्तक-धृष्टेर्विशेषतो विजित-रंगस्य ॥ ८७८ ॥

प्रायः करके शिल्पजीवी अधिक वाचाल धृष्ट होते हैं, इनमें भी विशेष करके नाट्यभूमि में कीर्ति प्राप्त नर्तक अधिक धृष्ट-वाचाल होते हैं ॥ ८७८ ॥

विज्ञापयाम्यतस्त्वां नरेन्द्र नाट्यप्रजासदृशम् ।
अवलोकयांकमेकं मा भवतु मम श्रमो वन्ध्यः ॥ ८७९ ॥

हे राजन् ! इसीसे मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि नाटक प्रिय समाज के समान आप एक अंक देखें, जिससे कि मेरा प्रयत्न निष्फल न जावे ॥ ८७९ ॥

इति कथयन्नरभर्तुः पुत्रेण स चोदितो भ्रुवोन्नतया ।
रचिते सकलातोद्ये नियोजयामास सूत्रभृतम् ॥ ८८० ॥

नृत्याचार्य के इस प्रकार कहने पर राजपुत्र ने भ्रुवों के इंगित से उसे आज्ञा प्रदान की । नृत्याचार्य ने सब वाद्य वीणा-मुरज-वंशी कांस्य आदि तय्यार करके सूत्रधार को आज्ञा दी ॥ ८८० ॥

वांशिकदत्तस्थानकतद्भावितभिन्नपंचमे सम्यक् ।
प्रावेशिक्यवसाने द्विपदीग्रहणान्तरेऽविशत् सूत्री ॥ ८८१ ॥

बाँसुरी बजाने वाले के साथ अन्य वाद्यों का स्वर मिला कर पंचमराग प्रवृत्त हो जाने पर, प्रावेशिकी ध्रुवाविशेष के अन्त में, [नान्दी के अन्त में], द्विपदी को लय विशेष में गाते हुए नटों के बीच में सूत्रधार प्रविष्ट हुआ[1] ॥ ८८१ ॥

उत्साहभावयुक्तः सामाजिकहृदयरंजनं कुर्वन् ।
कविनैपुणवत्सेश्वरचरितस्य विधेय दाक्ष्यसामग्र्या ॥ ८८२ ॥
अष्टकलापरिमाणां ध्रुवां च परिकल्प्यताललययुक्ताम् ।
आहूय नटीं कृत्वा तया समं स्वगृहकार्यसंलापम् ॥ ८८३ ॥
सूचितपात्रागमनः कियन्ति दत्त्वा पदानि ललितानि ।
निष्क्राम गृहिण्या सार्धं निःसरणगीतेन ॥ ८८४ ॥

उत्साह और भाव से युक्त सामाजिक जनों के हृदय को प्रसन्न करता हुआ, कवि श्रीहर्ष के बनाये उदयन चरित्र वाले रत्नावली नाटक के प्रयोग में कुशल, सम्पूर्ण सम्पत्ति से युक्त, ताल-लय से युक्त ध्रुवा को आठ कला तक गा कर, नटी को बुलाकर उसके साथ में अपनी घर सम्बन्धी बात चीत करके, पात्र के आने की सूचना देकर अपनी सुन्दर चाल से कुछ कदम चलकर बाहर

---

1. द्विपदी—शोकविभ्रमयुक्ते व्याधिविन्यासमाश्रिते ।
ध्रुववार्तादिवैरूप्ये योज्या द्विपदिका बुधैः ॥ मालतीमाधव टीका

जाने वाले गीत को गाते हुए सूत्रधार अपनी गृहिणी के साथ नेपथ्य से निकल गया[1] ॥ ८८२-८८४ ॥

आश्रित्य कथोद्घातं प्रविवेश तत सविस्मयोऽमात्य ।
दुर्घटसंघटनेन क्षितिनाथस्योदयेन मुदितश्च ॥ ८८५ ॥

सूत्रधार के निकलने के पीछे, कथोद्घात का आश्रय लेकर असभवनीय सयोग के होने से, राजा उदयन की उन्नति से प्रसन्न एव चकित हुआ अमात्य यौगन्धरायण मच पर आता है[2] ॥ ८८५ ॥

प्रासादमारुहन्त कुसुमायुधपर्वचर्चरीं द्रष्टुम् ।
निर्दिश्य वत्सराज समनन्तरकार्यसिद्धये निरगात् ॥ ८८६ ॥

राजप्रासाद पर चढकर कामदेव के महोत्सव को देखने के लिये वत्सराज उदयन को कह कर, स्वय शेष रहे अपने कार्य को पूरा करने के लिये अमात्य यौगन्धरायण निकल गया[3] ॥ ८८६ ॥

---

१. प्रस्तावना या आमुख—सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिष वा विदूषकम् ।
स्वकार्यप्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥
दशरूपक १७।८

२. कथोद्घात—स्वेतिवृत्तसम वाक्यमर्थं वा यत्र सूत्रिणः ।
गृहीत्वा प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातो द्विधैव स ॥
दशरूपक १९-१०.

(ख) जैसे रत्नावली में—द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूत ॥
१।६.

(ग) जैसे रत्नावली में—(सहर्षम्)—सर्वथा स्पृशति न स्वामिनमभ्युदया । इदं च—येयं सिंहलेश्वरस्य दुहिता सा सिद्धेनादिष्टा यथा योऽस्या, पाणिग्रहण करिष्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति । चतुर्थ अक.

३. कुसुमायुध महोत्सव चैत्रोत्सव (होली)—यथा स्कन्दपुराण में—
मधुमासे तु सप्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
प्रोक्ता मदनभञ्जीति सिद्धिदात्र महोत्सवे ॥
चैत्रे मासि चतुर्दश्यां मदनस्य महोत्सव ।
जुगुप्सोक्तिभिस्तत्र गीतवाद्यादिभिर्नृणाम् ॥
भगवांस्तुष्यते काम पुत्रपौत्रसमृद्धिदः ॥

अथ विशति स्म नरेन्द्रः प्रासादगतः समं वयस्येन।
अवलोकयन् प्रमोदं प्रमुदितचेताः स्वसौख्यसंपत्त्या ॥ ८८७ ॥

अमात्य यौगन्धरायण के निकल जाने पर, अपने मित्र वसन्तक के साथ प्रासाद पर चढ़ा, राजा उदयन अपनी सुखसमृद्धि से प्रसन्न मन के साथ नगर-निवासियों के हर्ष को देखता हुआ आता है ॥ ८८७ ॥

विस्मयभावाकृष्टः प्रोत्फुल्लविलोचने ततो विसृजन्।
नृत्यति पौरजनौघे प्रोवाच वयस्य पश्य पश्येति ॥ ८८८ ॥

विस्मय के कारण चकित बना, पुरवासी स्त्री-पुरुषों के समूह में आश्चर्य के साथ आँख फैलाकर देखते हुए राजा अपने मित्र वसन्तक को कहने लगा—"मित्र देख-देख ॥ ८८८ ॥

तुल्यशिशुतरुणवृद्धं समगुणागुणयुवति सविचेष्टम्।
अगणितवाच्यावाच्यं क्रीडन्ति जनाः प्रवृद्धहर्षेण ॥ ८८९ ॥

नगरनिवासी अत्यन्त हर्ष के साथ खेल रहे हैं, इनमें बालक, तरुण, युवा, और वृद्ध सब छोटे-बड़े का भाव भूलकर आनन्द ले रहे हैं, युवती-कुलीन स्त्रियाँ, युवती वेश्यायें भी नाना प्रकार की हास्यजनक चेष्टायें कर रही हैं। कहने योग्य या न कहने योग्य किसी भी प्रकार का विचार बातचीत में नहीं हो रहा है—अश्लीलादि गाली गलौज भी चल रहा है ॥ ८८९ ॥

पिष्टातकपिंजरितं सुचिरोच्छ्रितविविधकुसुमनिर्यूहम्।
गात्रायाससमुत्थितबहुनिश्वासप्रकीर्णपटवासम् ॥ ८९० ॥

गुलाल से सब दिशायें पीली-लाल बन गईं, पगड़ी में देर से लगाया फूलों का गुच्छा भी लाल हो गया है। शरीर की थकान से निकलने वाले निःश्वास के कारण कपड़ों पर पड़ा पटवास—चूर्ण उड़कर इधर-उधर गिर रहा है ॥ ८९० ॥

तूर्यरवध्वानिमिश्रितकरतालैरुद्धुरं प्रनृत्यन्तम्।
मुहुरुपजातस्खलनं संदर्शितदार्ढ्यसौष्ठवं स्थविरम् ॥ ८९१ ॥

तुरी की ध्वनि के साथ में ताली बजाकर हाथों को ऊपर उठाकर नृत्य करते हुए, एवं बार-बार गिरता हुआ वृद्ध भी अपने शरीर की दृढ़ता का सौष्ठव दिखा रहा है ॥ ८९१ ॥

कुछ लोग चैत्र वैशाख में, कुछ लोग फाल्गुन और चैत्र में वसन्त मानते हैं। "वसन्तः कुसुमाकरोः, एवं मधु-माधवौ वसन्तः, फाल्गुन-चैत्रौ वसन्तः"—यह भी पाठ है। सुश्रुत एवं चरक में दोनों पाठ हैं।

करपीडनोपमर्दव्यतिकरसमये कदर्थ्यमानोऽपि ।
स्तनमण्डले स्थितोऽहं त्वं पुनराकृष्य कुत्रचित्क्षिप्त ॥ ८९९ ॥

हार और कञ्चुकी (चोली) में बातचीत—हार चोली से कहता है—हाथों द्वारा स्तनों का मर्दन करते समय पीड़ित होता हुआ भी मैं, लगातार स्तनों पर ही बना रहा, तू तो खींचकर दूर फेंक दी गई थी ॥ ८९९ ॥

अधुनाऽन्तरयसि मामिति कोपादिव वारबाणमभिरामम् ।
बहुचित्रपदन्यासैर्वल्गन्त्या हन्ति हार उच्छलित ॥ ९०० ॥

और अब तू मुझको रोकती है, मेरे और स्तनों के बीच में तू आती है, नृत्यसमय में नाना प्रकार के आश्चर्य कारक पादप्रक्षेपों से ऊपर को उठता हुआ हार क्रोध से सुन्दर चोली को इस प्रकार कहता है। [वारबाण-वार वरणीय सुन्दर बान स्यूतिर्निर्मं यस्य तत् कञ्चुक-चोला] ॥ ९०० ॥

चूतलता धम्मिल्लस्थानच्युतशेखरं दधौ श्लाघ्यम् ।
अधृत पतत्प्रसूनं न त्वेषा मदनिका वेणीम् ॥ ९०१ ॥

बँधे हुए जूड़े से गिरी हुई माला को रखकर चूतलता ने प्रशंसा प्राप्त की। और इस मदनिका ने वेणी से गिरते हुए फूलों के गुच्छे को नहीं सम्भाला। [अकौशल से या मदाविरेक के कारण गिरता हुआ गुच्छा नहीं रोका जा सका] ॥ ९०१ ॥

स्तनभारानतरय मध्यतनोर्मध्यस्य नास्ति तेऽपेक्षा ।
इत्थमिव पादलग्नौ क्रीडन्त्या नूपुरौ रसत ॥ ९०२ ॥

पैरों में पहने नृत्य करते समय बजते हुए नूपुर कह रहे हैं—कि 'स्तनों के भार से झुकते हुए वक्ष भाग के आगे कृश मध्यभाग की अपेक्षा नहीं है-उसका कुछ मूल्य नहीं ॥९०२॥

वहति स्म च नितम्बं कथमपि कृच्छ्रेण मन्दसंचारा ।
कलयति तं तूललघुं, जयति मनोजन्मनो महिमा ॥ ९०३ ॥

जो गजगामिनी बड़ी कठिनाई से नितम्ब के भार को येन केन प्रकार से उठाये हुए भी, वही नृत्य के समय नितम्ब के भार को कपास से हल्का समझती है, कामदेव की महिमा की जय है, उसी की यह महिमा है ॥९०३॥

उदयनसमनुज्ञातो नर्नर्ति वसन्तकोऽपि मुदितात्मा ।
हास्यत्रपाभिरामं चर्चरिकार्धेन तन्मध्ये ॥ ९०४ ॥

राजा उदयन से आज्ञा लेकर प्रसन्न हुआ वसन्तक भी चर्चरिका के आधे टुकड़े को गाता हुआ, मदनिका और चूतलतिका के बीच में हास्य और लज्जा से सुन्दर बना नृत्य करने लगता है ॥९०४॥

धीरोद्धतललितपदैः क्रीडित्वा ते चिराय नरनाथम् ।
प्रद्योतस्य सुतायाः संदेशकमूचतुः समुपगम्य ॥ ६०५ ॥

राजा का शास्त्रानुकूल धीर-उद्धत ललित पदों से देर तक मनोरञ्जन करके, उन्होंने राजा के समीप आकर वासवदत्ता का संदेश कहा ॥६०५ ॥

आदिशति देव देवीत्यर्धोक्ते, ते सलज्जमन्योन्यम् ।
अवलोक्य मुखं, नहि नहि-विज्ञापयति प्रणम्य वि येन ॥६०६॥

हे देव ! देवी आज्ञा करती है, इतना कहने पर ही लज्जा से एक दूसरे का मुख देखकर कहने लगी नहीं, नहीं, विनय के साथ प्रणाम करके देवी निवेदन करती है ॥६०६॥

मकरध्वजस्य पूजां त्वत्पादसरोजसन्निधौ कर्तुम् ।
पृथिवीमण्डलमण्डन समीहते मे मनोवृत्ति ॥ ६०७ ॥

हे पृथ्वीभूषण ! आपकी उपस्थिति में मकरध्वज की पूजा करने की मेरी इच्छा है ॥६०७॥

प्रियरतिभोगो मदनो दयितवसन्तो जनस्य मनसि वसन् ।
भावेन भवान् पूज्यो, लोकस्थित्या तु कुसुमशरपाणिः ॥ ६०८ ॥

कामदेव की पूजा से दो लाभ हैं; अतः मन से तो आपकी पूजा हो जायेगी, और लौकिक व्यवहार में मकरध्वज की पूजा सम्पन्न होगी। आपको भी रति-सम्भोग प्रिय है, मित्र वसन्तक भी प्रिय है, आप सबके हृदय में बसते हैं। कामदेव को भी अपनी पत्नी रति का भोग प्रिय है, उसका भी सखा वसन्त है, काम भी सबके हृदय में बसता है[1] ॥६०८॥

इति दत्त्वा सन्देशं प्रकृतिवय:कालसमुचितं भ्रान्त्वा ।
ते मदमदनाविष्टे बभूवतुर्जवनिकान्तरिते ॥ ६०९ ॥

इस प्रकार देवी का सन्देश देकर स्वाभाविक वयं एवं यौवन जन्य काम से आविष्ट वे दूतियाँ—स्वाभाविक हास्यादि; वय-यौवन, काल मदन महोत्सव के अनुसार घूमकर-चलकर नेपथ्य में चली गई ॥६०९॥

अपनीततिरस्करिणी ततो भवन्नृपसुता समं चेट्या ।
अविदितरत्नावल्या पूजोचितवस्तुहस्तयाऽनुगता ॥ ६१० ॥

इसके पीछे, परदे को हटाकर वासवदत्ता दासी के साथ (काञ्चनमाला के साथ) रंग मंच में आती है। वासवदत्ता की जानकारी के बिना ही रत्नावली

---

1. मधुरच ते मन्मथ साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव ।
समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य ॥ कुमार० ३.

की पूजा की सम्पूर्ण सामग्री हाथ में लिये उसके पीछे पीछे प्रविष्ट होती है ॥ ६१० ॥

अथ दृष्ट्वा सागरिकां प्रमादितां परिजनस्य निन्दित्वा ।
कांचनमालामवदन्नृपमहिषीजातसंक्षोभा ॥ ६११ ॥

इसके पीछे सागरिका (रत्नावली) को देखकर, परिजनों के आलस्य की निन्दा करते हुए, वासवदत्ता ने क्रोध में कांचनमाला को कहा ॥६११॥

प्रेषय कन्यामेनामवरोधं, त्वं गृहाण कुसुमादि ।
यावन्न भवति विषये वीक्षणयोर्भूमिनाथस्य ॥ ६१२ ॥

इस कन्या को [रत्नावली को] घर में भेज दो और पूजा की सामग्री तुम ले लो, जिससे कि राजा की आँखों के सामने यह न आये ॥६१२॥

उपगम्य ततश्चेटी तामवदत्त्वं किमर्थमायाता ।
मेधाविनीं विमुच्य, व्रज, तस्मिन्मा विलम्बस्व ॥ ६१३ ॥

इसके पीछे कांचनमाला रत्नावली के पास आकर कहने लगी कि तू 'मेधा-विनी' (मैना) को छोड़कर क्यों चली आई, जल्दी से जा, देर मत कर ॥६१३॥

विहिते देव्यादेशे मनसीदं संविधाय सा तस्थौ ।
विहगी सुसंगताया हस्ते निहिता, मनोभवसपर्याम् ॥ ६१४ ॥
अवलोकयामि तावत्तिरोहिता सिन्दुवारविटपेन ।
तातान्त पुरिकाभिर्यथाऽर्च्यते किं तथैतदुत नेति ॥ ६१५ ॥

देवी का आदेश है, यह मन में समझकर कि मैना को तो मैंने सुसंगता के हाथों में सौंप दिया है, इससे यहीं खड़ी रहकर, कामदेव की पूजा को सिन्दुवार वृक्ष की ओट में छिपकर देखूँगी। क्या कामदेव की पूजा यहाँ भी उसी प्रकार से होती है, जैसा की मेरे पिता के घर में होती थी ॥६१४-६१५॥

पिण्डीकृतमिव रागं स्नेहमयमिव लब्धविग्रहोत्कर्षम् ।
समुपेत्य वत्सराजं जगाद सा जयतु देव इति ॥ ६१६ ॥

राग और स्नेह ही मानों पिण्डाकार घनीभूत हो गया हो, काम ने ही मानों अतिशय सुन्दर शरीर धारण कर लिया हो—ऐसे वत्सराज उदयन के पास जाकर वासवदत्ता ने कहा—देव की जय हो ॥६१६॥

परिभुक्तमपि नवत्वं शृंगारं मदनपर्वणा नीतम् ।
भजमानो भजमानां स्वागतवचसाऽभिनन्द्य तामूचे ॥ ६१७ ॥

परम अनुरागवती वासवदत्ता का स्वागत करते हुए राजा ने कहा, अन्त और बाहर सम्पूर्ण रूप में अनुभूत शृंगार भी मदन महोत्सव के कारण फिर से अभुक्तपूर्व की भाँति नया ही हो जाता है[1] ॥६१७॥

भर्गविलोचनपावकदाहाभ्यधिका मनोभवो मन्ये।
प्राप्स्यति तव करसंगमसुखविरहसमुत्थितां पीडाम् ॥ ६१८ ॥

कामदेव को शिव की आँख की अग्नि से जलने का जितना दुःख हुआ था, उससे भी अधिक दुःख उसे तुम्हारे हाथ के स्पर्श के विरह का होगा—ऐसा मैं मानता हूँ। (पूजा करते समय कामदेव को तुम्हारे हाथ का स्पर्श उसे मिल जायगा, परन्तु पूजा की समाप्ति पर तुम्हारे हाथ के हटने से विरह का दुःख उसको होगा) ॥ ६१८ ॥

सा मन्मथमभ्यर्च्य (भ्यार्चत्?) क्षितिनाथं तदनु साधिकं तस्याम्।
परमां मुदं वहन्त्या विग्रहवन्मदनमनसि कन्यायाम् ॥ ९१९ ॥

वासवदत्ता ने प्रथम कामदेव की पूजा की, फिर इसके पीछे विशेष रूप से राजा की पूजा की। इससे कन्या—सागरिका (रत्नावली) के मन में विश्वास हो गया कि कामदेव शरीरवाला है इसलिए उसको अतिशय प्रसन्नता हुई। (सागरिका ने कामदेव की पूजा नहीं देखी—उदयन की ही पूजा को देख कर कामदेव को शरीरवाला समझा—इससे प्रसन्नता हुई क्योंकि उसके घर में अशरीरी कामदेव चित्ररूप में पूजा जाता था) ॥ ६१९ ॥

शृंगाररससमुद्रं सोत्कलिकं निपतिते तथा नृपतौ।
तारमधुरस्फुटार्थं नग्नाचार्यः पपाठ नेपथ्ये ॥ ६२० ॥

उत्कण्ठा के साथ शृंगार रस के समुद्र में उदयन को गोता खाते देख कर नग्नाचार्य वैतालिक ने ऊँचे और मधुर स्वर में स्पष्ट अर्थ वाली इस आर्या को परदे में से पढ़ा ॥ ६२० ॥

नयनानन्दमखण्डितमण्डलमभिराममभृतरश्मिमिव।
सायन्तन आस्थाने क्षितिपतयः सन्त्युदयनं द्रष्टुम् ॥ ६२१ ॥

आँखों को आनन्द देनेवाले सम्पूर्ण पृथ्वी में अभिराम चन्द्रमा के समान शीतल राजा उदयन को देखने के लिये सब राजा लोग सायंकाल के समय सभामण्डप में एकत्रित हुए हैं ॥ ६२१ ॥

उच्चारितेऽन्यनाम्नि त्रिदशापतौ तत्क्षणाच्च्युतपदायाम्।
उत्पन्नविस्मयरतिनिदधे नरभर्तुरात्मना हृदये ॥ ६२२ ॥

---

1 कामं प्रदेशा देश-व्यापार स्थिति स्वरूपघनानि।
विरहद्रोऽपि हि यूनां नवत्वमुपनीयते रागः॥

वैतालिका के मुख से कुछ थोड़े से ही शब्द निकलने पर सागरिका सोचने लगी कि यह इन्द्र का अथवा किसी अन्य का नाम लेंगे। परन्तु जब उसने उदयन का नाम लिया तब सिंहलेश्वर की कन्या सागरिका के मन में विस्मयपूर्ण स्नेह प्रेम उत्पन्न हो गया—उसे आश्चर्य हुआ ॥ ६२२ ॥

अयमुदयनः स राजा तातः सत्कृत्य मां ददौ यस्मै ।
हन्त परप्रेषणमपि न निष्फलं साम्प्रतं जातम् ॥ ६२३ ॥

क्या यह वही उदयन है, जिसको मुझे पिता ने सम्मान के साथ सौंपा था। दूसरे के यहाँ दासकर्म भी मेरा निष्फल नहीं हुआ—इसकी मुझे प्रसन्नता है॥६२३॥

यावन्न वेत्ति कश्चित्तावदितस्त्वरितमेव निर्यामि ।
इति कथमपि नायकतो हृत्वा दृशमुत्ससर्ज रंगभुवम् ॥ ६२४ ॥

जब तक कोई दूसरा नहीं जानता, तब तक मैं यहाँ से हट जाती हूँ। इस प्रकार सोच कर किसी प्रकार नायक से आँखों से अवसर रंगमंच को छोड़ गई ॥ ६२४ ॥

कन्दर्पमहमहोत्सवहृतहृदयैर्नावधारितोऽस्माभिः ।
संध्यातिक्रमकालः पश्य त्वं प्रियवयस्य तथा हि ॥ ६२५ ॥

कामदेव के महोत्सव में मन लगा रहने के कारण, हमने सन्ध्याकाल को बिल्कुल भुला ही दिया, हे मित्र! देख—॥ ६२५ ॥

उदयनगान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् निशानाथम् ।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥ ६२६ ॥

यह पूर्व दिशा अपने पीले मुख से उदयाचल में छिपे चन्द्रमा की सूचना दे रही है; जिस प्रकार कि कोई रमणी अपने पीले चेहरे से हृदय में स्थित प्रिय की सूचना देती है ॥६२६॥

देवि त्वन्मुखपद्मं पद्मान् विदधाति पश्य निच्छायान् ।
अलयोऽपि लज्जिता इव शनैः शनैस्तदुदरेषु लीयन्ते ॥ ६२७ ॥

हे देवी! देखो तुम्हारा मुख-कमल—इन कमलों को भी कान्तिहीन कर रहा है, भ्रमर भी लज्जित होकर धीरे-धीरे इन कमलों के अन्दर छिप रहे हैं ॥६२७॥

एवमभिधाय विरचितवरसन्ध्यामे परिक्रमं कृत्वा ।
निष्कामिकया ध्रुवया विनिर्ययौ नायकोऽपि सह सर्वैः ॥ ६२८ ॥

इस प्रकार सन्ध्या समय का वर्णन करते, धीरे-धीरे कदम रङ्गमंच पर चलकर राजा बाहर निकलने की ध्रुवा-गीति को बोलते हुए, सब पात्रों के साथ निकल गया¹ ॥ ६२८ ॥

---

१. अंकान्ते निष्क्रमणे पात्राणां गीयते प्रयोगेषु ।
निष्कामोपगतगुणं विद्यान्निष्कामिकीं तां तु ॥

अग्रे जातसमाप्तौ गीतातोद्यध्वनौ च विश्रान्ते ।
प्रेक्षणकगुणग्रहणं नृपसूनुः प्रववृते कर्तुम् ॥ ६२९ ॥

अङ्क समाप्त हो जाने पर, गीत-वाद्य के शान्त हो जाने पर राजपुत्र समर भट नाटक के भाव अभिनय-सगीत आदि गुणों की विवेचना करने में प्रवृत्त हुआ ॥६२९॥

नाट्यप्रयोगतत्त्वे मतयो न विशन्ति मादृशां प्रायः ।
वाहनयानपदातिग्रामादिककार्यदत्तहृदयानाम् ॥ ६३० ॥

मुझ जैसे लोगों की बुद्धि प्राय करके नाट्य प्रयोग के मर्म को समझने में नहीं चलती। क्योंकि हम लोगों का मन तो घोड़े, हाथी, आदि वाहन, रथ आदि यान, पदाति, ग्राम आदि के कार्यों में ही लगा रहता है ॥ ६३० ॥

आस्ते लिखितो ग्रामो गृहाण तं सत्प्रदेशबहुभूमिम् ।
वासय तत्रावासं भवसि तदग्रक्कुरो दिवसैः ॥ ६३१ ॥

अच्छी उपजाऊ भूमिवाला गाँव तुम्हारे नाम लिख दिया उसको लेकर वहाँ निवास करो थोड़े दिनों में तुम वहाँ के ठाकुर बन जाओगे ॥ ६३१ ॥

कृतजीवनसंस्थो हि त्वमपि किमर्थं करोपि विज्ञप्तिम् ।
अर्पय वा यदि नेच्छसि कुरु हस्तदानेन ॥ ६३२ ॥

जीवन निर्वाह का प्रबन्ध हो जाने पर भी क्यों अब वेतनवृद्धि की माँग कर रहा है, यदि नौकरी करने की इच्छा नहीं है, तो नौकरी को छोड़ दो ॥ ६३२ ॥

न च पत्तयो न सप्तिर्न च पोष्यजनस्तथाप्यसन्तुष्टः ।
लभमानेऽपि सदा यः चिरन्तनत्वाभिमानेन ॥ ६३३ ॥

तुम्हारे पास न तो पदाति-सिपाही हैं, न घुड़सवार हैं, और न स्त्री पुत्र नौकर आदि के पोषण का भार है तो भी जो तुमको मिल रहा है, उससे सदा असन्तुष्ट रहते हो, तुम समझते हो कि मैं पुराना नौकर हू, इससे मुझे और अधिक मिलना चाहिये ॥६३३॥

विज्ञप्तिकोन्मुखत्वं दूरत एवावधारितं भवतः ।
तूष्णीं क्रियतामस्माच्छ्रोष्यसि कार्यं प्रतीहारात् ॥ ६३४ ॥

तुम जो कहना चाहते हो, इसे मैंने दूर से ही तुम्हारा मुख देखकर जान लिया है। चुप होकर बैठ जाओ, द्वारपाल से कार्य की सूचना तुमको मिल जायेगी ॥६३४॥

यूयं कुटुम्बमध्ये, क्व गम्यते, गोत्रपुत्रसामान्यम् ।
आदाय संविभागं स्वगृह इव स्थीयतां यथासौख्यम् ॥ ६३५ ॥

तुम तो घर के आदमी हो, कहाँ दूसरी जगह जा रहे हो, गोत्र कुल, पुत्र सन्तान की भाँति अपना भाग– हिस्सा लेकर सुख पूर्वक यहीं रहो ॥६३५॥

अभ्यन्तरव्ययार्थं न विलब्धो यो मया महोद्रग[1] ।
तत्रापि तेऽनुबन्धो जाने किं करोमीति ॥ ६३६ ॥

पर खर्च सामग्री खर्च के लिये जो बड़ा ग्राम मैंने अलग कर दिया है, उसकी आय मैं नहीं लेता, इस पर भी तुम्हारी माँग बराबर बनी ही रहती है, मैं नहीं जानता, क्या करूँ ॥६३६॥

प्रथमतरमेव कल्पितमनल्पफलजीवनं प्रदेशस्थम् ।
अद्यापि ते न जातं, नियोगिनां पश्य मन्थरताम् ॥ ६३७ ॥

मैंने पहले ही अतिशय लाभ देने वाला भूमिभाग दे दिया है, परन्तु आज तक वह तुमको नहीं मिला, देखो काम करने वाला का आलस्य ॥६३७॥

एवम्प्रायैरनुदिनलाभोदयमोहकारिभिर्वचनैः ।
फलशून्यैरनुजीवी प्रतारितः क्रियत्कालम् ॥ ६३८ ॥

इस प्रकार प्रतिदिन लाभ द्रव्यलाभ, उदय उन्नति विषयक भमेले वाले, व्यर्थ के विषयों में नौकरों से छेतराते हुए–ठगे जाते हुए कितना समय चला जाता है ॥६३८॥

एतद्विषये नैपुणमत्र तु भूमिभुजां समाश्रित्य ।
मुखरतया कथयामो जडमिव सामाजिकोचितं किंचित् ॥ ६३९ ॥

नाटक के विषय में राजा लोग अच्छे पारखी होते हैं, इस लोकप्रसिद्धि के कारण सामाजिकों के अनुसार मूर्ख की भांति कुछ थोडा सा कहता हूँ ॥६३९॥

सप्ताश्रयं षडात्मा शारीरस्त्रिप्रमाणपरिमाणः ।
सत्त्वाधिक्याज्ज्येष्ठो व्यस्तसमस्तैस्त्रिभिर्विनिष्पाद्यः ॥ ६४० ॥

नाटक का शरीर—सात स्वर वाला है [षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद] इसकी सुस्वर सरस, सराग, मधुरस्वर, अलंकार आदि छः आत्मा हैं। नाटक भी शरीरधारी है–शरीर की भांति है, इसके तीन प्रमाण [लोक, वेद और अध्यात्म] परिमाण हैं। वाद्य प्रयोग में सत्त्व की अधिकता रहने से श्रेष्ठ है। तीन–समा, स्रोतोवहा, गोपुच्छा इन तीन लयों आसार प्रसार द्वारा सम्पादित होता है ॥६४०॥

---

1 उद्रगस्तु नगरीवपुः —कर्वटादधमा द्रग पत्तनादुत्तमश्च ■ ।
उद्रगश्च निवसश्च स एव द्रंग इत्यपि ॥ वाचस्पति.
पत्तन—पचास गाँव का. कर्वट–चारसौ गाँव का ।

स (सु?) कुमाराविद्धक्रिय उपरञ्जकरञ्जितो विविधवृत्तिः ।
आदेयहेयमध्यैर्भावैः सपादितः प्रयोगोऽयम् ॥ ६४१ ॥

गान-वाद्य-नृत्य अभिनय आदि सुकुमार क्रियाओं से नाटक ओत प्रोत होता है, गमक आलाप से संयुक्त है भारती, कौशकी, सात्वती, आरभटी चार वृत्तियों वाला है, आदेय-ग्रहण करने योग्य हेय-त्याज्य, मध्य व्यभिचारि भावों के साथ यह नाटक किया गया[1] ॥६४१॥

गम्भीरमधुरशब्दं परिवृंहितगीतविविधभंगयुतम् ।
दर्शयतो वैचित्र्यं न भ्रष्टो वादकस्य लयकालः ॥ ६४२ ॥

मुरजादिवाद्य वादक का विस्मयजनक बजाना गम्भीर होने पर भी मधुर था, नाना प्रकार के गीतों की परम्परा से मिला हुआ था—उनसे बढ़ा हुआ था, लय का समय कहीं भी चूका नहीं[2] ॥ ६४२ ॥

अपरित्यक्तस्थानकरसकाकुव्यंजितस्फुटार्थपदम् ।
अभिरामाविश्रान्तं पठितं निरवद्यमखिलभाषासु ॥ ६४३ ॥

---

१ नाटक को पुरुष के रूप में वर्णित किया है—पुरुष में रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु हैं, ये शरीर के आश्रय हैं, शरीर इनमें आश्रित है—नाटक में भी सात स्वर हैं । पुरुष में छ आत्मा हैं-अन्नमय, प्राणमय, मनोमय बुद्धि, आनन्दमय, पाच कोष या नेत्र, कर्ण, रसना, त्वचा, नासिका पच ज्ञानेन्द्रिय और आत्मा ये छ आत्मा हैं, नाटक में—सुस्वर आदि छै आत्मा हैं । पुरुष में शरीर के अन्दर रहने वाला जीव शरीर है, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं, सत्व रज और तम इन तीन गुणों में सत्वगुण सबसे अधिक श्रेष्ठ है । स्थूल-सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरों के समस्त-समष्टि रूप में विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन बनते हैं, व्यस्त-व्यष्टि रूप में प्राज्ञ, तैजस, विश्वाख्य ये तीन बनते हैं । सुकुमार भूतदया आदि कामल भावों से युक्त, जप, याग आदि क्रियायें हैं, रमणीय दर्शन माला आदि से प्रसन्नता मिलती है, काम, क्रोध, हर्ष, शोक आदि नाना प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं, कुछ पदार्थ अनुकूल होने से ग्रहण करने योग्य हैं, कुछ पदार्थ प्रतिकूल होने से त्याज्य हैं, और कुछ पदार्थों के प्रति उदासीनता उपेक्षा का भाव रहता है । इस प्रकार का पुरुष जीवात्मा है ।

२ तालान्तरालवर्ती यः स कालो लय उच्यते ।
त्रिविधः स च विज्ञेयो द्रुतो मध्यविलम्बितः ॥

पात्रों के पठित की प्रशंसा—पात्रों के पढ़ने में उर, कण्ठ और शिर इन स्थानों का त्याग नहीं हुआ, मन्द्र मध्य और तार स्वर से पढ़ा जाता था, पढ़ने में रस, शृङ्गारादि, काकु—अर्थ और पद सब बिल्कुल स्पष्ट थे। नाटक में प्रयुक्त होनेवाली सब भाषाओं में पठन, सुन्दर, रुकावट रहित तथा दोषशून्य था[1] ॥ ६४३ ॥

नियमितरुद्दीपनगमनं द्रुतमध्यविलम्बितताललययुक्तम् ।
रसवत्स्वरोपपन्नं कृतसाम्यं साधु गातृभिर्गीतम् ॥ ६४४ ॥

गायकों की प्रशंसा—गायकों ने भी अच्छी प्रकार उत्तमता से गाया—नियम से स्वरों का आरोह अवरोह आदि हुआ है, द्रुत-मध्य विलम्बित इनसे ठीक प्रकार मिले ताल और लय थे, शृङ्गार-वीर आदि रसों के अनुसार स्वर आवाज थी, स्वरों में परस्पर बराबर समता बनी रही[2] ॥ ६४४ ॥

प्रकृतिविशेषावस्थाप्रतिपादकवेषरचनसामग्र्या ।
अनुकरणमभ्यतीतं सिद्धिद्वयसंपदा धाराम् ॥ ६४५ ॥

नाटक की प्रशंसा—राजा, विदूषक आदि, नायक-प्रतिनायक आदि के स्वभावविशेष एवं कामकृत अभिलाषा आदि अवस्था को बतानेवाली पात्रों की वेशभूषा की सम्पूर्णता से आङ्गिक, वाचिक आदि अनुकरण करने में सबको नीचे कर दिया एवं सगुणा और सालङ्कारा दोनों प्रकार की निर्दोष सिद्धि एवं स्तुति प्राप्त की ॥ ६४५ ॥

भरतसुतैरुपदिष्टं क्षितिपतिनहुषावरोधनारीणाम् ।
मन्ये ता अपि नाट्ये शोभासंदोहमीदृशं नापुः ॥ ६४६ ॥

भरत के पुत्र—कोहल आदि ने नहुष राजा की अन्तःपुर-सुन्दरियों को नाटक की वैसी शिक्षा दी थी, मैं मानता हूँ उन्होंने भी नाट्य के विषय में इस प्रकार की कान्ति को प्राप्त नहीं किया था ॥ ६४६ ॥

सुश्लिष्टसन्धिबन्धं सत्पात्रसुवर्णयोजितं सुतराम् ।
निपुणपरीक्षकदृष्टं राजति रत्नावलीरत्नम् ॥ ६४७ ॥

---

1. यथा जन्मान्तराभ्यासात् कण्ठे कस्यापि रक्तता ।
   तथैव पाठसौन्दर्यं नैकजन्मविनिर्मितम् ॥ काव्यमीमांसा ।
   ओज, प्रसाद, माधुर्य औदार्य और साम्य ये पाँच गुण पठन के हैं।
2. हास्यशृङ्गारयोः स्वरितोदात्तं, वीररौद्राद्भुतेषूदात्तस्वरितं, करुणबीभत्सभयानकेष्वनुदात्तस्वरितमुत्पादयेत् ।

यह रत्नवली नायिका रत्न की भाँति शोभित हो रही है, (रत्नावली के पक्ष में)—इस नायिका में मुख प्रतिमुख गर्भ विमर्श और निर्वहण पाँचों सन्धियाँ अच्छी प्रकार से सश्लिष्ट मिली हैं, उत्तम पात्र एवं उत्तम वर्ण अक्षर शब्दों से यह युक्त है, चतुर परीक्षकों ने भली प्रकार परीक्षा की है। (रत्न के पक्ष में)-रत्न का सन्धिबन्ध भली प्रकार से युक्त है, अच्छे कारीगर ने सुवर्ण में भली प्रकार जड़ा है, रत्न परीक्षकों ने भी भली प्रकार से रत्न की परीक्षा की है ॥ ६४७ ॥

एवंविधगुणकथनप्रसंगिनि विभावितात्मनृपतनये ।
पठति स्मार्यामन्य स्मृतिविषयमुपागता प्रसंगेन ॥ ६४८ ॥

इस प्रकार से नाटक के गुणों की प्रशंसा करने में राजपुत्र के मन लगाये रहने पर, किसी दूसरे व्यक्ति ने प्रसंगवश याद आई इस आर्या को पढ़ा ॥६४८॥

समरामादनपसृति प्रेक्षाभिज्ञा सुभाषिताभिरतिः ।
आखेटकाभियोगः कुलविद्या राजपुत्राणाम् ॥ ६४९ ॥

संग्राम से न भागना, नाट्य को समझना[1], सुभाषित-सुन्दर हितकारी वचनों में व्यसन, मृगया में अभ्यास ये राजपुत्रों के घर की विद्यायें हैं ॥ ६४९ ॥

एतद्वस्तुनि याते श्रुतिमार्गं नृपतिनन्दनो रसतः ।
आरब्धकथाच्छेदं समाखेटवर्णनं चक्रे ॥ ६५० ॥

इसको सुनते ही राजपुत्र समरभट्ट ने तुरन्त ही प्रारम्भ की हुई कथा को समाप्त करके मृगया का वर्णन प्रारम्भ किया ॥ ६५० ॥

चललक्ष्यवेधकौशलमश्वजवे स्थिरासनाभ्यसनम् ।
भूमिविभागज्ञानं भवन्ति मृगयाभियोगेन ॥ ६५१ ॥

मृगया के अभ्यास से अस्थिर लक्ष्य के वेधन में कौशल होता है, दौड़ते हुए घोड़े पर दृढ़ता के साथ जमकर बैठा जाता है, मृगया में नदी, पर्वत, जंगल क्षेत्र आदि रूप में पृथ्वी का परिचय होता है[2] ॥ ६५१ ॥

---

१. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥ भरतनाट्यशास्त्र

२. मृगया के लाभ— मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः,
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले,
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥
शाकुन्तल २।५.

वहति जवेन तुरगे निबिडस्थितपादकटकपादाग्रः ।
तिर्यक्संश्लिष्टकायो निम्नोन्नतमग्रतो भुवं पश्यन् ॥ ६५२ ॥

यानत्राणं धावत्याकुलिते निरन्तरं श्वभिर्भीत्या ।
गोचरपतिते जीवे लघुक्रिय क्षिपति मार्गणं धन्यः ॥ ६५३ ॥

(सन्दानितकम्)

वेग से दौड़ते हुए घोड़े पर दृढ़ता से बैठे, रकाब में पैर का अगला भाग डाले, शरीर को आगे की ओर झुकाये, आगे की नीची-ऊँची भूमि को देखते हुए, शिकारी कुत्तों के भय से भागों का तांता लगाकर दौड़ते हुए प्राणी के आँख के सामने आने पर फुर्ती से तुरन्त बाण चलाना—शिकारी के लिये अतिशय गौरव का काम है ॥ ६५२–६५३ ॥

मूले स्थितस्य निभृतं मृगयुभिरन्वाट्य ढौकितं निकटे ।
पातयतो मृगमुत्प्लुतमव्यपदेश्यं सुखं किमपि ॥ ६५४ ॥

वृक्ष के मूल में शान्त निश्चल छिपकर, नौकर-शिकारियों द्वारा थाली धनस्वर आदि बजाकर समीप में लाये, कूदते हुए मृग को बाण से मार कर गिराने में एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है ॥ ६५४ ॥

गीतश्रवणोत्कर्णं निश्चलतृणकवलगर्भमुखहरिणम् ।
उपवेशितमसन्नं स्पृहणीया एव गृह्णन्ति ॥ ६५५ ॥

गीत को सुनने की लालसा से कानों को खड़े किये, मुख में तिनकों के कवल भी लिये, निश्चल शान्त बैठे, हिरण को भाग्यवान ही जीवित पकड़ पाते हैं ॥ ६५५ ॥

दावानलसन्तापान्निर्यान्तं गहनवीरुधोऽभिमुखम् ।
यो निरुणद्धि स धन्यः सूकरमेकप्रहारेण ॥ ६५६ ॥

जंगल में लगी दावानल की गरमी से बचकर निकलते हुए—सामने की गहन झाड़ियों में घुसते हुए सुअर को भाले की एक ही चोट से अपने पर चोट करने से जो शिकारी रोक देता है, वह स्तुति करने योग्य है ॥ ६५६ ॥

घनतृणोदरसुप्तं समुपेत्य स्वैरमकृतपदशब्दम् ।
व्याधवर एव कुरुते निर्जीवं हेलया शशकम् ॥ ६५७ ॥

घने तृणों में चुपचाप सोते हुए खरगोश के पास उत्तम शिकारी पैरों की आवाज़ किये बिना धीरे से पहुँचकर, बिना किसी परिश्रम के सरलता से ही खरगोश का शिकार कर लेता है ॥ ६५७ ॥

इति विदधति संहभटागेटकशक्तिलाघवश्लाघाम् ।
हृदयागतामगायत् प्रसंगतो गीतिकामपर ॥ ६५८ ॥

समरभट्ट के इस प्रकार से मृगया सामर्थ्य में क्षिप्रकारिता का वर्णन करते रहने पर किसी अन्य व्यक्ति ने प्रसगवश मन म आई इस आर्या को गाया ॥६५८॥

श्रास्ता व्यापाररस प्रवर्तिता सकथाऽपि मृगयाया ।
अन्तरयति सन्मनसामाहारादिक्रियोचित कालम् ॥ ६५६ ॥

मृगया सम्बन्धी सुन्दर रस वाली कथा को भी अब बन्द करना चाहिये, इससे कारण आहार आदि का उचित समय बीत रहा है ॥ ६५६ ॥

अवधार्य गीतिकार्थं दान प्रति धननियुक्तमभिधाय ।
उत्तस्थौ समरभटो मजरिका समवलोकयन् प्रेम्णा ॥ ६६० ॥

गीतिका के अभिप्राय को समझकर कोषाध्यक्ष को पात्रों के लिये दान देने की आज्ञा देकर, मजरी को प्रेम से देखता हुआ समरभट्ट उठ खड़ा हुआ ॥ ६६० ॥

गत्वाऽथ स्वावसथ विनिवर्तितभोजनादिकर्तव्य ।
मजरिकाकृष्टमना अभिदध्यौ सचिवसन्निधावेवम् ॥ ६६१ ॥

अपने निवास स्थान पर जाकर, भोजन आदि करणीय कार्यों को सम्पन्न करके, मञ्जरी में अनुरक्त मन वाला समर भट मन्त्री से इस प्रकार से कहने लगा॥६६१॥

भ्रूभगस्मितवीक्षितमृदुवक्रवचोऽगहारगमनेषु ।
कुसुमप्रहरण एको युगपद्विहिताश्रय कथ तस्या ॥ ६६२ ॥

उस मजरी के भ्रूभग, स्मित [मन्दहास्य], विशेष रूप से देखने में, कोमल स्वर में, वक्रोक्ति में, हाथ पैर आदि अगो के चालन में, चलने में, अकेले कामदेव ने किस प्रकार से एक साथ में आश्रय लिया है ॥ ६६२ ॥

सुन्दोपसुन्दनाश फलमारभुवस्तिलोत्तमासृष्टे ।
जनमृतये ता सृजता कि दृष्ट सुरहित तेन ॥ ६६३ ॥

तिलोत्तमा की रचना करके तो ब्रह्मा ने सुन्द और उपसुन्द दो राक्षसों का वध किया था। मनुष्यों की मृत्यु के लिये इस मजरी को बनाकर ब्रह्मा ने देवताओं का क्या लाभ सोचा ॥ ६६३ ॥

सुमनोभि परिकरिता मृगशावकतरलचक्षुषस्तस्या ।
कामोचितफलहेतुर्देहभृता दीर्घिका वेणी ॥ ६६४ ॥

मृगशावक के समान चञ्चल आँखों वाली मजरी की फूलों से गूँथी लम्बी वेणी, शरीरधारी मनुष्यों म प्रबल काम विकार को उत्पन्न करने वाली है ॥ ६६४ ॥

कमलमिव वदनकमलं पिबन्ति तस्यास्त्रिविष्टपभ्रष्टाः ।
सद्तिलकमपेतदोषं सविभ्रमं मधुमदाताम्रम् ॥ ९६५ ॥

मंजरी के कमल के समान मुखकमल का स्वर्ग से च्युत मनुष्य ही पान करते हैं[1] । मंजरी का मुख तिलक से भूषित, बाल आदि दोषों से रहित, विलास युक्त, मधु—मद्य के समान वे मदकारक तथा ईषद् रक्त वर्ण है । (कमल के पक्ष में)—कमल भ्रमरों से युक्त—रात्रि से मुक्त, दिन में निरखित, तरंग वायु आदि से विशेष रूप में हिलने वाला, मकरन्द से भरा, ईषत् रक्तवर्ण लाली लिये है[2] ॥ ९६५ ॥

यः शैलेन्द्रनितम्बं सुरताप्त्यै सेवते तपोनिरतः ।
स्पृहयति सोऽपि नितम्बं सुरताप्त्यै समवलोक्य तन्वंग्याः ॥ ९६६ ॥

तप में लगे हुए जो व्यक्ति देवत्व प्राप्ति के लिये पर्वतों के कटिभाग–मध्यभाग का सेवन करते हैं, वे भी उस कोमलांगी के नितम्ब को देखकर सम्भोग की चाह करने लगते हैं[3] ॥ ९६६ ॥

त्रिकतो मध्यविभागो बाह्वोर्युगलं करद्वयोपेतम् ।
जनयति तदपि मृगाक्षी सहस्रकरतोऽधिकं तापम् ॥ ९६७ ॥

उस मंजरी का मध्यभाग—कटि, उदर भाग तीन ग्रन्थियों से (दो कर्णग्रन्थि और एक त्रिक) बना है, इसमें तीन वलियाँ हैं । दोनों बाहुओं में दो कर (हाथ) हैं । तो भी यह मृगाक्षी सूर्य से भी अधिक सताप देती है । इसके तो पाँच ही कर हैं—सूर्य के हजारों कर हैं (कर—हाथ एवं किरणें—दोनों अर्थ हैं) ॥ ९६७ ॥

सा स्रग्धरा सुनयना प्रहर्षिणी सैव सैव तनुमध्या ।
न करोति कस्य विस्मयमिति रुचिरा मंजुभाषिणी सैव ॥ ९६८ ॥

---

1. (क) क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति—गीता;
   (ख) स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणो गां गता ये ।
2. विभ्रम—क्रोधः स्मितं च कुसुमाभरणादियाञ्चा,
   तद्वर्जनं च सहसैव विमण्डनं च ।
   आश्लिष्य कान्तवचनं जपनं सखीभि-
   र्निष्कारणस्थितिविलासेन स विभ्रमः स्यात् ॥
   नागरसर्वस्व १२।१२.
3. मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ।
   सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणामुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ॥ शृङ्गारशतक.

मजरी स्रग्धरा—माला को धारण किये, सुवदना—शोभन मुख वाली, प्रह र्षिणी—हर्षदात्री, तनुमध्या—सूक्ष्म मध्य भागवाली—सुश्रोणी, रुचिरा—सुन्दरी, मृदुभाषिणी—मधुर भाषणशीला—होने से किसको आश्चर्य में नहीं डालती—सबको चकित करती है। स्रग्धरा आदि छन्दों का एक साथ समावेश किसको आश्चर्य में नहीं डालता[1] ॥६६८॥

अनुकुर्वत्या कन्या तथा तथा नायकस्तया दृष्ट ।
येन जरत्वप्यटनी धनुष स्पृष्टा दशार्धबाणेन ॥ ६६६ ॥

रत्नावली नाटिका के अभिनय में रत्नावली कन्या का अभिनय करते हुए मजरी ने नायक उदयन को इस प्रकार से देखा था, जिसको देखकर ऐसा प्रतीत होता था—मानों कामदेव ने अपने धनुष के प्रान्त भाग से वृद्धों को स्पर्श कर दिया हो—वृद्ध भी कामातुर बन गये थे ॥६६६॥

रूप यौवनचित्रितमन्गर्यकृतानि नाट्यदीप्तानि ।
शमितामपि शमगर्व समुष्णन्त्यविकल तस्या ॥ ६७० ॥

मजरी का रूप, यौवन, मण्डन, नाट्य से उद्दीप्त शृगार चेष्टाए, मुनियों के शान्ति के अभिमान को सम्पूर्ण रूप म चूर चूर कर देती हैं ॥६७०॥

दग्धेऽपि वपुषि भीतिं न विमुचति नीललोहितसमुत्थाम् ।
तन्नेत्रे वसति यत प्रमदारूपेण शम्बरध्वसी ॥ ६७१ ॥

शरीर के जल जाने पर भी कामदेव नीललोहित [शिव] के भय से आज भी भयभीत होकर स्त्री के रूप में मजरी के शरीर म रह रहा है। क्योंकि स्त्री अवध्य है, इसलिये काम ने स्त्रीरूप ग्रहण किया है। [शम्बरध्वसी कामदेव] ॥६७१॥

यदि च परलोकमति शृणुत श्रेयस्तपोधना मत्त ।
उत्सृज्य यात तूर्णं वारवधूमुषित स्थानम् ॥ ६७२ ॥

हे तपोधन मुनियों! यदि तुमको परलोक स्वर्ग की इच्छा है, तो मुझसे मोक्ष को सुनो, वेश्याओं से सेवित स्थान को छोड़कर जल्दी से दूर भाग जाओ[2] ॥६७२॥

---

१ स्रग्धरा – म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।
सुवदना—ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता भ्लौ ग सुवदना।
प्रहर्षिणी—म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयति प्रहर्षिणीयम्।
रुचिरा – जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहै।
मञ्जुभाषिणी—सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी—छन्दोमञ्जरी.

२. *शृणु हृदय रहस्य यत्प्रशस्त मुनीनां, न खलु न खलु योषित्सन्निधि सन्निधेय।*
हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिक्षुरप्र' र्पिहितशमतनुत्रं चित्तमप्युत्तमानाम् ॥

चिरमपि विकल्प्य निश्चितिरियमेव स्थाप्यते, न गतिरन्या ।
तन्निर्माणे जाता लावण्यमयाः कणा विरिञ्चस्य ॥ ६७३ ॥
देर तक विचारने के पीछे यही निश्चय हुआ कि इस मंजरी के बनाने में 'ब्रह्मा के परमाणु भी लावण्यमय बन गये थे; इसके सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं दीखता'[1] ॥ ६७३ ॥

आसाद्य समुन्नत्यं यस्याः स्तनयुगलमविहतप्रसरम् ।
क्षपयति यज्जनमेवं कस्त्यक्ष्यति तद्विवेकवान् पतितम् ॥ ६७४ ॥
मंजरी के दोनों स्तन निर्बाध रूप से बढ़ते हुए अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच कर मनुष्य का [निरपराधी मनुष्य का] नाश कर देते हैं। विवेकी मनुष्य आँखों के सामने आये इन स्तनों को पकड़े बिना कैसे छोड़ सकता है। [निरपराधी पुरुष को जो मारता है, सामने आने पर उस अपराधी पुरुष को बुद्धिमान मनुष्य पकड़ता ही है[2]] ॥ ६७४ ॥

स कथं न स्पृहणीयो विषयरतैस्तन्नितम्बविन्यासः ।
शान्तात्मनाऽपि विहितं विश्वसृजा गौरवं यस्य ॥ ६७५ ॥
विषयों से विमुख शान्तचित्त ब्रह्मा ने मंजरी के जिन नितम्बों को भारी बनाया है, उन नितम्बों की चाह विषयों में रत पुरुष क्यों न करें[3] ॥६७५॥

स्मरणार्थस्योत्पत्तिः सुमनस इषवो बलाश्रया शक्तिः ।
सोऽपि व्यंग प्रहरति, धातुरहो चित्रमाचरितम् ॥ ६७६ ॥
जिस [काम] की उत्पत्ति स्मरण से है; फूल जिसके बाण हैं, अबला स्त्रियाँ जिसका बल है, जिसके अंग नष्ट हो गये हैं, वह व्यंग अनंग-काम युवा वृद्ध सब पर प्रहार करता है, यह ब्रह्मा का आश्चर्यजनक कार्य है[4] ॥ ६७६ ॥

तिष्ठन्त्वन्ये, दृष्ट्वा सारं जगतां तदंगनारत्नम् ।
नष्टपठनावधानो भवति ब्रह्मा सनिर्वेदः ॥ ६७७ ॥
दूसरों की बात रहने दो—सारे संसार की सार भूत मंजरी को देखकर ब्रह्मा भी वेदपाठ करना भूल जाता है और इसके कारण दुःखी रहता है ॥ ६७७ ॥

---

१. लावण्य— मुक्ताफलेषु च्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदंगेषु लावण्यं तदिहोच्यते ॥

२. सुवृत्तमुन्नत पीनमदूरोन्नतमायतम् । स्तनयुग्मं सदाशस्त—भविष्यपुराण.

३. नितम्बबिम्ब नारीणामुन्नतामांसल-पृथुः । महाभोगाय संप्रोक्त—भविष्यपुराण

४ मनोऽपि मूल हृदयाभूतं—बृहत्संहिता ७७।१२;
काम जानामि ते मूलं सङ्कल्पाज्जायते किल ॥

यदि पश्यति तां शर्वस्तदपररामासमागमाद्विमुखः ।
निन्दति मूर्धनि सोमं स्मराग्निसंधुक्षणं शरीरञ्च ॥ ६७८ ॥

अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध करने में विमुख बने महादेव यदि मंजरी को एकबार देख लें, तो शिर में स्थित चन्द्रमा की तथा कामाग्नि से जलते शरीर दोनों की निन्दा करने लगें [चन्द्रमा से कामाग्नि बढती है, चन्द्रमा काम का उद्दीपक है– "परमसुहृदनंगो रोहिणीवल्लभस्य"–विद्धशालभञ्जिका–१।१] ॥ ६७८ ॥

केशव इह सन्निहितः, साऽपि मनोहारिरूपसपन्ना ।
तद्वत्क्ष्यवनभुवं कथमुज्झति सैन्धवीशाकाम् ॥ ६७६ ॥

यह मंजरी लक्ष्मी के समान अति रूपवती है, उसका वक्ष स्थल-स्तनों के औन्नत्य, कठिनत्व आदि सम्पत्ति से युक्त है। इसलिये विष्णु उसमें लक्ष्मी का भ्रम करते हैं, उसी के पास रहते हैं। [सैन्धवी-लक्ष्मी] ॥ ६७६ ॥

उदयति न पण्डितानां कथमात्मनि कौतुकं गजेन्द्रगतिः ।
यन्नवयसा पुमां विना क्रियायोगमुपसर्गाः ॥ ६८० ॥

उस मन्दगामिनी को देखकर पण्डितों के मन में भी आश्चर्य उत्पन्न होता है, क्योंकि जिनमें अभी जवानी फूटी है, ऐसे पुरुषों में भी बिना क्रियायोग के [संयोग रूप क्रिया के बिना भी] उपसर्ग [विरहजन्य पीडा] होने लगते हैं[1] ॥ ६८० ॥

श्रुतिकुवलयमीक्षणता कुवलयता वा त्रिलोचन यायात् ।
हरिणदृशो यदि नस्यात् कनकोज्ज्वलकेसर मध्ये ॥ ६८१ ॥

यदि नील कमल में स्वर्ण के समान पीला केशर न होता तो उस मृगाक्षी के कानों में लगे नीलकमल ने आँखों की शोभा लेली है, अथवा आँखों ने उस नील कमल की शोभा ले लिया है, इसका निश्चिय करना कठिन होता, पीला केशर ही नीलकमल और आँखों में भेद कराता है ॥ ६८१ ॥

ललनास्तदतुल्यतया पुरुषा अपि तदुपभोगविरहेण ।
गच्छन्ति शोषमनिशं, प्रकृतिद्वयवर्जिता स्वरथा ॥ ६८२ ॥

---

1. व्याकरण में क्रिया के बिना प्र आदि उपसर्ग नहीं बनते, क्रिया के साथ जुड़ने पर ही इनकी उपसर्ग संज्ञा होती है—
'उपसर्गाः क्रियायोगे' [पा १।४।५९] पाणिनेरिति सम्मतम् ।
निष्क्रियोऽपि वाराति सोपसर्गः, सखा कथम् ॥
परन्तु मंजरी के साथ सम्भोग क्रिया के बिना ही युवकों में विरहजन्य पीड़ा होने लगती है, यह आश्चर्य है।

अन्य स्त्रियाँ मंजरी के समान न होने की चिन्ता से; और पुरुष उसके उपभोग के विरह के दुःख से, रात दिन सूखते जाते हैं, केवल नपुंसक ही स्वस्थ हैं ॥ ६८२ ॥

दुर्वृत्तयोर्न वृत्तं श्लाघास्पदमेति तत्पयोधरयोः।
यौ दत्त्वाऽमलमूर्तिं मध्ये हारं, जनक्षयं कुरुतः॥ ६८३ ॥

बुरे आचरण वाले उसके स्तनों का वर्णन प्रशंसनीय नहीं है, जो स्तन निर्मल स्वर्ण के हार को बीच में रखकर मनुष्यों को मारते हैं ॥ ६८३ ॥

भूमण्डलेऽत्र सकले नातः परमपरमद्भुतं किंचित्।
नो जाता यद्गपार्था कृशोदरी धार्तराष्ट्रगताऽपि ॥ ६८४ ॥

इस सारी पृथ्वी पर इससे अधिक आश्चर्य की बात दूसरी कोई नहीं, हंसगामिनी-कृशोदरी का जन्म निष्फल नहीं हुआ, अति रूपवती होने से सबके लिये आनन्ददायक है[1] ॥ ६८४ ॥

कृश एव मध्यदेशस्तन्व्या नाहार्यमण्डलं वोढुम्।
शक्त इति कृतं विधिना रोमावलिभूषणं सहजम् ॥ ६८५ ॥

उस तन्वङ्गी का यह पतला मध्य भाग ही ऐसा है, जो कि किसी प्रकार के आभरण के भार को नहीं उठा सकता। इसलिये ब्रह्मा ने इस भाग में जन्म से ही रोम पंक्ति बना दी [यौवन के आगमन की सूचना देने वाली रोमपंक्ति उत्पन्न कर दी] ॥ ६८५ ॥

सानुम्बोधर, ईक्षणयुगलस्याधीरता, भ्रुवो भंगः।
तन्वंग्या बलमीदृग् जयति जगत्तदपि निःशेषम् ॥ ६८६ ॥

उसका निचला ओंठ काँपता है, दोनों आँखों में चञ्चलता है, भ्रुवों में कुटिलता है, उस तन्वङ्गी का बल इस प्रकार का है, फिर भी वह सम्पूर्ण जगत् को जीतती है ॥ ६८६ ॥

यद्यतु नितम्बः स्थूलो रसानां, हारं च कुचयुगं पीनम्।
तद्वाहुमृणालिकयोः सापायं कटकयोजनमयुक्तम् ॥ ६८७ ॥

---

1. धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ पार्थ-पृथा के पुत्र पाण्डवों का एक साथ रहना सबसे अधिक आश्चर्य है—कौरव-पाण्डव एक साथ रहें-यह आश्चर्य है। इस विरोध का परिहार यही है कि उस हंसगामिनी का जन्म व्यर्थ नहीं हुआ। कृशोदरी—उदरेणातितुच्छेन विशिरेव मृदुत्वचा।
यौषिद् भवति भोगाढ्या निःस्व मिष्टाशनैननी ॥

पारिजात के गुच्छे को वेणी में धारण करने की इच्छा मूर्ख ही कर सकता है। इसी प्रकार मूढ़ मनुष्य ही नारायण के वक्ष से कौस्तुभ मणि को लेने की इच्छा करता है॥ ६६३॥

स्वनियतपुरुषस्पृश्याः पापा वयमन्यथा क्व हीनकुलाः।
क्व च यूयमिन्द्रकल्पा अनल्पमनसो गुणाभरणाः॥ ६६४॥

कहाँ हम हीन कुल में उत्पन्न पापी—अपने ही नियत पुरुषों से [कुल वाले पुरुषों से] स्पृश्य हैं [उनमें ही विवाह आदि हमारा हो सकता है]? कहाँ आप इन्द्र के समान उदार अन्त करण विनीत-कुलीनत्व आदि गुणों वाले? ॥६६४॥

दुष्प्रकृतेः प्रकृतिरियं तस्य तु दग्धात्मजन्मनः कापि।
अगणितयुक्तायुक्तो लगयति चेतो यदस्थाने॥ ६६५॥

दुष्प्रकृति, जलमुँहे कामदेव का यह स्वभाव ही है कि वह मनको विवेक रहित बनाकर अस्थान में लगाता है—सम्बद्ध करता है॥ ६६५॥

या हसति सरोजवतीं रसान्विता सहजरागरक्तेति।
ध्यानविय आत्मवृत्तिं निन्दत्येकत्र पुरुष आसक्ताम्॥ ६६६॥

जो मजरी कमलिनी को भी हँसती है, वह स्नेह वाला मजरी तुममें अनुरागवती बनी है, [उसका यह अनुराग स्वाभाविक है]। एक ही पुरुष में आसक्त [परमात्मा में आसक्त] एकाग्रचित मनुष्यों की अन्त करण वृत्ति की यह निन्दा करती है, उनको भी नीचा दिखाती है—उनसे अपेक्षा भी आप में उसका ध्यान अधिक है॥ ६६६॥

स्निग्धेति नाभिनन्दति जन्मशतेनापि सर्पिषो धाराम्।
पंचाद्युतगतिं नानर्थकरागसंगता स्तौति॥ ६६७॥

घृत की धारा सैकड़ों जन्म से स्निग्ध होने पर भी वह उसकी निन्दा करती है—[मजरी का स्नेह घृत की धारा से भी अधिक आप पर है]। अनर्थकारक पुरुष में मनको नहीं लगाती॥ ६६७॥

न स्तौति चन्दनलता भुजंगपरिवेष्टिता रसार्द्रेति।
न शृणोति कीर्त्यमाना स्वप्नेऽपि मदनमूर्च्छिता मत्सीम्॥६६८॥

रस से भरी—साँपों से परिवेष्टित चन्दनलता की प्रशंसा नहीं करती [भुजग विदग्ध कामुकों से युक्त होने पर स्वयं स्नेहवती होकर भी सुख अनुभव नहीं करती]। काम से मूर्च्छित मछली के समान स्वप्न में कही बात भी नहीं सुनती[1]॥ ६६८॥

---

1. भागवत के अनुसार प्रद्युम्न-प्रद्युम्न मछली के उदर से निकले हैं (१०।५५।१२) काम से मूर्च्छित-कहे हुए गुणों को नहीं सुनता।

स्थूल नितम्ब भले ही रशना का बोझ उठाये, पीन दोनों स्तन भी भले हार को धारण करें। परन्तु कमलनाल के समान कोमल उसके दोनों बाहुओं में अनर्थकारी बाजूबन्द का पहनना उचित नहीं ॥ ६८७ ॥

बहूलोपायाभिज्ञा गुणविषये सततमाहितप्रीति ।
बलिन स्थापयति वशे करभोरुर्विग्रहेण मृदुनैव ॥ ६८८ ॥

मनुष्यों को वश करने के विलास कला कौशल आदि अनेक उपायों को जानने वाली, रूप रसादि इन्द्रियों के गुणों में अनुराग रखने वाली, यह करभोरु ? कोमल युद्ध से ही बलवानों को अपने वश में कर लेती है। अपने अनुग्रह मान से बड़े बड़ों को अपने अधीन कर लेती है ॥ ६८८ ॥

इति तत्स्तुतिमुखरमुखे राजसुते मकरकेतनाकुलिते ।
समुपागता प्रगल्भा मजरिकाचोदिता दूती ॥ ६८९ ॥

कामदेव से बेचैन राजपुत्र के इस प्रकार से मजरी की स्तुति करते हुए मजरी से भेजी प्रगल्भा दूती राजपुत्र के पास आई ॥ ६८९ ॥

सा सप्रणति पुरत सुमनस्ताम्बूलपटलक निदधे ।
व्यज्ञापयच्च तदनु स्वावसरे सहचरीकार्यम् ॥ ६९० ॥

दूती ने प्रणाम करके, राजपुत्र के सामने फूलों एव पान की पिटारियाँ रख दीं, और समय देखकर अपनी सखी का कार्य कहना आरम्भ किया ॥ ६९० ॥

मुररिपुनाभिसरोरुहमयतसीकर्तुमीहते मूढा ।
नक्षत्रराजमण्डलमिच्छति वियत समादातुम् ॥ ६९१ ॥

मूर्ख व्यक्ति विष्णु भगवान् की नाभि से उत्पन्न कमल को प्राप्त करना चाहते हैं। इसी प्रकार आकाश म से नक्षत्रों के बीच से चन्द्रमा को लाना चाहते हैं [अर्थात् मूर्ख मनुष्य मजरी को प्राप्त करना चाहते हैं वह कमल एव चन्द्रमा के समान उनके लिये दुष्प्राप है] ॥ ६९१ ॥

निश्चेतनाऽभिकाङ्क्षति पीयूष त्रिदिवसद्मनामशनम् ।
अभिलषति शयनमुष्ण नवचन्दनपल्लवास्तरणम् ॥ ६९२ ॥

चेतना शून्य व्यक्ति देवताओं के भोजन अमृत को प्राप्त करना चाहते हैं एव चन्दन के नूतन पत्तों से बने गरम बिछौने पर सोना चाहते हैं [जिस प्रकार से ये दोनों बातें असगत हैं उसी प्रकार मजरी का पाना भी असगत है] ॥ ६९२ ॥

विदधाति पारिजातकसुमनोनिर्यूहधारणश्रद्धाम् ।
दुर्व्यवसिता जिघृक्षति नारायणवक्षसो रत्नम् ॥ ६९३ ॥

पारिजात के गुच्छे को वेणी में धारण करने की इच्छा मूर्ख ही कर सकता है। इसी प्रकार मूढ़ मनुष्य ही नारायण के वक्ष से कौस्तुभ मणि को लेने की इच्छा करता है ॥ ९९३ ॥

स्वनियतपुरुषस्पृश्या: पापा वयमन्यथा क्व हीनकुला: ।
क्व च यूयमिन्द्रकल्पा अनल्पमनसो गुणाभरणा: ॥ ९९४ ॥

कहाँ हम हीन कुल में उत्पन्न पापी—अपने ही नियत पुरुषों से [कुल वाले पुरुषों से] स्पृश्य हैं [उनमें ही विवाह आदि हमारा हो सकता है] ? कहाँ आप इन्द्र के समान उदार अन्त:करण विनीत-कुलीनत्व आदि गुणों वाले ? ॥९९४॥

दुष्प्रकृते: प्रकृतिरियं यस्य [redacted] दग्धात्मजन्मन: काऽपि ।
अगणितयुक्तायुक्तो लगयति चेतो यदस्थाने ॥ ९९५ ॥

दुष्प्रकृति, जलमुँहे कामदेव का यह स्वभाव ही है कि वह मनको विवेक रहित बनाकर अस्थान में लगाता है—सम्बद्ध करता है ॥ ९९५ ॥

या हसति सरोजवतीं रसान्विता सहजरागरक्तेति ।
ध्यानधिय आत्मवृत्तिं निन्दत्येकत्र पुरुष आसक्ताम् ॥ ९९६ ॥

जो मञ्जरी कमलिनी को भी हँसती है, वह स्नेह वाली मञ्जरी तुममें अनुरागवती बनी है, [उसका यह अनुराग स्वाभाविक है]। एक ही पुरुष में आसक्त [परमात्मा में आसक्त] एकाग्रचित मनुष्यों की अन्त:करण वृत्ति की यह निन्दा करता है, उनको भी नीचा दिखाती है—उनकी अपेक्षा भी आप में उसका ध्यान अधिक है ॥ ९९६ ॥

स्निग्धेति नाभिनन्दति जन्मशतेनापि सर्पिषो धाराम् ।
पंचात्त्वयुतामपि नानर्थकरागसंगतां स्तौति ॥ ९९७ ॥

घृत की धारा सैकड़ों जन्म से स्निग्ध होने पर भी वह उसकी निन्दा करती है—[मंजरी का स्नेह घृत की धारा से भी अधिक आप पर है]। अनर्थकारक पुरुष में मनको नहीं लगाती ॥ ९९७ ॥

न स्तौति चन्दनलतां भुजगपरिवेष्टितां रसार्द्रेति ।
न शृणोति कीर्त्यमाना स्वप्नेऽपि मदनमूर्च्छितां मत्सीम्॥९९८॥

रस से भरी—साँपों से परिवेष्टित चन्दनलता की प्रशंसा नहीं करती [भुजग विटरूप कामुकों से युक्त होने पर स्वयं स्नेहवती होकर भी गुण अनुसरण नहीं करती]। काम से मूर्च्छित मछली के समान स्वप्न में कही बात भी नहीं सुनती[1] ॥ ९९८ ॥

---

1. भागवत के अनुसार प्रद्युम्न-प्रद्युम्न मछली के उदर से निकले हैं (१०।५५।११) काम से मूर्च्छित-कहे हुए गुणों को नहीं सुनता।

विद्वेष्टि करणमध्ये रसना ताम्बूलरागयुक्तेति ।
शसति मतिं मुमुक्षोरविशिष्टा शशवृषाश्वपुम्येषु ॥ ९९९ ॥

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों में वह ताम्बूल की लाली से युक्त रसना-जिह्वा से द्वेष करती है [क्योंकि मजरी की जिह्वा मे स्वाभाविक रक्तिमा है और पान से कृत्रिम लाली आती है, इसीसे उसे इससे द्वेष है] । मोक्ष की इच्छा वाले पुरुषों की शश, वृष, अश्व आदि पशुओं में समान बुद्धि की प्रशंसा करती है[1] ॥ ९९९ ॥

नो बहु मनुते रम्भा नलकूबरमभिसृतेति कामार्ता ।
गर्हति च देवगणिकामनुरक्तामुर्वशीं पुरूरवसि ॥ १००० ॥

काम से पीडित होकर स्वय नलकूबर के पास जाने वाली रम्भा को भी वह बहुत मान नहीं देती । पुरूरवा में आसक्त देवगणिका उर्वशी को भी वह कुछ नहीं गिनती [दिव्य योनि की होकर उसने अदिव्य मर्त्यलोक के आदमी में मन लगाया-इससे उसका भी आदर नहीं करती] ॥ १०००॥

हरति मनो नो ह्रियते, रजयति न रज्यते कदाचिदपि ।
गृह्णाति चित्रचरितैरपकृतिभिर्गृह्यते न बह्वीभि ॥ १००१ ॥

मजरी दूसरे मनुष्यों का मन हरण करती है, परन्तु अपना मन किसी को नहीं देती, दूसरों का मनोरञ्जन करती है, परन्तु कभी भी किसी में अनुरक्त नहीं होती । विचित्र आचरणों स्वाभाविक विलक्षण विलासों से दूसरों के मन को वश में करती है, और स्वय दूसरों के किये बहुत से उपकारों से भी वश में नहीं होती ॥ १००१ ॥

---

1 शश, वृष और अश्व-ये तीन उपलक्षण हैं-मजरी सब प्राणियों में समान बुद्धि रखती है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ॥ गीता ५।१८

कामशास्त्र में शश, वृष और अश्व जाति के पुरुष प्रसिद्ध हैं—वह मजरी तीनों में समान अनुराग रखती है ।

शश—स्त्रीजितो गायनश्चैव नारीसत्यपर सुखी ।
षडगुलशरीरश्च श्रीमांश्च शशको मत ॥

वृष—उपकारपरो नित्य स्त्रीवश श्लेष्मलस्तथा ।
दशागुलशरीरस्तु मेदस्वी वृषभो मत ॥

अश्व—लुब्धश्च कृपणश्चैव मिथ्यावादी च निर्भय ।
द्वादशांगुललिंगस्तु कुशलोऽपि हयो मत ॥

अनगरग [३।१६ १८] पचसायक [२।८।१२] में विशेष रूप से देख ला सकते हैं ।

प्रेममयीवाभाति प्रेम तु नाम्नैव केवलं वेत्ति।
कण्टकिता भवति रते रसभोगसुखं शृणोति लोकात्तु ॥ १००२ ॥

प्रेम की मूर्त्ति बनी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में वह प्रेम को केवल नाम से ही जानती है। प्रेम कथा में या रमण क्रीडा की वार्त्ता में उसे रोमाच हो जाता है, परन्तु ब्रह्मानन्द के समान सम्भोग के सुख को अन्य पुरुषों से ही सुनती है, [उसने कभी अनुभव नहीं किया] ॥ १००२ ॥

कुरुते विविक्तचाटून् शिल्पविशेषेण न तु रसावेशात्।
अनभिज्ञा मदनरुजामाकल्पकवेदनां समावहति ॥ १००३ ॥

अपना चातुर्य दिखाने के लिये ही कला विशेष से वह निर्दोष प्रिय वाक्यों की-समस्याओं की रचना करती है; किसी राग के कारण प्रिय बातें नहीं करती [खुशामद नहीं करती]। काम की पीडाओं से अनभिज्ञ है, उनको नहीं जानती, परन्तु कामावस्था सम्बन्धी अनुभवों का उसको ज्ञान है ॥ १००३ ॥

बालैवार्जवरहिता स्फुरतीश्वरमेत्य चन्द्रलेखेव।
हृतधनपतिमाहात्म्या प्रवृत्तिरिव रक्षसां पत्युः ॥ १००४ ॥

मंजरी बाल चन्द्रलेखा के [द्वितीया के चन्द्रमा के] समान वक्र है— उसमें सीधापन नहीं है [कपट करने में कुशल है]। चन्द्रमा की भाँति ईश्वर-महादेव को प्राप्त होकर अधिक प्रकाशित होती है। मंजरी धनी व्यक्ति को प्राप्त करके अधिक विलास वाली बन जाती है। जिस प्रकार से रावण ने कुबेर का सब धन ले लिया था; उसी प्रकार धनी व्यक्तियों का धन हरण करने में उसकी प्रवृत्ति है ॥ १००४ ॥

नरनाथ, किं ब्रवीमि, त्रिपुरान्तकनयनदहनदग्धोऽपि।
दुःसाध्यसाधनमद्युत्सृजति न पापकुसुमास्त्रः ॥ १००५ ॥

हे नरनाथ! अधिक क्या कहूँ, महादेव की आँख की अग्नि से जला हुआ पापी कामदेव भी कष्टसाध्य कार्य के सम्पादन में अपने हठ को अब भी नहीं छोड़ता [मंजरी के द्वारा असाध्य कार्य को भी सिद्ध कर लेता है ?] ॥१००५॥

त्वद्दर्शनावकाशं संप्राप्य यतो दुरात्मना तेन।
चिरसंभृतकोपेन प्रारब्धा साऽपि हन्तुमिषुधारैः ॥ १००६ ॥
(कुलकम्)

इसी कारण से उस दुरात्मा कामदेव ने तुम्हारे दर्शन का एक लाभ देकर, चिर काल संचित क्रोध पूर्वक बाणों की वृष्टि से उस पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १००६ ॥

अवहेलयेव भवता संस्पृष्टा येन वेत्रदण्डेन ।
जातः स एव तस्या अनन्यभवमार्गणः प्रथमः ॥ १००७ ॥

जिस वेत्रदण्ड से आपने अवहेलना रूप में [वास्तव में स्नेह रूप से] मजरी का स्पर्श किया था, वही वेत्रदण्ड उसके लिए कामदेव का पहला बाण बन गया ॥ १००७ ॥

विज्ञानार्जितदर्पो निभृतं हसितः समानशिल्पाभिः ।
त्वयि सक्तदृशः सख्या विसंष्ठुले नाट्यनिर्माणे ॥ १००८ ॥

मेरी सखी को अव्यवस्थित नाट्य रचना में तुम में लगी आँखों को देखकर, नाट्य कर्म में सम्पादित गर्ववाली समान कला में शिक्षित सखियाँ चुपचाप हँसने लगीं ॥ १००८ ॥

अवधीर्याऽऽचार्यरुषं भरतोदितदोषकरणसम्भूताम् ।
विस्तारितः प्रयोगस्त्वदवस्थितिवाञ्छया तन्व्या ॥ १००९ ॥

नाट्यशास्त्र के आद्य प्रवर्त्तक आचार्य भरत से कहे नाट्य दोष से उत्पन्न आचार्य के कोप को समझ कर, उस कोमलांगी ने आप देर तक बैठे रहें—इस चाह से नाटक का खेल लम्बा कर दिया (जिससे अधिक समय आपको देख सके) ॥ १००९ ॥

भग्नेऽपि प्रेक्षणके तदनन्तरभूमिकाश्रयावस्थाः ।
गृह एव निरवसानं वितनोति न नाट्यधर्मेण ॥ १०१० ॥

नाटक के समाप्त हो जाने पर भी उसके आगे की भूमिका को (प्रथम अंक के समाप्त होने पर दूसरे अंक की भूमिका को लेकर), अपने घर में ही सदा करती रहती है, नाटक के रूप में नहीं करती ॥ १०१० ॥

ध्यायत एकं पुरुषं परमात्मविदः शशंस या न पुरा ।
ताननुकुरुते सैव ध्यायन्ती त्वां महापुरुषम् ॥ १०११ ॥

जो मजरी पहले एक पुरुष परमात्मा को जानने वालों की प्रशंसा नहीं करती थी, वही अब आप महापुरुष का ध्यान करती हुई उन्हीं ज्ञानियों का अनुकरण करती है ॥ १०११ ॥

गतमेवमेवमासितमालोकितमेवमेवमालपितम् ।
इति विस्मृतान्यकार्या स्मरति कृशांगी त्वदीयलीलानाम् ॥१०१२॥

राजपुत्र ने इस प्रकार से गमन किया था, राजपुत्र इस प्रकार से बैठा था, इस प्रकार से देखा था, इस प्रकार बातचीत की थी, इस प्रकार से वह कृशांगी अन्य सब कार्यों को भुलाकर आपकी चेष्टाओं का ही स्मरण करती है ॥१०१२॥

नलकूबरो वराको, रतिरमणो रमण एव किं तेन ।
अनिरुद्धोऽपि न बुद्धो विदग्धवनितासु सुरतगोष्ठीषु ॥ १०१३ ॥

कुबेर का पुत्र नलकूबर दीन है (क्योंकि नारद के शाप से अर्जुन वृक्ष बना); रतिरमण-कामदेव नाम मात्र को ही रमण है (अनंग होने से रमण नहीं कर सकता), कृष्ण का पौत्र और प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्ध चतुर युवतियों की सम्भोग वार्ता में पण्डित नहीं ॥ १०१३ ॥

न जयन्तोऽनन्तगुणो, न कुमारो मारकर्मणो वाद्य ।
येन समतां नयामस्त्वामिति सखी वहति मानसं क्लेशम् ॥ १०१४॥

जयन्त-इन्द्रपुत्र में भी बहुत गुण नहीं हैं (उसने कौए का रूप धारण करके सीता के कुचों पर चञ्चु प्रहार किया था), कुमार-कार्त्तिकेय भी काम के मोहन आदि कर्मों को अभी नहीं जानता (अभी कुमार ही है), आपकी किस राजपुत्र से तुलना की जाये, इसी मानसिक क्लेश से मेरी सखी दुःखी है ॥ १०१४ ॥

उत्तमगानो मजरी अन्य सब कार्यों को छोडकर अविदित चित्त से आपके बारहनामों वाले इस महा स्तोत्र को इच्छित फल प्राप्ति के लिये लगातार जपती है ॥ १०१७ ॥

तामेव गच्छ यस्यामासज्य विलम्बितोऽसि गतलज्ज ।
वेलामियतीमलमलमेतैरधुना शठानुनयैः ॥ १०१८ ॥

हे निर्लज्ज ! उसी के पास जा, जिसमें आसक्त होकर मेरे पास आने में इतनी देर की ! अब इन धूर्तता पूर्ण अनुनयों को—खुशामदों को बन्द करो[1] ॥ १०१८ ॥

वक्ष्यामि सापराधं क्रोधस्फुरदधरमंचितभ्रूकम् ।
इति विदधाति सुमध्या हृदयेन मनोरथवृत्तिम् ॥ १०१९ ॥
(सन्दानितकम्)

अन्य स्त्री के साथ प्रेम करने में क्रोध से फड़फड़ाते ओठों से एवं भुवों टेढ़ा करके इस प्रकार से कहूँगी—ऐसे संकल्पों का अभ्यास यह सुभौंग्री करती है ॥ १०१९ ॥

उत्सहते न द्रष्टुं प्रतिबिम्बितमाननं, कुतः शशिनम् ।
का सकथा मृणाले क्षिपति भुजौ सर्वतो व्यथिता ॥ १०२० ॥

यह अपने मुख का परछाईं भी शीशे दर्पण में देखने से डरती है, (चन्द्रमा की भ्रांति कहीं सन्ताप उत्पन्न न हो जाये, इसलिये दर्पण में मुख भी नहीं देखती), फिर चन्द्रमा का देखने की बात दूर रही। दुःखी होकर यह अपनी बाहुओं को इधर उधर बराबर फेंकती है, मृणाल—कमल नालों पर भुजायें रखने का बात ही कहाँ ॥ १०२० ॥

दूरे कदलीदण्डा ऊर्वोरपि न सहते समाश्लेषम् ।
करसम्पर्कोद्विमुखी विश्राम्यति पल्लवेष्विति विरुद्धम् ॥ १०२१ ॥

वह तो अपनी दोनों जंघाओं को भी मिलाकर नहीं रख सकती—फिर केले के स्तम्भ की बात ही क्या (उसकी अपनी जंघायें ही केले के समान हैं—जब उनको ही मिलाकर नहीं रख सकती—फिर केले के स्तम्भ की बात क्या) । वह तो अपने दोनों हाथों को परस्पर मिला ही नहीं सकती, इसलिए कोमल पत्तों पर उसका

---

[1] किं किं वक्तुमुपेत्य सुवति वचान्निर्लज्ज लज्जा न ते,
वस्त्रान्त शठ मुञ्च मुञ्च, शपथैः [illegible] धूर्त वाम्वज्ञनै ।
खिन्नाऽहं तव रात्रिजागरवशात्तामेव याहि प्रियां
निर्माल्योज्झितपुष्पदामनिकरे का षट्पदानां रतिः ॥

लेटना किसी प्रकार सम्भव नहीं। (अपना स्पर्श भी वह सहन नहीं कर सकती, फिर बाहर की वस्तुओं का स्पर्श कैसे सहेगी) ॥ १०२१ ॥

अयि मंजरि, सैव त्वं, विदग्धजनमण्डिता पुरी सैव।
कुसुमायुधः स एव व्यसनं कुत एतदायातम् ॥ १०२२ ॥

हे मंजरी! तू तो वही पहले वाली है, चतुर जनों से शोभित यह नगरी भी वही है, कामदेव भी वही है, फिर यह आपत्त कहाँ से आ पड़ी ॥ १०२२ ॥

यस्याः कामः कृपणो रागकृशिस्रग्णोलपप्रख्या।
साऽपि गता भूमिमिमां, जीवन्त्या नेक्ष्यते किमिह ॥ १०२३ ॥

जिसका काम दीन-अकिञ्चिनकर निष्फल है, स्नेह का आकर्षण-दूर्वा आदि लता की भाँति तुच्छ है; उसकी भी ऐसी दशा हो गई। जीवित व्यक्ति को इस लोक में क्या नहीं देखना पड़ता ॥ १०२३ ॥

अभियोगशिक्षितानामशिक्षितानां च मदनचेष्टानाम्।
सुतनु विशेषग्रहणे सामर्थ्यं तद्विदामेव ॥ १०२४ ॥

हे सुतनु! अत्यन्त परिश्रम के साथ सीखे एवं अशिक्षित पुरुषों में काम चेष्टाओं के भेद को समझने का सामर्थ्य-अनुभव शास्त्र से सीखे व्यक्तियों में ही होता है (इसलिये कपट वचनों से भाव को नहीं छिपाया जा सकता, इसलिये हमसे तुम्हारा भाव छिप नहीं सकता) ॥ १०२४ ॥

व्यथयन्नपि सन्द्रावः परिजनचिन्ताकरोऽपि रमणीयः।
आधत्ते त्वयि लक्ष्मीमभिनवरागाश्रयोऽधिकाक्लेशा ॥ १०२५ ॥

प्रथम उत्पन्न हुई मन की व्याकुलता, मन को पीड़ित करते हुए भी शरीर की शोभा-कान्ति की हानि नहीं पहुँचाती, सखीजनों के लिये चिन्ता का विषय होने पर भी मनोहर होती है। आप में मन की बेचैनी कामान्तरयावस्थ कमनीय शोभा को और भी अधिक बढ़ाती है ॥ १०२५ ॥

एकः स एव जातो भुवनेऽस्मिन्नसमसायकस्पर्धी।
तेन शशिबिम्बफलके सुजन्मना लेखितं निजं नाम ॥ १०२६ ॥

इस संसार में कामदेव का प्रतिद्वन्द्वी एक ही उत्पन्न हुआ है, उस सुजन्मा ने चन्द्र बिम्ब पर अपना नाम लिख दिया है। उसकी कीर्ति बहुत दूर तक फैली है ॥ १०२६ ॥

पादस्तेन सलीलं निन्यस्तः सुभगमानिनां मूर्ध्नि।
सौभाग्यपराक्रुसुमं मनपतिसूनोः कदर्थितं येन ॥ १०२७ ॥

उसने सौभाग्य मानने वालों के शिर पर अनायास ही पैर रख दिया (उनको नीचा दिखा दिया), उसने कुबेर के पुत्र–नलकूबर के सौभाग्य के यश कुसुम को व्यर्थ बना दिया (मिट्टी में उसका यश मिला दिया) ॥ १०२७ ॥

नरवंचनपटुबुद्धिः संपादितकपटचाटुसंघटना ।
त्वमपि विलासिनि गमिता गतिमियतीं येन सुभगेन ॥ १०२८ ॥
(अन्तर्विशेषकम्)

हे विलासिनि ! जिस सौभाग्यवान् ने मनुष्यों को ठगने में चतुर बुद्धि; चाटु वचनों से मनुष्यों को वश में करने वाली तुझको भी इस अवस्था में पहुँचा दिया ॥ १०२८ ॥

तद्वद तस्य स्थानं, यतामहे कार्यसाधनायालम् ।
कुर्वन्त्येव हि यत्नं भिषग्जनाः कृच्छ्रसाध्यरोगेऽपि ॥ १०२९ ॥

इसलिये उसका नाम पता बता; जिससे इच्छित समागम के लिये प्रयत्न किया जाये । क्योंकि वैद्य-कष्टसाध्य रोग में भी यत्न करते ही हैं ('यावत्कण्ठगतप्राणास्तावत्कार्या प्रतिक्रिया') ॥ १०२९ ॥

इति गदिते सख्या सा तदभिमुखं चक्षुषी समुन्मील्य ।
वितरति कृच्छ्रेण चिराद् भावितमक्लिष्टहुंकारम् ॥ १०३० ॥

इस प्रकार से सखी के कहने पर उसके सामने कुछ देरी से आँखों को खोल कर–बड़ी कठिनाई से, देर में वह स्पष्ट रूप हुँकार करती है–(मुख से कुछ नहीं बोलती) ॥ १०३० ॥

का पुरुषार्थसमीहा द्योतयतः शर्वरीं शशांकस्य ।
तर्पयतां भुवमखिलां सलिलमुचां कोऽभिकांक्षितो लाभः ॥१०३१॥

रात्रि को प्रकाशित करते हुए चन्द्रमा को कौन से पुरुषार्थ की–धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-किसकी चाह है ? सम्पूर्ण पृथ्वी को पानी से सिंचते हुए बादलों को किस लाभ की आकाङ्क्षा रहती है ? (किसी की नहीं)[1] ॥ १०३१ ॥

मण्डयितुं वियदुदयति पुरुहूतधनुर्विनैव फलवाञ्छाम् ।
अनपेक्षितात्मकार्यः परहितकरणग्रहः सतां सहजः ॥ १०३२ ॥

---

1. किं चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्सया करोति गोभिः कुमुदावबोधनम् ।
स्वभाव एवोन्नतचेतसां सतां परोपकारव्यसनं हि जीवितम् ॥
कस्मादिन्दुरसौ धिनोति जगतीं पीयूषगर्भैः करैः,
कस्माद् वा मलधारयेव धरणीं धाराधरः सिञ्चति ।
भ्रामं भ्राममयं च नन्दयति वा कस्मात् त्रिलोकीं रविः
साधूनां हि परोपकारकरणे नोपाध्यपेक्षं मनः ॥

इन्द्रधनुष बिना किसी फल की आकांक्षा के ही आकाश को शोभित करने के लिये उदय होता है। सज्जन पुरुष स्वभाव से ही बिना किसी स्वार्थ के परानुग्रह तत्पर होते हैं[1] ॥ १०३२ ॥

प्रायेण यन्निदानं तत्सेवनमुपशमाय रोगाणाम्।
स्मरमान्द्य तु यदुत्थं तदेव खलु भेषजं यतस्तस्य ॥ १०३३ ॥

प्राय करके रोग का जो कारण होता है, वही उस रोग की शान्ति का उपाय होता है। इसलिये काम जन्य व्याधि जन्ता जिस पुरुष विशेष के कारण से उत्पन्न हुई है, वही पुरुष इस रोग की औषध है[2] ॥ १०३३ ॥

तेन स्पृहयति सुतनुस्त्वत्पादसरोजरेणुसंगतये।
आशीर्विषयोपेते सम्भोगसुखोदये तु नाकाङ्क्षा ॥ १०३४ ॥
(सन्दानितकम्)

इसलिये वह सुगात्री आपकी चरण धूलि प्राप्त करना चाहती है, आशीर्वाद भूत सम्भोगजन्य सुख की प्राप्ति में उसको बिल्कुल चाह नहीं है ॥ १०३४ ॥

प्रमदमुपैति मयूरी परमं शब्देन वारिवाहस्य।
अनिमिषविलोकितेन प्राप्नोति झषी कृतार्थतामेव ॥ १०३५ ॥

बादल की गर्जना को सुनकर मयूरी अति प्रसन्न होती है, अपने प्रिय को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई मछली अपने को कृतार्थ मानती है ॥ १०३५ ॥

न घृथास्तुतिमुखरतया न च युष्मल्लोभनाभियोगेन।
विदधामि तद्गुणाख्या स्वरूपमात्रप्रसंगेन ॥ १०३६ ॥

---

1. हादं यथोद्रिक्त इव प्रकाशस्तापः कृशानो' पवनस्य वेग'।
परोपकार करुणारतानां महाजनानां सहज स्वभाव ॥ क्षेमेन्द्र

2. आग से जलने पर उष्ण उपाय किया जाता है, विपस्यविषमौषधम्—इसीसे माधवनिदान में कहा है—हेतुव्याधिविपर्यस्त विपर्यस्तार्थकारिणाम्।
औषधान्नविहाराणामुपयोगः सुखावह ॥
हेतुविपरीतार्थकारी—पित्तप्रधानपच्यमान शोथ में पित्तकारक उष्ण उपनाह, वमन रोग में—वमनकारक मैनफल आदि देना, अग्नि से जलने पर अगर का लेप आदि।
इसी प्रकार नैषध में भी दमयन्ती को कामजन्य व्याधि के लिये नल को उपाय कहा है—
स्मारस्पा मनसः बिना न दहनं तापस्य कोऽयौरवा'।
(नखर-स्नम एव नल की प्राप्ति)

मैं उसके गुणों को मिथ्या प्रशंसा के रूप में वाचलता के कारण नहीं कह रही, और दूती होने से आपको उसके प्रति आकृष्ट करने के लिये भी नहीं कह रही हूँ। केवल आपकी जानकारी के लिये उसके गुणों का वर्णन करती हूँ॥ १०३६ ॥

सद्भावबद्धमूले स्मितदृष्टिभ्रूविलासपल्लविते ।
सेवन्ते हृदयरसा रागतरोर्मंजरीं धन्या ॥ १०३७ ॥

सद्भाव-शोभन चित्तविकार-रतिभाव के दृढ होने पर, स्नेहभरी दृष्टि से देखने पर, भुवों के विलास से पल्लवित-बढे, राग रूपी वृक्ष के हृदयगम रस शृंगारादि रस का तथा मंजरी का उपयोग भाग्यशाली ही करते हैं[1] ॥१०३७ ॥

तिष्ठतु तदंगसंगो विलोकिता येन झटिति वरगात्री ।
तस्यान्यो युवतिजन प्रतिभाति मनुष्यरूपेण ॥ १०३८ ॥

उसके अंगों के स्पर्श की बात छोडो—जिसने भी उस मृगाक्षी का जल्दी में उडती नजर से एक बार भी देख लिया, वह दूसरी युवतियों को मनुष्य समझने लगता है उनको स्त्री नहा समझता ॥ १०३८ ॥

सकृदपि यैरनुभूतस्तत्तनुपरिरम्भसुखरसास्वादः ।
विद्धि नराधिप तेषां दूरीभूत प्रजाकार्यम् ॥ १०३९ ॥

जिसने उसके शरीर क आलिंगन का सुख एक बार भी अनुभव कर लिया है, हे राजन्! वह सब लोक व्यवहार भूल गया ॥ १०३९ ॥

आस्था का खलु तस्या विषयग्रहदुर्बलेषु पुरुषेषु ।
यस्या विलासजालकपतित शकुनायते कपिल ॥ १०४० ॥

जिस मजरी के विलास जाल में गिरा कपिल मुनि भी पक्षी की भाँति फँस जाता है, फिर रूप-रस आदि विषयों के ग्रहण में निर्बल पुरुषों की बात ही क्या? वे तो अवश्य ही उसके विलासों में फँस जायेंगे[2] ॥ १०४० ॥

दग्धोऽपि पुनर्दग्धो नूनमनगो हरेण, सा तन्वीम् ।
दृष्ट्वापि येन तिष्ठसि निराकुल स्वस्थवृत्तेन ॥ १०४१ ॥

---

१ इयमङ्कुरिता प्रेम्णा, मानात् पल्लविता भवत् ।
सकोरका प्रणयत स्नेहात् कुसुमिता भवेत् ॥
रागात्फलवती मधमनुरागेण भुज्यते ॥

२ तावन्महत्त्व पाण्डित्य कुलीनत्व विवेकिता ।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हत पञ्चेषुपावक ॥

यावद्यावदशक्तिं प्रथयति ललना हि मोहनाक्रान्ता ।
तावत्तावत्पुंसामुत्साहः पल्लवान् समुत्सृजति ॥ १०५३ ॥

सुरत सुख से अभिभूत कामिनी जैसे जैसे चुम्बन आदि में अपनी असमर्थता दिखाती है, वैसे वैसे पुरुषों का उत्साह बाह्य और आभ्यन्तर सम्भोग में नाना प्रकार से बढ़ता है[1] ॥ १०५३ ॥

इति शून्यीकृतवेश्मनि हरति शनैः सहजमशुकं तस्मिन् ।
दर्शितसाध्वसलज्जा जगाद मे किं करोषीति ॥ १०५४ ॥

इस प्रकार कहकर दूती के चले जाने पर एकान्त में समरभट द्वारा उसका स्वाभाविक अंशुक धीरे धीरे दूर करना प्रारम्भ करने पर वह भय और लज्जा के साथ बोली—मेरे साथ यह क्या कर रहे हो[2] ॥ १०५४ ॥

अपि मुग्धे तत् क्रियते पुरुषार्थचतुष्टयस्य यत् सारम् ।
इति निगदितसस्मेरः स्मरविधुरित आततान रतिकलहम् ॥१०५५॥

हे मुग्धे ! मैं यही पर रहा हूँ जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का सार है । इस प्रकार अपने वचन से ही मुस्कराता हुआ समरभट काम से व्याकुल होकर रति युद्ध करने लगा[3] ॥ १०५५ ॥

---

1. रतकर्म कलयाप्यसुवल्लभे किमपि कुविमुखी सुमुखी मवा ।
हननेतिमसेऽति वचोमिषान्मदनदोपनमन्त्रमिवास्मरत् ॥ हम्मीर काव्य ७।१११.
(ख) बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शङ्का,
क्वचिद् दृष्टा भ्रमरभरतो भंजरी भज्यमाना ।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेप्सुयष्टिः समग्रम् ॥ विकटनितम्बा.
(ग) कविता वनिता गीतं मायो नाऽऽद्यौ रसप्रदाः ।
उद्गिरन्ति रसोद्रेकं गाढमाना पुनः पुनः ॥
२. सहज अंशुक का अर्थ—श्री तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी जी ने छल्ला किया है—परन्तु मेरी दृष्टि में सहज अंशुक—से योनिच्छद (*Hyman*) योनि के ऊपर का स्वाभाविक परदा लेना ठीक है-यही वास्तव में स्वाभाविक-जन्मजात वस्त्र है-उसे उसने धीरे धीरे जब हटाना प्रारम्भ किया-तब उसने भय और लज्जा से कहा क्या कर रहे हो ।
३. मुग्धा—मुग्धा नववधूस्तत्र नवयौवनभूषिता ।
नवानङ्गरहस्यापि लज्जाप्रायरतिर्यथा ॥
(ख) ति सारे जगति प्रवचसद्यो सारं कुरङ्गीदृशा-
मेकं भोगसुखं परमात्मपरमानन्देन तुल्यं विदुः ॥ अनघराज.
(ग) अनिर्दिष्टसुखदुःखं निर्गुणं वस्तु किञ्चिज्जडमतिरिह कश्चिन्मोक्ष इत्याचचक्षे ।
मम तु मतमनङ्गस्मेरतारुण्यघूर्णन्मदकलमदिराक्षीनीविमोक्षो हि मोक्षः ॥
(घ) कलहरूपं सुरतमाचक्षते विवादात्मकत्वाद् वामशीलत्वाच्च कामस्य ।

विहितनमस्कृतिरासनमधितष्ठौ' नायकेन निर्दिष्टम्।
पृष्टे च देहकुशले विनयान्वितमभ्यधाद् दूती ॥ १०४७ ॥

दूती नमस्कार करके, समरभट द्वारा अंगुली से बताये आसन पर बैठ गई। शरीर का कुशल मंगल पूछने पर दूती ने विनय पूर्वक कहा—॥ १०४७ ॥

श्रीमन्नद्य श्रेय सम्पन्ना गुरुजनाशिषोऽशेषाः।
अद्य मदन प्रसन्नो, भाग्यचयैरद्य परिणतं फलतः ॥ १०४८ ॥

श्रीमन्! आज गुरुजनों के सब आशीर्वाद कल्याण से युक्त हो गये–सफल हो गये। आज कामदेव प्रसन्न हैं, आज शुभ कर्मों का फल प्राप्त हो गया ॥१०४८॥

अद्य जननी प्रसूता, सौभाग्यगुणोदयोऽद्य निष्पणीत.।
त्वयि वितरति सस्नेहं निरामयप्रश्नभारतीं तस्या ॥ १०४९ ॥
(सन्दानितकम्)

आज माता का जन्म देना सफल हुआ, आज नाना प्रकार से सौभाग्य का उदय हुआ, स्नेह के साथ आज आपने जो इसका आरोग्य पूछा ॥१०४९॥

उत्कलिकाकुलमनसामुद्रिक्तरिरसयाऽभिभूतानाम्।
औदासीन्यं भजता समागता भवति नालिका यूनाम् ॥ १०५० ॥

उत्कण्ठा से बेचैन एवं चुम्बन आलिंगन आदि से रमण की इच्छा वाले युवा स्त्री पुरुषों को, तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति के कारण जो उदासीन बनना पड़ता है, वह उसकी मूर्खता है—तीसरे पुरुष का उस समय उपस्थित होना मूर्खता है॥ १०५० ॥

धृतसुमन शरधनुषा सहायवान्सि दयितया सार्धम्।
यामो वयं, न राजति विजनस्थितमिथुनसन्निधावपर ॥१०५१॥

पुष्पों का धनुष बाण लिये कामदेव तुम्हारा सहायक है, प्रेयसी के साथ बैठो, मैं भी जाती हूँ, एकान्त में बैठे जोड़े के पास दूसरा आदमी अच्छा नहीं लगता' ॥ १०५१ ॥

एषा नृत्यश्रान्ता मदनेनायासिताऽतिसुकुमारा।
त्वमपि रतिसमरशूर', स्वर्गभुव सन्तु कुशलाय ॥ १०५२ ॥

यह मंजरी नृत्य करने से थक गई है, काम से पिडित है, अति सुकुमार है, तुम भी रतियुद्ध में शूर हो, आपके लिये देवता कुशल करें' ॥ १०५२ ॥

---

१ मत्रे अर्थालोच भैषज्ये भोजने पियाममने।
उच्यते स नागरिक. अयुक्त अपि य तूरे ॥

२ भोवी चाहय, पयोधरद्वय अकामुंक टकूर
पीनोरू द्वयमेक रागकवच ताम्रावरं ध्वजम्।
काञ्चीनूपुरशस्वदुन्दुभिरव हिक्काप्रणादाकुल
कामिन्या नखदन्तशस्त्रमतुल प्राप्तोतु युद्ध भवान् ॥

यावद्यावदशक्तिं प्रथयति ललना हि मोहनाक्रान्ता।
तावत्तावत्पुंसामुत्साहः पल्लवान् समुल्लसति॥ १०५३॥

सुरत सुख से अभिभूत कामिनी जैसे जैसे चुम्बन आदि में अपनी असमर्थता दिखाती है, वैसे वैसे पुरुषों का उत्साह बाह्य और आभ्यन्तर सम्भोग में नाना प्रकार से बढ़ता है[1] ॥ १०५३ ॥

इति शून्यीकृतवेश्मनि हरति शनैः सहजमशुकं तस्मिन्।
दर्शितसाध्वसलज्जा जगाद मे किं करोषीति॥ १०५४॥

इस प्रकार कहकर दूती के चले जाने पर एकान्त में समरभट द्वारा उसका स्वाभाविक अशुक धीरे धीरे दूर करना प्रारम्भ करने पर वह भय और लज्जा के साथ बोली—मेरे साथ यह क्या कर रहे हो[2] ॥ १०५४ ॥

अयि मुग्धे तत् क्रियते पुरुषार्थचतुष्टयस्य यत् सारम्।
इति निगदितसस्मेरः स्मरनिशुरितः आततान रतिकलहम्॥१०५५॥

हे मुग्धे ! मैं वही कर रहा हूँ जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय का सार है। इस प्रकार अपने वचन से ही मुस्कराता हुआ समरभट काम से व्याकुल होकर रति युद्ध करने लगा[3] ॥ १०५५ ॥

---

१ रतकर्म्मा कलपायसुवल्लभे किमपि कुविमुखी सुमुखी नवा।
हननेतिमनेति वचामिषान्मदनदीपनमन्त्रमिवास्मरत् ॥ हम्मीर काव्य ७।११
(ख) बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शङ्का,
काचिद् दृष्टा भ्रमरभरतो मंजरी भज्यमाना।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम् ॥ विकटनितम्बा
(ग) कविता वनिता गीतिः प्रायो नारी रसप्रदा।
उद्गिरन्ति रसोद्रेकं गाह्यमाना पुनः पुनः॥

२ सहज अशुक का अर्थ—श्री तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी जी ने लज्जा किया है— परन्तु मेरी दृष्टि में सहज अशुक—से योनिच्छद (*Hyman*) योनि के ऊपर का स्वाभाविक परदा लेना ठीक है यही वास्तव में स्वाभाविक-जन्मजात वस्त्र है-उसे उसने धीरे धीरे जब हटाना प्रारम्भ किया। तब उसने भय और लज्जा से कहा क्या कर रहे हो।

३ मुग्धा—मुग्धा नववधूस्तत्र नवयौवनभूषिता।
नवानङ्गरहस्यापि लज्जाप्रायरतिर्यथा॥
(ख) निःसारे जगति प्रपञ्चसदृशो सारं कुरङ्गीदृशां
भेकं भोगसुखं परमात्मपरमानन्देन तुल्यं विदुः ॥ अनङ्गरङ्ग
(ग) अचिरविषसुखं तु ख निर्गुणं वस्तु किंचिज्जडमतिरिह कश्चिन्मोक्ष इत्याचचक्षे।
मम तु मतमनङ्गस्मेरतारुण्यघूर्णन्मदकलमदिराक्षीनीविमोक्षो हि मोक्षः ॥
(घ) कलहरूपं सुरतमाचक्षते विवादात्मकत्वाद् वामशीलत्वाच्च कामस्य।

नानासुरतविशेषैराराध्य चकार भुक्तसर्वस्वम् ।
गणिकाऽसौ राजसुतं त्वगस्थिशेषं मुमोच नातिचिरात् ॥१०५६॥

उपसंहार—नाना प्रकार के सम्भोग विशेषों से इस गणिका ने राजपुत्र को प्रसन्न करके जल्दी से उसका सम्पूर्ण धन ले लिया—केवल त्वचा और अस्थि ही उसके शरीर पर छोड़ी[1] ॥ १०५६ ॥

तदन्मयोपदिष्टं कामिजनार्थाप्तिकारणं तेन ।
महतीं समृद्धिमेष्यसि कामुकलोकाहृतेन वित्तेन ॥ १०५७ ॥

कामिजनों से धन प्राप्त करने के जो उपाय मैंने कहे हैं उनके द्वारा कामुक जनों से खींचे हुए धन से बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त करेगी—बहुत धनी बनेगी ॥ १०५७ ॥

इत्युपदेशश्रवणप्रबोधतुष्टा जगाम धाम स्वम् ।
मालत्यपगतमोहा विकरालापादवन्दनां कृत्वा ॥ १०५८ ॥

विकराला से किये इस उपदेश को सुनकर, ज्ञान होने से प्रसन्न मालती मोहके दूर होने पर विकराला के पैरों में नमस्कार करके अपने घर को चली गई ॥१०५८॥

काव्यमिदं यः शृणुते सम्यक् काव्यार्थपालनेनासौ ।
नो वच्यते कदाचिद्विटवेश्याधूर्तकुट्टनीभिरिति ॥ १०५९ ॥

इस काव्य को जो भली प्रकार सुनता है, और इस काव्य के अर्थों को कार्य रूप में लाता है, वह कभी भी विट, वेश्या, धूर्त और कुट्टनी से ठगा नहीं जाता॥१०५९॥

इति श्रीकाश्मीरमहामण्डलमहीमण्डनराजजयापीडमन्त्रिप्रवर-
दामोदरगुप्तकविविरचितं कुट्टनीमतं समाप्तम् ।

— ❀ ❀ —

(क) शय्यावस्ममरते, तुरगाराद्वैव पौरुषे भावे ।
यरक्षीव न चसुरते या स्यात्सैव विटजनपूज्या ॥

१ यद् घृतेन युधिष्ठिरस्य विहितं, यद् विष्णुना वा बले
यद्भुक्तं च धनाधिपस्य कलिना राज्ञो नलस्यापि यत् ।
संभूयापि च यत्सुरासुरबलैर्मथ्य पाथोनिधे
वेश्या पश्यत लीलयैव कुरुते तत्तद्गृहे कामिनाम् ॥

(ख) तावच्च तूर्णं धनमाहरेत् यावत् स रागेण विनष्टसंज्ञः ।
प्रशान्तरागानलशीतलस्तु स लोहपिण्डो कठिनत्वमेति ॥

(ग) याचेत सर्वं सुरतार्तिकाले समूलबन्धेन निरुद्धकायम् ।
प्रायेण तृष्णाय न रोचते हि विलम्बताभावपरिपक्वमाम्रम् ॥

(घ) निष्पीतसारं विरतोपकारं क्षुण्णेक्षुशकलमतिमं त्यजेत्तम् ।
कल्याधिवासक्षयकारि शुष्कं पुष्पं त्यजत्येव हि केशपाशः ॥

समयमातृका ५।७० ७८,